जहानारा की आत्म-कथा

केशवकुमार ठाकुर

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९ अहियापुर

इलाहाबाद

दूसरा संस्करण] सितम्बर १९५६ मूल्य ३)

प्रकाशक
गिरिधर शुक्ल
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४१९ अहियापुर,
इलाहाबाद

मुद्रक
इन्द्रमणि जायसवाल
मणि प्रिंटिंग प्रेस,
मणि नगर, ५१९ पुराबल्दी
कीटगञ्ज, इलाहाबाद।

परिचय

मुगल-शाही खानदान में अनेक बादशाहों ने आत्म-कथायें लिखी हैं। भारत में मुगल शासन के प्रतिष्ठाता तैमूर ने अपनी आत्म-कहानी लिखी थी। बाबर ने अपने जीवन की घटनाओं को आत्म-कहानी के रूप में लिखने का प्रयास किया था। बाबर की लड़की, गुलबदन बेगम ने हुमायूं बादशाह की जीवन-कहानी को 'हुमायूंनामा' के नाम से तैयार किया था। जहाँगीर ने स्वयं अपने जीवन की कहानी लिखी थी। सम्राट अकबर ने ऐसा नहीं किया था। लेकिन उसके इस अभाव की पूर्ति, उसके राज-दरबार के विद्वानों ने की थी। इस प्रकार, मुगल बादशाहों में आत्म-कहानी लिखने की एक प्रथा-सी पड़ गई थी। जिन्होंने नहीं लिखा था, उनके उस काम को उनके दरबारी विद्वानों ने पूरा किया था।

इसी प्रथा का अनुसरण, शाहजहाँ बादशाह की लड़की जहाँनारा ने किया था। उसने अपनी कारावास के बन्दी जीवन में अपनी आत्म-कथा लिखी थी। उस आत्म-कथा में जहानारा ने अपने जीवन की साधारण और असाधारण घटनाओं के साथ ही साथ मुगल दर्बार की अनेक गुप्त और रहस्यमयी बातों का उल्लेख किया था। उसी आत्म-कथा का परिचय देना हमारी इन पंक्तियों के लिखने का उद्देश्य है।

सन् १६५७ ई० की बात है। सम्राट शाहजहाँ के शरीर में पक्षाघात का आक्रमण हुआ। मुमताज बेगम की मृत्यु बहुत दिन पहले हो चुकी थी। सम्राट शाहजहाँ के चार लड़के थे। दारा, शुजा, औरङ्गजेब और मुराद। उसके दो लड़कियाँ थीं, जहनारा और रोशनआरा। सन् १६५७ ई० में दारा की अवस्था ४३ वर्ष, शुजा की ४१ वर्ष, औरङ्गजेब की ३८ वर्ष और मुराद की ३३ वर्ष की थी।

सम्राट शाहजहाँ के चारों लड़के समर्थ थे। युद्ध के कार्यों में वे कुशल, वीर और शासन में विज्ञ थे। सम्राट शाहजहाँ अपने लड़कों में ज्येष्ठ पुत्र दारा का और लड़कियों में जहानारा का अधिक प्यार करता था। अपनी इन्हीं दोनों सन्तानों के साथ उसके जीवन का अधिक सम्पर्क था। अपने पिता सम्राट शाहजहाँ का स्नेह पाकर, जहाँनारा मुगल-राज-परिवार की मणि हो रही थी। राजमहलों में सर्वोपरि सम्मान पाने के साथ-साथ, उसने पिता के राज-दरबार में भी एक बड़ा अधिकार प्राप्त कर रक्खा था। शासन के अनेक कार्यों में वह अपने पिता सम्राट की सहायता किया करती थी।

जहानारा अपने भाइयों में दारा से अधिक प्रेम करती थी। इसका कारण था। सम्राट अकबर की हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित भावना ने दारा को अनुप्राणित किया था और जहानारा स्वयं उस भावना से अत्यधिक प्रभाविक थी। औरङ्गजेब, सम्राट

अकबर की उस भावना का विरोधी था। परिणाम स्वरूप, औरंगजेब और जहानारा में एक स्वाभाविक विरोध था।

सम्राट शाहजहाँ के दरबार में सभी का विश्वास था कि सम्राट के बाद दारा ही राज-सिंहासन पर बैठने का अधिकारी होगा। परन्तु परिस्थितियों ने साथ न दिया। सम्राट की बीमारी का समाचार पाते ही बंगाल से शुजा, गुजरात से मुराद और दक्षिण से औरङ्गजेब ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

सम्राट शाहजहाँ के दरबार में औरङ्गजेब के साथ जो भावनायें काम कर रही थीं, उनके प्रति औरङ्गजेब सदा सन्देहात्मक दृष्टि से देखा करता था। दरबार की रहस्यपूर्ण बातों का पता लगाने के लिए औरङ्गजेब ने अपनी बहन रोशनआरा की सहायता ले रखी थी। उसके सिवा, दीवान मीर जुमला, अमीर खलीलुल्ला खाँ एवम् शाइस्ता खाँ जैसे कुछ व्यक्ति भी दरबार के समाचारों के देने में औरङ्गजेब की सहायता किया करते थे।

शुजा बंगाल का सूबेदार था। वह युद्ध में साहसी और वीर था। किन्तु स्वभाव का वह अकर्मण्य, संगीत-प्रेमी और स्त्री-लोलुप था।

मुराद गुजरात का सूबेदार था। शुजा की तरह वह भी पराक्रमी और बहादुर था। किन्तु सरल विश्वासी, उच्छृङ्खल और मदिरा-सेवी था।

औरङ्गजेब दक्षिण भारत का सूबेदार था। वह अत्यन्त समझदार, दूरदर्शी किन्तु स्वभाव का अत्यन्त धूर्त था। इस्लाम

पर उसका अंध-विश्वास था। वह मक्का जाना चाहता था। परन्तु दारा के साथ उसका जो धार्मिक विरोध था, उसके कारण वह किसी भी अवस्था में मुगलराज-सिंहासन पर, दारा का बैठना सहन करने के लिए तैयार न था। इसलिए अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते हुए उसने मुराद को पत्र लिखा :—

प्यारे भाई मुराद,

कुरान का स्पर्श करके शपथपूर्वक मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि दिल्ली के राज-सिंहासन पर तुमको अधिष्ठित देखने के बाद मैं मक्का जा सकूंगा। तुम मेरी स्त्री और पुत्र की रक्षा करोगे, इसके सम्बन्ध में मैं तुम्हारा वचन चाहता हूँ। मैं समझता हूँ, तुम वास्तव में एक सच्चे मुसलमान हो, साथ ही पराक्रमी और साहसी हो। इसलिए मुगल-राज-सिंहासन के तुम्हीं अधिकारी हो। दारा विधर्मी है। राज-सिंहासन पर मैं उसे देख न सकूंगा। एक सच्चे भाई की हैसियत से मैं एक लाख रुपये तुम्हारे पास भेजता हूँ।

औरङ्गजेब की इन बातों का मुराद पर प्रभाव पड़ा। वह सरल विश्वासी तो था ही। कुरान की शपथ से वह अधिक प्रभावित हुआ। औरङ्गजेब की लिखी हुई बातें चित्र बन कर मुराद की आँखों के सामने बार-बार घूमने लगीं।

दारा के स्वभाव की बहुत-सी बातें औरङ्गजेब जानता था। वह यह भी जानता था कि दरबार के कितने ही लोग दारा से सन्तुष्ट नहीं हैं। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए औरङ्गजेब ने

अपने कितने ही आदमी दरबार में भेज रखे थे। उन्होंने वहाँ जाकर दारा के विरुद्ध शक्तियों के संग्रह करने का कार्य आरम्भ कर दिया था। औरंगजेब का पक्ष-समर्थन करने के लिए सैनिकों को वेतन बढ़ाने के विश्वास दिलाये गये थे। दरबार के कितने ही मनस्वी व्यक्तियों को प्रलोभनों के द्वारा अनुकूल बनाने की चेष्टा की गयी थी।

राजपूत अपनी वीरता के लिए सदा से विख्यात थे। वे युद्ध में जितने ही कुशल थे, जीवन की दूसरी बातों में वे उतने ही अयोग्य थे। उनमें दूरदर्शिता का अभाव था। औरङ्गजेब उनकी इन बातों से अपरिचित न था।

अन्तःपुर में जहानारा का जितना ही सम्मान था, राज्य की घटनाओं के साथ उसका उतना ही गम्भीर सम्पर्क था। उसके इस सम्पर्क की कहानी पुरानी थी। मुगल-शासन में बादशाह-बेगमों के दोनों ही अधिकार थे, अन्तःपुर में भी और राजा के कार्यों में भी ये दोनों अधिकार पूर्वजों की सम्पत्ति के रूप में जहानारा को प्राप्त हुए थे।

जहानारा राज्य के कार्यों में सहयोग करती थी और अन्तः-पुर के कार्यों का नियन्त्रण करती थी। उसमें बुद्धि थी, दूर-दर्शिता थी और कार्य-कुशलता थी। आत्म-सम्मानिनी जहानारा के विचारों में स्वतन्त्र भावना थी। उसके इन्हीं गुणों के कारण दारा अपनी कठिन समस्याओं के सुलझाने में उससे परामर्श करता था। सम्राट शाहजहाँ के नेत्रों में जहानारा के परामर्शों का

मूल्य था। अपने पिता और भाई दारा के निकट जहानारा ने लोकप्रियता प्राप्त की थी। भीतर से लेकर बाहर तक, मुगल साम्राज्य में उसका अंकुश था। परामर्श के रूप में उसके आदेश शासन का काम करते थे।

जहानारा के स्वभाव में नारी, सुलभ कोमलता थी। उसमें शासन की भावना थी, स्वतन्त्रता थी। परन्तु स्त्रियोचित प्रकृति की सरलता का उसके जीवन में अभाव न था। इसका प्रायः परिणाम यह होता था कि राज्य में कठोर दण्ड के अधिकारी अभियुक्त जहानारा के द्वारा कभी-कभी क्षमा पा जाते थे अथवा साधारण दण्ड पाकर मुक्ति प्राप्त करते थे। शासन-कार्यों में अधिक उदारता और सरलता, शासक की अक्षमता की परिचायक होती है। इतना ही नहीं, यह परिस्थिति कभी-कभी शासन में अकल्याणकर भी सिद्ध होती है।

सम्राट शाहजहाँ की सन्तानों में औरंगजेब और जहानारा में ही अभिज्ञता और दूरदर्शिता का समन्वय था। परन्तु दोनों की विचार धारायें एक दूसरे के विरुद्ध थीं। दोनों की प्रकृति का कहीं पर मेल न होता था।

जहानारा कुमारी थी, इसका कारण था। अकबर का व्यवस्थापित विधान था कि मुगल-शहजादियों के विवाह न होंगे। अकबर के शासन-काल में इस व्यवस्था को कैसे स्थान मिला था, इसका निर्णय आसानी के साथ नहीं किया जा सकता। कुछ विद्वानों की धारणा है कि अकबर राज्याधिकारों में संघर्ष नहीं

चाहता था। इसी अभिप्राय से प्रेरित होकर अकबर के शासन-काल में इस प्रकार के विधान को स्थान दिया गया था।

अकबर के द्वारा दी गयी यह व्यवस्था, स्वाभाविकता से बहुत दूर थी। ऐश्वर्य की गोद में पली हुई, स्वास्थ्य और रूप की परम सुन्दरी प्रतिभा—जहानारा के जीवन में यह एक साधारण प्रश्न है। फिर भी, वह कुमारी-चिरकुमारी थी।

मुगल राजकुमारियों के विवाह के सम्बन्ध में अकबर के विधान के विरोधी होने पर भी, दारा जहानारा के विवाह के पक्ष में था। अमीर नजवत खाँ जहानारा के साथ विवाह करने की अत्यधिक अभिलाषा रखता था। उसकी इस भावना को दारा भलीभाँति जानता था। इसलिए वह चाहता था कि नजवतखाँ के साथ सहानारा का विवाह कर दिया जाय। परन्तु जहानारा का प्रेमाकर्षण बुन्देला राजा छत्रसाल के प्रति था। छत्रसाल के सम्बन्ध में जहानारा ने अनेक प्रकार की कल्पनायें कर रखी थीं। वास्तव में वह छत्रसाल से प्रेम करती थी।

बुन्देला-वंश के अनेक राज-पुरुषों ने मुगल-साम्राज्य की ओर से सम्मान और विश्वास प्राप्त किया था। छत्रसाल स्वयं एक बीर राजपूत था। वह साहसी और आत्म-विश्वासी था। उसके जीवन की अनेक घटनाओं के साथ जहानारा का गम्भीर सम्बन्ध था। इस सम्पर्क और सम्बन्ध ने जहानारा को हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-सभ्यता की ओर आकर्षित किया था। छत्र-साल के प्रेम ने जहानारा पर राजपूतों का प्रभाव डाला था। इस

प्रभाव के अनेक रंगीन चित्रों के दृश्य जहानारा की आत्म-कथा में देखने को मिलते हैं।

उन दिनों के भारत में मुगल-राजपूत विवाहों का प्रश्न असंगत न था। छत्रसाल और जहानारा के बीच जो सम्बन्ध चल रहा था, उसकी कहानियाँ मुगल-दरबार के कितने ही लोग जानते थे। सम्राट शाहजहाँ भी उनसे अपरिचित न था।

मुगल-साम्राज्य के साथ बुंदेला-राजपूतों का विश्वासपर्ण सम्पर्क था। छत्रसाल के साथ जहानारा का जितना ही प्रेम बढ़ता जाता था, उतना ही वह हिन्दू-धर्म और हिन्दू-शास्त्रों के निकट पहुँचती जाती थी। हिन्दू संस्कारों के साथ जहानारा के मोह के और भी कारण थे। बिहारी मल की लड़की योधाबाई अकबर की रानी थी। जहाँगीर की रानी मानसिंह की बहन, मानबाई थी और शाहजहाँ की माता थी, राजा जयसिंह की लड़की जगत गोसाइनी। जहानारा की माता थी, फारस देश की मुमताज बेगम। मुमताज बेगम नूरजहाँ के भाई की लड़की थी।

इस प्रकार जहानारा के जीवन में मुगल, तुर्क, पारस्य और राजपूत रक्त का एक अपूर्व समन्वय था। इस समन्वय और मिश्रण ने जहानारा के जीवन को एक अपूर्व दिशा की ओर अग्रसर किया था। उसका जीवन अद्भुत था।

अपने पिता सम्राट शाहजहाँ और भाई दारा के विरुद्ध चलने वाले औरंगजेब के षडयन्त्रों का जहानारा ने विरोध किया था। उत्पन्न होने वाला संघर्ष बराबर बढ़ता रहा। जहानारा ने

अपने पिता और भाई दारा का पक्ष लेकर औरङ्गजेब के विरुद्ध युद्ध किया।

औरङ्गजेब जहानारा की विलक्षण बुद्धि और योग्यता को समझता था। इसीलिए उसने पहले से ही जहानारा को अपने पक्ष में लाने की चेष्टा की थी। परन्तु उसके अनुरोधों का जहानारा पर कोई प्रभाव न पड़ा था।

औरंगजेब के षड़यन्त्रों के कारण शाहजहाँ को बन्दी होना पड़ा था और उसके बन्दी जीवन में जहानारा उसकी सहयोगिनी थी। जहानारा ने अपने नेत्रों से अपने प्रिय बन्धु दारा और उसके पुत्रों की नृशंस हत्या देखी थी। मुगल कालीन अनेक अत्याचारों और अनाचारों का इतिहास, जहानारा के जीवन का इतिहास बन गया था।

आगरे के विशाल दुर्ग में सम्राट शाहजहाँ बन्दी था। औरङ्गजेब ने दारा का कटा हुआ सिर दुर्ग में कैदी शाहजहाँ के पास भेजा। कितना भीषण दृश्य था। सम्राट बन्दी था। उसकी स्नेहमयी पुत्री जहानारा उसी दुर्ग में एक बन्दी के रूप में थी! उसके प्रिय पुत्र दारा का कटा हुआ सिर उसके सामने था। कितना भयानक दृश्य था !!

दारा के कटे हुए सिर को देखकर, जहानारा काँप उठी। जीवन के इस भीषण दृश्य को वह देख न सकी। उस समय उसके जीवन की परिस्थिति कितनी भयानक थी, इसको वह स्वयं समझती। वहाँ पर कोई ऐसा न था, जिसे वह अपने हृदय की

इस वेदना को सुना सकती और अपने अन्तःकरण के वेदना पूर्ण भार को हलका कर सकती। इस लिए उसने अपनी आत्म-वेदना अपने आपको ही सुनाना आरम्भ किया। इस प्रकार उसके जीवन की वेदना, उसकी आत्म-कहानी बन गयी और उसकी आत्म-कथा के रूप में संसार के सामने आयी!

सम्राट शाहजहाँ की मृत्यु के बाद, जहानारा चौदह वर्षों तक कारागार में वन्दिनी होकर रही। उन्हीं दिनों में उसने अपनी पुरानी स्मृतियों के आधार पर, अपनी आत्म-कहानी लिखी और उसकी आत्म-कहानी काश्मीर से फारसी में प्रकाशित हुई। उसी के आधार पर जहानारा की आत्म-कथा प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है। इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ मेरे सामने थीं। फिर भी, जहानारा के नारी-सुलभ कोमल विचारों और भावनाओं को उनके प्रकृत-रूप में लाने की मैंने शक्ति-भर चेष्टा की है। आत्म-कहानी की प्रत्येक सामग्री जितनी ही रोचक है, उतनी ही ऐतिहासिक भी है। परन्तु जहानारा की इस आत्म-कथा में उसकी कहाँ तक रक्षा हो सकी है, इसे मैं स्वयं नहीं जानता।

कमलिनी कार्यालय, कानपुर — केशवकुमार ठाकुर

१ अप्रेल, १९५१

कृतज्ञता

जहानारा की आत्मा-कथा लिखने की अभिलाषा आज से अनेक दिन पूर्व, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय के अध्यक्ष, श्रद्धेय पण्डित गिरिधर शुक्ल की प्रेरणा से उत्पन्न हुई थी। परन्तु उसके लिखने के लिए समुचित सामग्री एकत्रित करने में बहुत समय लगा, फिर भी पूर्ण और सुविधाजनक न मिल सकी।

इस पुस्तक की सामग्री जुटाने का कार्य कटंकाकीर्ण था। उसका मूल स्रोत अत्यन्त छिन्न अवस्था के असाध्य रूप में है, उसका अनुसन्धान करना शुक्ल जी का ही काम था इसके सिवा, एक पर्याप्त सामग्री बनाने के अभि ाय से जहानारा के सम्बन्ध में क्रमहीन सामग्री प्राप्त हुई। मैंने उसके लिखने का कार्य आरम्भ कर दिया था। उसी अवसर पर श्री माखनलाल राय चौधरी के द्वारा प्रस्तुत बंगला में 'जहानारार आत्म काहिनी' मुझे मिली। जहाँ तक जहानारा की आत्म-कथा की सामग्री का प्रश्न है, इसकी भी वही अवस्था है। प्राराभ से अन्त तक मैंने उसे देखा, उसके अनेक स्थलों से सहमत न होने पर भी, प्रस्तुत सामग्री का क्रम सजीव भाषा में मुझे अत्यन्त प्रिय मालूम हुआ। अपनी प्राप्त सामग्री का स्वतन्त्ररूप से प्रयोग करके भी मैंने श्री माखनलाल जी की पुस्तक से बहुत-कुछ सहायता प्राप्त की है। इसलिए उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

—लेखक

पात्र-परिचय

इस पुस्तक की ऐतिहासिक घटनाओं के साथ, जिन विशिष्ट पात्रों का विशेष सम्पर्क रहा है, उनका परिचय इस प्रकार है—

तैमूर—जहानारा के पूर्वज, भारत-विजेता

बाबर—तैमूर के वंशज, पानीपत के विजेता

जहाँगीर (सलीम)—सम्राट अकबर के पुत्र

शाहजहाँ—ताजमहल-निर्माता, भारत के मुगल सम्राट

दारा, शुजा, औरङ्गजेब, मुराद—सम्राट शाहजहाँ के पुत्र

सुलेमान शिकोह, सिपर शिकोह—दारा के पुत्र

शाइस्ता खाँ—नूरजहाँ के बन्धु

खलीलुल्ला खाँ—मुगल साम्राज्य के एक प्रमुख अधिकारी मनसबदार

नजवत खाँ—जहानारा के असफल प्रेमिक—दारा के विरोधी

मीर जुमला—सम्राट शाहजहाँ के एक अमीर। औरंगजेब के पक्षपाती

अमीन खाँ—मीर जुमला के पुत्र

छत्रसाल, बुन्देला, दुलेरा,··राखीबन्द भाई, राखीबन्धु—मुगल-साम्राज्य के एक सामन्त—बून्दी राज्य के अधिपति

जयसिंह—अम्बर राज्य के स्वामी

रामसिंह—जयसिंह के पुत्र

दिलवर खाँ—दारा का पक्ष छोड़कर, औरङ्गजेब के पक्ष में जाने वाला एक विरोधी जन

सलीम चिश्ती—एक मुस्लिम परिश्रेष्ठ तपस्वी

योधाबाई—अम्बर राज्य के नरेश बिहारीमल की लड़की—सम्राट अकबर की बड़ी बेगम

जहानारा—सम्राट शासजहाँ की बड़ी लड़की

रोशनआरा—सम्राट शाहजहाँ की छोटी लड़की

नादिरा—दारा की स्त्री

जान बेगम—दारा की लड़की

जहानारा की आत्म-कथा

—:*::*::*:—

[१]

मेरा क्रन्दन

जीवन और मृत्यु—इस विश्व के दो रूप हैं। सृष्टि के प्रत्येक अंग में इन्हीं दोनों का नाटक दिखाई देता है। संसार ने देखा है, मैं भी देख रही हूँ। ओफ दुर्भाग्य !!

मृत्यु, तेरा भयानक रूप मेरे सामने है। फिर भी मैं जीवित हूँ। तेरे रूप की भीषणता मैं अपने खुले हुए नेत्रों से देखती हूँ। मैं देखती हूँ, तेरा मनुष्य-रूप और उसके दोनों नेत्र! कठोर नेत्र! वे नेत्र, जिनमें न तो प्राण हैं और न शील है! यही तो तेरा रूप है! यह रूप तू ने परिग्रह किया है—तेरा नहीं है!

मृत्यु, तेरे निश्वासों की शीतलता मेरे जीवन की शीतलता का कारण बन गयी है। इस शीतलता के कारण, मेरे जीवन की सम्पूर्ण आशायें विलीन होती जा रही हैं। इस दुर्ग का बन्दी जीवन आज मेरा जीवन है। इस विश्व में मैं आज अकेली हूँ, न कोई मेरा है और न मैं किसी की हूँ।

प्रिय बन्धु दारा का रक्तरञ्जित सिर मेरे सामने है। अपने

प्रिय पुत्र दारा के रक्तपूर्ण-छिन्न-भिन्न सिर को पिता ने देखा है। उसके बाद वह मेरे पास भेजा गया। हिन्दुस्तान, तेरा वह दुर्भाग्य! जिसका पुण्य-प्रताप इस पृथ्वी पर वायु के समान फैला हुआ था, आज उसका यह भीषण दृश्य!

हिन्दुस्तान, तुमको एक साम्राज्य के रूप में परिणत करने की अपेक्षा तुम्हारी देह के टुकड़े करने का उन्माद! ओफ़, कितना भीषण दृश्य है—कितनी भयानक परिस्थिति है! इतना बड़ा दुर्भाग्य!

मेरे नेत्रों के सामने अन्धकार बढ़ता जाता है। अपने अन्तरात्मा से मैं बार-बार प्रश्न करती हूँ—अपने अतीत की ओर देखकर मेरे दोनों नेत्र अश्रुपात करते हैं। परन्तु किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता।

मैं क्रन्दन करती हूँ और दिन में भी स्वप्न देखती हूँ। पर्वत माला की भाँति मुझे सैन्य स्रोत दिखाई देता है। वे सेनायें जंगलों और पहाड़ों को पार करती हुई आज भी चलती हुई मुझे दिखाई देती हैं। इस सैन्य सञ्चालन के साथ, बज्रपात समन्वित कालिमा-पूर्ति आज भी मैं उस आँधी के दर्शन करती हूँ, जिसने इस देश को क्षत-विक्षत कर डाला है और अनेक युगों की चिर सञ्चित धन-राशि का सर्वनाश किया है!

इसके पश्चात् इस देश में शान्ति की प्रतिष्ठा हुई थी। साधारण घरों से लेकर राज-प्रासादों तक सुख और सन्तोष का आभास हुआ था। परन्तु उसके पश्चात् फिर उसी प्रकार की आँधी और तूफान का आगमन हुआ। चतुर्दिक शैन्य सागर उमड़ता हुआ दिखाई देने लगा और दिखाई देने लगे भीषण अविराम रक्त-स्रोत।

आगरा-दुर्ग की शिलाओं को स्पर्श करती हुई यमुना का जल

प्रवाहित हो रहा था। उसकी जल-राशि रक्त-स्रोत में परिणत हो उठी। यमुना की उमड़ती हुई धारा सागर की ओर प्रवाहित हुई। समुद्र का जल रक्त-रञ्जित हो उठा। उसके उपरान्त, वह रक्त-रञ्जित जल मेघ-माला के रूप में, आकाश में उड़ा और इस देश में रक्त की वर्षा हुई!

हिन्दुस्तान के इन भीषण दृश्यों का अन्त न हुआ था, वन्दिनी होकर आगरे के दुर्ग में मैं आगयी। मेरे कारावास का आरम्भ हुआ। इन्हीं दिनों में औरंगजेब के विरुद्ध दारा ने युद्ध आरम्भ किया था। उसके विराट दृश्य मेरी आँखों में आज भी दिखाई देते हैं। युद्ध के उन्माद ने बन्धुत्व और मनुष्यत्व की परिभाषा मिटा दी थी। चारो ओर घोड़ों, ऊँटों और हाथियों की पद-ध्वनि सुनायी पड़ती थी। औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध में लड़ने के लिए अपनी प्रिय हथिनी फतेहजंग पर बैठ कर दारा ने युद्ध-क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया था!

दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। पुण्यमयी पृथ्वी पर रक्त की धारायें बहती हुई दिखाई देने लगीं। आगरे के दुर्ग में युवराज दारा का पराजय का समाचार मिला। मैं चीत्कार के साथ रो उठी। मेरे उस क्रन्दन का अभी तक अन्त नहीं हुआ। मेरे बन्धु दारा का कितना बड़ा दुर्भाग्य था। क्रन्दन के साथ मेरे मुख से बार-बार दारा का नाम निकलता था।

मैं क्रन्दन करती थी और मेरे मुख से बार-बार निकलता था युवराज दारा। प्रिय बन्धु दारा! यह सब क्या हुआ? क्या इसीलिए तुमने युद्ध के लिए प्रस्थान किया था? सम्राट अकबर से मिलने के लिए तुम्हारे हृदय में इतनी बड़ी अभिलाषा थी! सम्पूर्ण विश्व का एक ही भाग्य-विधाता है और उसका एक ही विधान है। युवराज दारा, तुम्हारे जीवन में दुर्बलता थी और

उसके आवरण में अहंकार था। उसी अहंकार से तुम्हारे पतन की सृष्टि हुई। तुमको औरंगजेब से युद्ध करना पड़ा। उसके पास विशाल सेना थी और युद्ध का कौशल था।

धूर्त औरंगजेब, मैं तुमसे घृणा करती हूँ—भयानक घृणा करती हूँ। तुम जितने ही प्रतिभाशाली हो, उतने ही तुम कठोर और धूर्त हो। समूचे हिन्दुस्तान पर राज्य करने की तुम्हारी एक मात्र चिन्ता है। सम्राट होने की इस अभिलाषा ने तुम्हारी प्रतिभा को उन्माद के रूप में परिणित कर दिया है। तुम्हारे नेत्रों के सामने गम्भीर अन्धकार है। उस अन्धकार में तुम्हें कुछ दिखाई नहीं देता।

औरंगजेब! हम सब भाई-बहनों ने एक साथ बहुत दिनों तक जीवन के दिन व्यतीत किये हैं। तुम्हारे उन्माद ने उन दिनों की स्मृतियों को भुला दिया है। मुझे आज भी उनकी स्मृति है। मुझे उस हिन्दू-ज्योतिषी की स्मृति है, जिसने तुम्हारी हस्त-परीक्षा की थी और जिसने तुम्हारे भविष्य के सम्बन्ध में कहा था—तुम्हारे द्वारा तैमूर-वंश का विनाश होगा। मैं नहीं जानती, कितने लोगों ने उस समय, उस ज्योतिषी की बात पर विश्वास किया था। परन्तु मैं इतना जानती हूँ कि उस ज्योतिषी की भविष्यवाणी आज अक्षर-अक्षर सत्य मालूम हुई।

साम्राज्य की आकांक्षा में तुमने बन्धु दारा के विनाश का निश्चय किया। युवराज दारा के साथ सैनिक शक्ति परियाप्त न थी। उसका अभाव युवराज दारा की पराजय का कारण बना।

मेरे कानों ने घोड़ों की पद-ध्वनि सुनी है और सुनी है सैनिक दल की दुर्बलता। मैंने सुना है विपर्यस्त, पराजित और प्रतारित दारा का दिल्ली की ओर प्रत्यावर्तन। युद्ध में युवराज दारा की

पराजय तलवार की शक्ति से नहीं, प्रतारणा शक्ति के द्वारा हुई है। जिस युवराज दारा के द्वारा अभी कुछ दिन पहले तक मुगल-सम्राज्य का स्वर्ण-सिंहासन अलंकृत होता था, आज उसी दारा को लोगों ने दिल्ली के राजपथ पर रोगणी हथिनी की नग्न पीठ पर जाते हुए देखा।

युवराज दारा की इस छिन्न-भिन्न अवस्था को देखकर प्रजा अत्यन्त व्याकुल और विचलित हो उठी है। नगर-निवासियों ने औरङ्गजेब को, उसकी धूर्तता, नृशंसता और वीभत्स भीषणता के लिए अभिशाप देखकर अपने आँसू पोंछे हैं। नगर-निवासी महिलाओं के नेत्रों से अविरल अश्रुपात हो रहे हैं। परन्तु किसी में साहस नहीं कि वह औरङ्गजेब के इस अत्याचार का खुल कर प्रतिवाद करे।

आगरा-दुर्ग में मैं एक बन्दिनी हूँ। उसका एक विशाल कोठा आज मेरे जीवन का राज-प्रासाद बन गया है। रात्रि के गम्भीर अन्धकार में अपने निर्जन प्रकोष्ठ के भीतर, क्षीण आलोक का आश्रय लेकर अपनी इस आत्म-कथा को मैं लिखने बैठी हूँ। परन्तु अपने हृदय की गुप्त पीड़ा आज भी मैंने अपने अन्तरतर में गुप्त रखी है। हृदय की यह गुप्त पीड़ा ही आज मेरा जीवन है। जनहीन इस दुर्ग में मेरे जीवन का और कोई आश्रय नहीं है। इस पीड़ा और वेदना में त्रस्त होकर मैं अश्रुपात करती हूँ और फिर उसी के साथ बातें करके मैं अश्रु मोचन करती हूँ। वेदना की इन स्मृतियों के साथ मेरे जीवन की श्वासों और निश्वासों का अमिट सम्बन्ध हो गया है।

मुझे प्रिय था स्नेहमय बन्धु दारा और मैं उसकी अनुराग-पूर्ण बहन थी। सम्राट अकबर के स्वप्न को सम्भव करना प्रिय बन्धु दारा के जीवन का उद्देश्य था। दारा की यह अभिलाषा

उसके जीवन की पवित्रता थी। भारत की अपरिमित धन-राशि अकबर को आकर्षित न कर सकी थी। अनेक युगों से भारत की जो उच्चाकांक्षा थी, सम्राट अकबर ने उसी के परिपूर्ण करने का प्रबल प्रयत्न और प्रयास किया था। सम्राट अकबर ने भारत के अतीत आत्मा के अनुसन्धान करने की चेष्टा की थी। उस प्रयास और प्रयत्न में इस देश के प्राचीन सौन्दर्य के प्रति गम्भीर श्रद्धा थी। प्रिय बन्धु दारा ने अपने जीवन में उसी का स्वप्न देखा था।

जमुना के पवित्र जल के सन्निकट ताजमहल आलोकित है। पूर्णिमा के चन्द्रलोक में वह ताजमहल हीरा के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। उसका विकास और प्रकाश अकथनीय है। समाधिस्थ माता ताजबीबी के कानों में कुरान की पुण्य वाणी प्रतिध्वनित होती रहती थी। परन्तु आज ताजबीबी के कानों में उस पुण्य वाणी की ध्वनि प्रवेश नहीं करती। माता की समाधि के सन्निकट प्रिय बन्धु दारा का रक्ताभ मुख-मण्डल रखा गया है। माता का समाधिस्थ शरीर-पुञ्ज विकम्पित हो उठा है। समाधि की चिर निद्रा में माता क्या सोच रही है। कौन जानता है!

ताजमहल के उच्च मीनार के ऊपर सूर्योदय हुआ है। हीरा के समान ताजमहल आज अलोकित नहीं है। वह विशाल रक्त-विन्दु के रूप में परिणत हो गया है।

औरङ्गजेब, मैं तुमसे घृणा करती हूँ। तुमने मेरे प्रिय बन्धु दारा का सर्वनास किया है। अधार्मिक कह कर तुमने उसकी हत्या की है। इस्लाम में अधार्मिक के लिए अनेक प्रकार के दण्डों की व्यवस्था है। परन्तु बन्धु दारा को अधार्मिक कह कर अपवाद लगाना अधार्मिकता की सीमा से भी परे हैं।

औरङ्गजेब, तुमने अपने छोटे भाई मुराद और उसके पुत्रों को ग्वालियर के दुर्ग में विष देकर हत्या की है। तुमने मुझे विष क्यों नहीं दिया। मेरे जीवन की सम्पूर्ण अनुभूतियों और स्मृतियों का क्षय हो जाता। मैं यन्त्रणा और वेदना से मुक्ति पा जाती!

औरङ्गजेब, मैं आज भी जीवित हूँ—इस भीषण यन्त्रणा के मध्य में रहकर भी मैं जीवित हूँ। मेरी स्मृतियाँ और अनुभूतियाँ मेरे जीवन में प्रज्वलित चिता के रूप में परिवर्तित हो उठी हैं। परन्तु फिर भी मैं जीवित हूँ। अपने जीवन के मूक अन्धकार में बैठ कर मैं तुमको अपनी पीड़ा का सम्वाद भेजती हूँ। मृत्यु की भीषणता का अतिक्रम करते हुए यह सम्वाद तुम्हारे पास पहुँचेगा, आज रात्रि के विकट अन्धकार में एक अद्भुत शक्ति के मुझे दर्शन होंगे।

इस नीरव और निर्जन स्थान में मैं उस अद्भुत और अपूर्व शक्ति का दर्शन करूँगी। उसकी भीषण काली छाया में मैं त्रस्त न हो सकूँगी। मैं धैर्य और साहसपूर्वक नेत्रों से उसके दर्शन करूँगी। वह अपूर्व शक्ति क्षण-भर के बाद आकाश में जाकर काले बादलों के रूप में पतिवर्तित हो जायगी। उसके पश्चात् एक भीषण आँधी का जन्म होगा सन्पूर्ण दिशायें अन्धकार-पूर्ण हो जायँगी। बिजलियाँ तड़पेंगी—अग्नि की वर्षा होगी। और तुम्हारा यह सम्पूर्ण साम्राज्य जल कर क्षार-क्षार हो जायगा।

औरङ्गजेब, मैं भविष्यत्वाणी करती हूँ। तुम शक्तिमान हो। किन्तु धूर्त और प्रताकर हो। तुम भगवान को डरो। तुमने अपने आपको शक्तिशाली मान लिया है। मैं भी तुमको शक्तिशाली कहती हूँ। परन्तु तुम्हारी शक्ति से भी भगवान की शक्ति बड़ी

है। तुम्हारी शक्ति सीमित है और उसकी शक्ति असीम और अपार है। इसीलिए मैं तुमसे कहना चाहती हूँ कि तुम भगवान को डरो और उस पर विश्वास करो।

औरङ्गजेब, तुमने अपने पूर्वज सम्राट अकबर के विरुद्ध आचरण किया है। यह तुमने भूल की है। तुममें और अकबर में बहुत बड़ा अन्तर है। अकबर ने निर्माण का प्रयास किया था, और तुमने विध्वंस का प्रयास किया है। मैं तुमसे अनुरोध करती हूँ। तुम नेत्र खोल कर देखो! तुम देखोगे कि तुम कितनी बड़ी भूल कर रहे हो। तुमने जिस पथ का अनुसरण किया है, उसमें कहीं पर तुम्हारे लिए कल्याण नहीं है। तुम्हारे विचारों की छाया, तुमको सत्य से बहुत दूर ले जा रही है। तुम आँखें खोल कर देखो। कुरान की पवित्र वाणी को तुम समझने की चेष्टा करो, औरङ्गजेब!

इस देश की पृथ्वी माता आज विजेता की क्रीत दासी है। लोभ और घृणा—दोनों के द्वारा हिन्दुस्तान भयानक रूप से लूटा गया है। यदि किसी ने अपनी उज्वल प्रेरणा से उसकी राष्ट्रीयता को पुनर्जीवित किया होता तो निस्सन्देह यह देश उसके और उसकी सन्तानों के लिए, पिता के समान संरक्षक बन जाता। आज भी मुगल-साम्राज्य में उसका राज्य-सिंहासन आलोकित है। परन्तु उस सिंहासन के मणि-माणिक्य भीषण विपदाओं को उसी प्रकार आकर्षित कर रहे हैं, जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचने का काम करता है।

औरङ्गजेब, तुम दूरदर्शी हो। नेत्र खोल कर देखो, विश्व की एक अद्भुत शक्ति शीतल बन कर आ रही है। मैं उसकी अनुभूति पाकर विकम्पित हो उठी हूँ वह शक्ति रक्त-सागर के दूत के रूप में है। भविष्य की भीषणता को नेत्र खोलकर देखो।

तुम्हारा साम्राज्य धूलिसात होगा। तुम्हारा दिवा स्वप्न, तुम्हारे अहंकार के टुकड़े-टुकड़े करके छोड़ेगा। सम्पूर्ण दिल्ली का करुण क्रन्दन मैं रात्रि के अन्धकार में सुनती हूँ! यह क्रन्दन एक बार और सुनायी पड़ा था और सुनायी पड़ा था उस समय जब तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया था। वही क्रन्दन मुझे अब फिर सुनायी पड़ने लगा है।

इसलिए औरङ्गजेब, तुम उसको सुनो और समझो। मैं अब शान्ति की अभिलाषा करती हूँ। परन्तु शान्ति! शान्ति का अधिकारी कौन है? मृतात्मा ही उसका एक मात्र अधिकारी होता है। परन्तु नहीं, शान्ति का अधिकारी प्रत्येक मृतात्मा नहीं होता। धन-राशि का प्रलोभन समाधि में भी मृतात्मा को शान्ति का अधिकारी नहीं बनाता। इसीलिए मैं मूल्यवान प्रस्तरों द्वारा निर्माण होने वाली रचना में समाधिस्थ न होऊँगी। मृत्तिका मिश्रित तृण समूह मेरी समाधि का आवरण बनेगा। चरणों का आघात पाकर एक बार विनष्ट होने पर वे फिर उसी मृत्तिका पर जन्म ले सकेंगे।

भगवान, पीड़ित, पद दलित, प्रतारित और विपर्यस्त को एक मात्र तुम्हारा ही आश्रय है!

---

[२]

जीवन के प्राण

सूर्यास्त होने का समय है। वायु की गति मन्द हो रही है। फूलों की मनोहर सुगन्ध से पृथ्वी पर आमोद का संचार हो रहा है। राजप्रासाद के अंगूरी बाग में विभिन्न प्रकार के फूल हैं। प्रत्येक फूल के साथ मेरे जीवन की स्मृतियों का अटूट सम्बन्ध है।

कनेर के रक्तवर्ण फूलों को देख कर मेरे मन में अनेक प्रकार की भावनायें उठती हैं। अपने प्रिय बन्धु के विवाहोत्सव में मैंने इन्हीं फूलों की न जाने कितनी मालायें बनायी थीं, धीमी वायु में बाग के नीले पुष्प मस्ती के साथ हिल रहे हैं। उनकी सुगन्ध मधुर बातास में मिलकर एक क्लेश पूर्ण सम्वाद लेकर मेरे पास आती है, उस सम्वाद में अतीत काल की मेरी अनेक स्मृतियाँ छिपी हुई हैं।

दीवाने आम के संगीत-स्वर सुनायी नहीं पड़ते। किन्तु सन्ध्या कालीन आकाश में एक करुण स्वर गूंज रहा है। ऐसा जान पड़ता है, मानो रक्तवर्ण गुलाब के फूलों की सुगन्ध में 'दुलेरा' का संगीत मिश्रित हो गया है। बुन्देला राजपूत छत्रसाल के 'दुलेरा' नाम से सभी परिचित हैं। परन्तु मैंने 'दुलेरा' को 'राजा' नाम दे रखा है। दुलेरा के संसर्ग और सम्पर्क की विभिन्न कल्पनायें मेरे जीवन में रही हैं। किन्तु उसका संगीत-

स्वर मुझे उस लोक में ले गया था. जहाँ की भूमि को मेरे चरणों ने कभी स्पर्श नहीं किया था। उसके रूप की अस्पष्ट स्मृति आज मेरे नेत्रों के सामने है। उसके संगीत की प्रतिध्वनि मेरे कानों को सुनायी पड़ रही है।

अपने जीवन के साथ शालिमार बाग में शहद की मक्खियों की मैं तुलना करती थी। प्रत्येक क्षण मैं उत्तेजना का अनुसन्धान करती और मधुमक्षिकाओं की ओर ईर्षालु होकर देखती। पुष्प-रस की अनुरागिनी मक्खियों को मैं देखती और विभिन्न प्रकार की कल्पनाओं के साथ मैं उड़ने लगती। शालिमार बाग की स्मृतियाँ आज भी मेरे सामने हैं। दिल्ली के उस प्रासाद को भी भूल नहीं सकी, जिसमें उस बाग का अस्तित्व प्रतिष्ठित किया गया है।

सूर्यास्त कालीन रक्ताभ रश्मियों ने जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण पत्तों के मस्तक भाग को सोने का मुकुट पहना दिया है, ठीक उसी प्रकार मैंने अपने प्रिय राजा के सिर में स्मृति-मुकुट पहनाया है।

वह स्मृति आज भी उतनी ही नवीन और प्रभावपूर्ण है, जिस प्रकार वह आरम्भ में थी। जिस दिन राज-दरबार में आकर मेरे प्रियतम ने पिता सम्राट शाहजहाँ को अभिवादन किया था, उस दिन मैं तरुणी थी। वंशी और करतालों की ध्वनि शान्त हो रही थी। चारों ओर नीरवता थी। मैं अपने महल के झरोखे के निकट खड़ी थी। अपने राजा को आहिस्तगी के साथ सिंहासन की ओर बढ़ते हुए मैंने देखा। उस समय मेरे सम्पूर्ण शरीर का रक्त-प्रवाह गतिहीन होता हुआ मुझे मालूम हो रहा था।

मैंने अपने राजा को भली प्रकार देखा। उस समय मैं अपने आपको कुछ समझ न सकी। मेरे नेत्र राजा को देख रहे थे। मैंने उनको निषाद-राजा नल के रूप में देखा। मुझे मालूम हुआ, मानो राजा नल ने फिर इस पृथ्वी पर अवतार लिया है। राजा नल की समस्त स्मृतियाँ मेरी आँखों के सामने नृत्य करके लगीं। राजा नल-दमयन्ती के स्वामी राजा नल का मैंने स्वप्न देखा। अपने राजा मुझे राजा नल के रूप में उनकी परिस्थितियों की आड़ में दिखायी देने लगे। प्राचीन स्मृतियाँ सामने आकर मुझे आकुल-व्याकुल करने लगीं। मुझे दमयन्ती—सती दमयन्ती की याद आयी। जिसने स्वयंबर में देवता की उपेक्षा करके राजा नल को पति के रूप में वरण किया था।

सिंहासन की ओर अग्रसर होते हुए मैंने अपने रजा को देखा। मैंने देखा, उनका पदक्षेप और देखी उनकी गम्भीर मुख-मुद्रा। उनके नेत्रों में मुझे अपूर्व ज्योति दिखाई पड़ी। मुझे स्वप्न के आवेग का अनुभव हुआ। उनके शरीर में था, उनका क्षत्रियोचित शौर्य एवम् मर्यादा का प्रकाश!

मैंने राजा का राजपूती वेश देखा और देखा उनके मुख-मण्डल पर क्षत्रियोचित रेखाओं का प्रस्फुटन। मेरे नेत्रों से छिपा न रहा उनके नेत्रों का माधुर्य मिश्रित शौर्य। दमयन्ती ने जिस प्रकार एक दिन देवता के प्रति उपेक्षा करके नल को वरण किया था, मैंने भी अपने हृदय में इस राजपूत के प्रति अपने उद्देश्य की अभ्यर्थना की थी।

मेरे जीवन का यह प्रथम अवसर था। इसके पूर्व मेरे नेत्रों में किसी के लिए यह स्थान नहीं मिला और इसके पश्चात् भी मैं दूसरे किसी को स्वीकार न करूंगी। पहले ही दर्शन में मैंने उनको अपने हृदय की पूजा समर्पित की थ। दर्शनों के प्रथम

क्षण में ही वे मेरे हृदय के देवता हो चुके थे आज भी वे मेरे जीवन के प्राण हैं!

विशाल परधारी पतिंगा सूर्य के प्रकाश में नृत्य करता है, मैं जीवन की शाश्वत अवस्था प्राप्त करूँगी और शाश्वत में ही मैं मिश्रित हो जाऊँगी। सावित्री की भाँति मैं मृत्यु पर विजय प्राप्त करूँगी। पृथ्वी के उस लोक में मैं अपने राजा का अनुसरण करूँगी, जहाँ पर सीमा रहित मेरी भावना का राज्य होगा।

मेरे बन्धु औरङ्गजेब ने संगीत के विरुद्ध घोषणा की है। संगीतज्ञों ने अपने वाद्य यन्त्रों को शवयात्रा समारोह के पश्चात् समाधिस्थ कर दिया है। परन्तु सम्राट कोई भी अनुशासन अन्तरतर के संगीत को रोक न सकेगा।

भाग्य की भीषण कठोरता ने उच्च प्राचीन की तरह मेरे जीवन को घेर रखा है। सम्राट अकबर के आदेश के अनुसार, मुगल-राजकुमारी का विवाह न होगा; मुगल-साम्राज्य के कल्याण के लिए अकबर के इस आदेश को विधान का रूप दिया गया है। यह है मेरे जीवन के उत्सर्ग का जीवित रूप।

पर्वत के शिखर पर एक छोटा-सा प्रासाद है। उसके साथ मेरे जीवन की एक स्मृति है। उस प्रासाद के श्वेत सुन्दर बाहरी भाग और सुवर्ण खचित द्वार का अगाध जल-समूह पर प्रतिबिम्ब पड़ता था। परन्तु आज उस प्रतिबिम्ब का अस्तित्व नहीं है। इसीलिए उस जल में है नीरवता-निस्तब्धता। प्रतिबिम्ब का मूलाधार विलीन हो गया है। परन्तु उस प्रासाद के साथ मेरे जीवन का पुराना परिचय है। उसके भीतरी भाग में मैं राज-सभा का निर्माण करती थी, उसकी सुन्दरता अपूर्व होती थी। उसमें सम्पादित होने वाले भोजनोत्सव को देखकर स्वर्गलोक के देवता एक बार लालायित हो उठते थे। उस भोजन के कमरे में

जो नृत्य होता था, उससे एक बार अद्भुत अवस्था का जागरण हो उठता था। भोजन के समय काबुल और काश्मीर के रत्न-किंत पात्रों में जब मदिरा का आयोजन होता था, उस समय जीवन की चिन्तनाओं का स्रोत शुष्क होकर अन्तर्हित हो जाता था। परन्तु मैं ऐसा नहीं करती थी। मैं अपने प्रिय बन्धु दारा के स्वप्न को सफल बनाने वाले मार्ग का ही अनुसरण करती और करती, हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृति की दो धाराओं को एक में मिलाने की चेष्टा! विश्व के साधु, संत योगी और फकीर अपने स्नेह का मिश्रण देकर जिस अमृतमयी जीवन की मदिरा को जन्म देते, उस मदिरा का काव्य की तरंगों और भाषा के भावों में आभास होता।

उस बहती जल-धारा के अन्तरतर में उठने वाले मधुर स्वर को सुनो। अंगूरी बाग के निकट यमुना की निर्मल धारा प्रवाहित हो रही है। बाग के पत्तों का यह मर्मर-स्वर दिल्ली के नौबतखाने के गम्भीर स्वर के समान मेरे कानों में जागरित हो उठा है।

यमुना के प्रवाहित जल-धारा में जो एक अद्भुत ध्वनि सुनायी पड़ती है, उसे सुन कर मेरे हृदय में अपनी पुष्प-वाटिका की एक स्मृति का उत्थान होता है। वह करताल का सुन्दर स्वर और वीणा की प्रिय झंकार, यमुना के जल-प्रवाह के साथ आकर मेरी सायंकालीन स्मशान का चिता का मुझे स्मरण करा रही है। आज दिल्ली के राज-प्रासाद का गम्भीर संगीत, निकट-वर्ती विपदाओं के भय से होने वाले मनुष्यों के चीत्कार और मेरे अभिशापों निश्वासों के सिवा और कुछ नहीं है।

उन दिनों में मेरे भाई शुजा को बंगाल की सूबेदारी नहीं मिली थी। उस समय तक उसके नेत्रों के शत्-शत् और सहस्र-सहस्र रूप और शृङ्गार का चमत्कार लिए हुए स्त्रियों को नहीं

देखा था।* उस समय तक धन-लोलुप ज्योतिषियों ने यह बात नहीं बतायी थी कि यह छोटा-सा श्वेत सर्प जो भयानक काले साँप के ऊपर बैठा है, वह सूचना देता है कि भविष्य में शाह शुजा साम्राज्य का अधिकार प्राप्त करेगा।

उस समय तक बन्धुओं के बीच, द्वेष की आग प्रज्वलित न हुई थी। किन्तु राज-प्रासाद के भीतर-ही-भीतर विरोध की चिनगारियाँ उत्पन्न हो रही थीं। लेकन उनकी ओर किसी का ध्यान न था। जिस प्रासाद में विभिन्न प्रकार के उत्सव होते और विलासिता के उन्माद में जीवन के दिन कटते जा रहे थे।

मैं अपनी पुष्प-वाटिका में प्रतीक्षा करती थी। मैं सोचती थी, क्या मेरे राखी-बन्धु न आवेंगे ?ऽ जिस समय इस देश में शत्रुओं की शक्तियाँ आक्रमण करती हुई दिखाई दे रही हैं, क्या मैं उनको अपने निकट देख न सकूंगी ? उनके हाथ में राखी बाँधकर मैंने अपने हृदय के जिस उद्भ्रान्त प्रेम का परिचय दिया है, वह किसी दूसरी स्त्री के लिए सम्भव नहीं है! अपनी उस राखी के मूल्य को मैं स्वयं जानती हूँ।

---

* कहा जाता है कि शुजा के आमोद-प्रमोद का जो भवन था, उसके सामने से होकर सायंकाल सैकड़ों और सहस्त्रों की संख्या में स्त्रियाँ बन-ठन कर निकलती थीं और शुजा उनको देखकर प्रसन्न होता था।

ऽ मुगल-शासन काल में हिन्दूजन, रक्षा-बन्धन का उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ बनाते थे। इस अवसर पर अपने आत्मीय के हाथ में राखी बाँध कर अथवा उसके पास भेजकर आत्मीयता का परिचय दिया जाता था। उन दिनों में तैमूर-राजवंश के साथ बुन्देला राजपूतों की घनिष्टता चल रही थी। जहानारा ने बुन्देला राजपूत छत्रसाल अथवा दुलेरा के हाथ में राखी बाँध कर अपने हृदय की प्रीति का परिचय दिया था।

मेरे जीवन के प्राण जिस समय आये थे, उस समय सन्ध्या काल था और आकाश में नक्षत्रों का प्रकाश आरम्भ हुआ था और विस्तृत आसमान पर अस्त होने वाले सूर्य की लालिमा फैल चुकी थी, प्रियतम के आते ही भूमिष्ठ होकर मैंने श्रद्धापूर्वक उनको प्रणाम किया था!

——

[३]

मेरा स्वाभिमान

मैंने अपने राजा की—अपने हृदय के देवता की मधुरवाणी सुनी है। वह वाणी—जिसके द्वारा, शुष्क जीवन में प्राणों का सञ्चार होता है, मैंने उनके मुख से सुनी है। एक परदे की आड़ में खड़े होकर राजा ने—मेरे देवता ने मेरा अभिवान किया। किन्तु उस परदे ने हम दोनों के बीच एक ऊंची दीवार की भाँति अलगाव की सृष्टि की।

खड़ी होकर मैंने अपने जीवन-सम्राट का अभिनन्दन किया। उन्हीं की भाषा का मैंने अनुसरण किया और उनके आने के प्रति मैंने कृतज्ञता प्रकट की। मेरे शब्दों को सुन कर उन्होंने कहा—

"सम्राट कुमारी, क्या आपने मुझे धन्यवाद दिया है ?"

इस प्रश्न को सुनते ही मैंने उनकी ओर देखा उनके नेत्रों में सूर्य का प्रकाश था और सम्पूर्ण शरीर में सागर की-सी लहरें थीं। मैंने निर्निमेष नेत्रों से उनकी ओर देखा, मैंने देखा उनके शरीर में तरंगे लेता हुआ राजपूती शौर्य और वीरात्माओं का उज्वल प्रताप। प्रियतम ने फिर कहा—

"सम्राट कुमारी, आपके माननीय पिता सम्राट शाह-जहाँ एक दिन अपने दुर्दिनों के कारण, उदयपुर गये

थे।* उनको सम्मान देने के लिए हम लोगों ने एक विशाल द्वार का निर्माण किया था। उस द्वार पर आज भी प्रकाश हो रहा है। जब तक एक भी राजपूत जीवित रहेगा, वह प्रकाश उस समय तक अपना आलोक देता रहेगा। जब तक मेरी भुजाओं में शक्ति रहेगी, मेरी तलवार उस समय तक सम्राट कुमारी के सम्मान की रक्षा करेगी।"

मैंने कृतज्ञतापूर्वक प्रियतम के मुख से इस बात को सुना। अपने हृदय के उभड़ते हुए भावों को सम्हाल कर मैंने पूछा—"परन्तु राजपूत का सम्मान ?"

मेरे प्रश्न के समाप्त होते-होते प्रियतम की हास्य-रेखा मलीन हो उठी। क्षण-भर में उन्होंने कहना आरम्भ किया—

"ओफ, दुर्भाग्य ! इस देश के क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने ही इस देश के दुर्भाग्य को आमन्त्रित किया है। सम्राट कुमारी, क्या आपको विश्वास होता है कि आपके शरीर में राजस्थान का रक्त है ? दिल्ली की रक्षा करने के प्रश्न पर राणा समरसिंह ने मोहम्मद गोरी से युद्ध करने के लिए एक दिन तलवार निकाली थी। उसी प्रतापी राजपूत का गौरव आपके जीवन में उद्भासित हो रहा है।"

"युद्ध कालीन एक गम्भीर रात्रि में समरसिंह ने परदे के भीतर एक स्त्री को देखा था। अकस्मात् उसका परदा खुल गया। वह स्त्री अद्भुत सुन्दरी थी। समरसिंह उसके मुख की ओर देख ही रहे थे, उसी समय आकाशवाणी हुई—"पराक्रमी राज-

---

* सम्राट जहाँगीर के विरुद्ध शाहजादा शाहजहाँ ने विद्रोह किया था और अपनी सहायता के लिए वे चित्तौर गये थे। सहायता पाने के लिए आये हुए की मदद करना चित्तौर के राणा का प्रमुख कार्य था।

पूत तुम्हारे जीवन के साथ-साथ, इस भारत देश का प्रताप विध्वंस हो जायगा।"

"उसके पश्चात् दिल्ली का पतन हुआ। शताब्दी पर शताब्दी बीत रही है। दिल्ली का प्रताप मिट्टी में मिल चुका है। हम लोग राजपूत हैं। हम लोगों के ऊपर इस देश की रक्षा का भार है। परन्तु हम लोग आज भी आपस की कलह में एक, दूसरे के विनाश का स्वप्न देख रहे हैं।"

प्रियतम की बात को सुन कर मैंने उनकी ओर देखा, उनकी गम्भीर मुख-मुद्रा का मैंने एक बार अभिनन्दन किया और फिर उनको उत्तर देते हुए मैंने कहना आरम्भ किया—

आपके पूर्वजों ने कन्नौज-कुमारी संयुक्ता के लिए युद्ध किया था। पृथ्वीराज जब युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उसी अवसर पर संयुक्ता ने अपने प्रियतम पृथ्वीराज से जो कहा था, आपको उसकी याद है? संयुक्ता ने कहा था, 'युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु होने पर मनुष्य को अमर पद प्राप्त होता है। प्रियतम, तुम मेरी चिन्ता न करके उस अमर पद का ख्याल करो। युद्धक्षेत्र में जाकर शत्रु के टुकड़े-टुकड़े कर डालो। मृत्यु के बाद मेरा और तुम्हारा फिर जन्म होगा और उस जीवन में मैं तुम्हारा प्रियतमा बनूंगी।' जिस समय युद्ध में पृथ्वीराज की मृत्यु हुई, संयुक्ता पृथ्वीराज के मृत शरीर के साथ भस्म होने के लिए चिता पर बैठी और उसने कहा, 'मैं अब भस्म होती हूँ, स्वर्ग में प्रियतम से मेरा साक्षात होगा।' इसके बाद संयुक्ता की चिता प्रज्वलित हो उठी मेरे प्रियतम दुलेरा को क्या इस बात का विश्वास है कि इस लोक में जिसका मिलना नहीं होता, उसका उस लोक में सम्मिलन निश्चित है?

मेरे सामने एक ही प्रश्न था और उसका एक ही लक्ष्य था। उसी एक प्रश्न के द्वारा मेरे जीवन की चिर-सञ्चित अभिलाषा सजीव हो उठी।

अपने देवता के मुख-मण्डल पर मुझे हास्य दिखायी पड़ा। नेत्र खोल कर मैंने उसे देखा। उस हास्य की रेखाओं में लिखा हुआ मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिला। उस उत्तर को मैं समझने की चेष्टा करने लगी। मुझे स्पष्ट मालूम होने लगा कि चिता की प्रज्वलित अग्नि ही मनुष्य के जीवन को निर्मल करने में सफल नहीं होती। जिस प्रकार एक कठिन समस्या का उत्तर देने के लिए केवल एक शब्द परियाप्त होता है, ठीक उसी प्रकार एक हृदय का स्पर्श करके इस संसार के बन्धनों से छुटकारा मिल सकता है।

मेरे मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठने लगी। मैं जिस झरोखे के पार खड़ी थी, उसके अत्यन्त निकट पहुँच गयी। क्षण-भर में मैंने अनुभव किया, यह झरोखा ही मेरे आनन्द लोक से, मेरे दूर होने का कारण हुआ है।

दुर्ग की रक्षक प्राचीर जिस प्रकार विजयी पुरुष के चरणों का चुम्बन करती है, उसी प्रकार यदि यह झरोखा मेरे सामने भूमिसात् हो जाता! मेरे मनोभावों में सन्तोष का सञ्चार हुआ। मैं जो कुछ कहना चाहती थी और अपने प्रियतम से जो कुछ मैं कह रही थी, उसमें मैंने लज्जा का आवरण बना रखा था और भाषा उसके आभूषण का काम कर रही थी। मैंने अपने प्रियतम के अधरों पर मुस्कान के दर्शन किये।

अनेक दिन बीत गये। विस्तृत आकश में प्रकाश की माला दिखायी पड़ी। मैं सहज ही सोचने लगी। इन नक्षत्रों को एक क्रम और व्यवस्था में किसने रखा है ? दीवाने आम में होने

वाले गाने सुनायी न पड़ रहे थे। उस नीरवता में जल का सुन्दर स्वर मेरे कानों में पहुँचा। साथ ही अपने हृदय की धड़कन की ध्वनि-प्रतिध्वनि भी मैंने सुनी। मैंने अत्यन्त क्षीण स्वर में उन होने वाली बातों का अन्त किया।

भविष्य की आलोचना करते हुए मैंने कितनी ही बातें सोच डालीं और अपने प्रियतम की ओर देखकर मैंने प्रश्न किया—

मेरे पिता सम्राट शाहजहाँ और प्रिय बन्धु दारा के प्रति आप सम्पूर्ण जीवन अनुरागी रहेंगे ?

प्रियतम ने हंस कर कहा—सम्राट अकबर किसी समय इस विशाल भारत के बादशाह थे। उन्हीं दिनों में प्रतापसिंह एक छोटे-से राज्य मेवाड़ के राणा थे। राणा प्रताप समरसिंह के वंशज थे। सम्राट अकबर ने कल्पना की थी। सम्पूर्ण भारत को विजय करने की। उन्होंने स्वप्न देखा था, भारत की एकता का। राणा प्रताप ने निश्चय किया था, अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए। अपने पूर्वजों की राज्य-सत्ता को सुरक्षित रखने की उनकी प्रबल आकांक्षा थी। उनका विश्वास था, भारतवर्ष में जब तक एक भी क्षत्री जीवित रहेगा, राणा प्रताप उस समय तक जीवित रहेंगे।

दूरवर्ती पुष्प-वाटिका से गुलाब के फूलों की सुगन्ध सन्ध्या-कालीन क्षीण वायु में मिश्रित होकर आ रही थी। उसके साथ ही मेरी छोटी अवस्था की सुखद स्मृतियाँ प्रवाहित हो उठीं। एक दिन सायंकाल एक वृद्ध राजपूत महिला मेरे महल में बैठकर राजपूत राजवंश की गौरव-गाथा सुना रही थी।

उस वृद्धा की बातों को सुनते-सुनते मैं अपने आपको भूल गयी और मैं समझने लगी, मैं हिन्दुस्तान के राज-वंश की एक सन्तान हूँ। स्वाभिमान के साथ मैं कह उठी—

"मेरे पूर्वज थे, विश्व विख्यात बादशाह बाबर और प्रताप-सिंह थे बाबर के प्रतिद्वन्दी—राणा संग्राम के वंशज। बाबर ने भारत-सम्राट इब्राहीम लोदी को पराजित किया था और उनके राज्य पर अपना आधिपत्य कायम किया था। एक छोटी-सी सेना लेकर बाबर ने राजस्थान की सम्मिलित सैनिक शक्तियों का सामना किया था। प्रियतम आपको मालूम हैं, उस युद्ध में विजयी होने के पहले ही बाबर ने मूल्यवान मदिरा पीने के पात्र को दूर फेंक कर प्रतिज्ञा की थी—'आज से मदिरा को स्पर्श न करूंगा।, उनका मन पवित्र हो गया था। अपने बादशाह का अनुसरण करके उनके तीन सौ सैनिकों ने भी प्रतिज्ञा की थी—'आज से मदिरा का स्पर्श न करेंगे।, इस प्रकार की प्रतिज्ञा से उनके प्रणों में नवीन उत्तेजना का जन्म हुआ। कुरान को स्पर्श करके उन लोगों ने शपथ ली, 'विजय या मृत्यु!' इस शपथ के पश्चात् 'अल्लाहो अकबर; की बुलन्द आवाज के साथ वे लोग राजपूतों की विराट सेना पर टूट पड़े। इस युद्ध में राणा संग्राम-सिंह विक्षुब्ध से हो रहे थे। वे उस समय किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। विजयी बादशाह बाबर का अभिनन्दन किया गया। क्या आप बता सकते हैं कि राणा संग्रामसिंह उस समय किसकी प्रतीक्षा कर रहे थे?"

प्रियतम के नेत्र मेरी ओर देख कर रह गये थे। वे बोल उठे—"हम लोग भारतवासी हैं, हम लोग हिन्दू हैं, भाग्य पर हम लोग विश्वास करते हैं। भाग्य पर ही हम लोगों की आस्था है। मैं समझता हूँ राणा संग्रामसिंह ने अन्तिम समय तक भारत की स्वाधीनता का स्वप्न देखा था। किन्तु विश्वासघातियों ने उनको धोखा दिया था। वे पराक्रमी योधा थे। उनके मस्तक पर युद्ध के अस्सी जख्मों के क्षत स्थान थे। उनके एक हाथ था

और एक नेत्र था। किसी प्रकार की आकांक्षा में वे निश्चेष्ट न रहते थे।"

अकस्मात् दुलेरा को हंसी आगई। समुद्र की तरंगों के समान प्रियतम की उस हंसी में गम्भीरता थी। जिस प्रकार समुद्र की तरंगे किनारे की चट्टानों को धक्का देती हैं, ठीक उसी प्रकार प्रियतम की गम्भीर किन्तु कठोर हंसी से मेरे अन्तःकरण को एक आघात पहुँचा। मैंने झरोखे की भूमि का अपने नेत्रों से स्पर्श किया। यह स्पर्श हम दोनों की नेत्रों का-सा स्पर्श मालूम हुआ। मुझे चंदबरदाई की पंक्तियों की याद आयी। मैं मन-ही-मन कह उठी—गायक कवि चन्द बरदाई की वीरोचित पंक्तियाँ कितनी उत्तेजक है। उसने अपनी काव्य-पक्तियों में जिस शौर्य का समावेश किया है, वह सचमुच जीवन को अपूर्व उत्तेजना देने वाला है। वीर राजपूतों के सम्पर्क में रह कर बरदाई सचमुच वीरगाथा के उल्लेख करने और उसे काव्य के उत्तेजक शब्दों में रखने का अधिकारी हो गया था।

मैं कह उठी—"प्रियतम, राजपूतों को मृत्यु का भय कहना, एक निराधार अपवाद है।" इसके बाद हम दोनों सम्राट अकबर और राणा प्रताप की आलोचना करने लगे।

प्रियतम ने कहना आरम्भ किया—"अपने सामन्तों को ले कर अकेले राणा प्रतापसिंह ने सम्राट अकबर के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। राजस्थान के सम्पूर्ण नरेशों ने दिल्ली-सम्राट का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। दिल्ली-सम्राट की यही तो एकबड़ी शक्ति थी। वे सभी नरेश दिल्ली-सम्राट को युद्ध में सहायता करने के लिए रवाना हुए। पच्चीस वर्षों तक वह भयानक संग्राम चलता रहा। अरावली पर्वत ने राणा प्रताप

के दुर्ग का काम किया और बनस्थली राणा की राजपुरी के रूप में परिणत हुई। जंगलों की घास उनकी शय्या बनी और जौ की रोटी उनके भोजन की सामग्री हो गयी। सम्राट अकबर ने बप्पा राव की राजधानी की लूट की थी। उस लूट में कठोरता थी, नृशंसता थी और अमानुषिकता की प्रेरणा थी। उस कठोर अमानुषिकता के करुण गाने आज भी राजपूताने की भूमि पर गाये जाते हैं।"

"उस विध्वंस के पश्चात् चित्तौर के मन्दिरों में सन्ध्या-कालीन दीपक नहीं जले। उसके बाद से ही राजपूतों के गौरव का प्रकाश इस देश में बुझे हुए दीपक के समान दिखाई पड़ा। राजपुरी में बजने वाले युद्ध के बाजे बन्द हो गये हैं। अतीत काल में राणा का दुर्ग में प्रवेश करना और उससे बाहर निक-लना, युद्ध में बजने वाले बाजों के साथ घोषित होता था। सालुम्ब्रा-नरेश के मारे जाने पर बप्पाराव के वंशजों में किसी स्वतन्त्र नरेश ने सूर्यद्वार को अतिक्रम नहीं किया।

"इसके बाद समचार मिला कि राणा प्रताप ने सन्धि की प्रार्थना की है। यह भी सुना गया कि राणा अपने जीवन की सम्पूर्ण विपदाओं को सहन करने का साहस करते है किन्तु उन की संतान को अरण्य-वास करने में जो क्लेश मिले हैं, उनको देखकर राणा का साहस और धैर्य टूट गया है।"

"सम्राट अकबर के यहाँ अनेक राजपूत सामन्तों और नरेशों ने शरण ले रखी थी। राणा प्रताप के सन्धि-सम्बाद को सुनकर और जानकर वे सभी विक्षिप्त हो उठे। यद्यपि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुके थे, परन्तु उनके जीवन में राजपूतों के गौरव की श्वास का अन्त नहीं हुआ था। राणा प्रताप के

स्वाधीनता-संग्राम के सम्बादों पर वे मुगल-अधीनता में रहने पर भी स्वाभिमान की साँसे ले रहे थे। अपनी स्वाधीनता का वे अन्त कर चुके थे। परन्तु स्वाधीनता की रक्षा के नाम पर मृत्यु और सर्वनाश को आमन्त्रित करने वाले राणा प्रताप के प्रति आदर और सम्मान को वे विस्मृत न कर सके थे।"

"राजा पृथ्वीराज योद्धा होने के साथ-साथ कवि भी थे। राणा प्रताप के सन्धि-सम्बाद को सुनकर उन्होंने लिखा—'एक हिन्दू को हिन्दू की ही आशा हो सकती है।' पृथ्वीराज के इस वाक्य में एक हिन्दू-हृदय की पीड़ा थी। उस पीड़ा ने राणा के अन्तःकरण में प्रेरणा उत्पन्न की। उन्होंने अपनी मातृ-भूमि की स्वाधीनता का एक बार फिर स्मरण किया और विराट मुगल-सेनाओं के साथ युद्ध करने की एक प्रबल आकांक्षा उनके हृदय में जागरित हो उठी। देश की, मातृ-भूमि की और अपने जीवन की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए अपनी सेना के राजपूतों के स्वाभिमान को राणा ने एक बार फिर ललकारा! राजपूत-प्रकृति, वस्त्रावृत बारूद के समान होती है। राणा प्रताप की ललकार के शब्दों ने उस समय चिनगारियों का काम किया। अपने जीवन में उन्होंने जिस प्रकार स्वतन्त्रता का सम्मान किया था, मृत्यु की घड़ी तक उस स्वतन्त्रता की वे रक्षा करते रहे। स्वतन्त्रता में उन्होंने जन्म लिया था और स्वतन्त्रता में ही उन्होंने अपने प्राणों का त्याग किया?"

"राजपूतों की जो नीली पताका कितने ही युगों तक अपने गौरव की घोषणा करती रही और जिसकी स्वाधीनता की रक्षा में राणा प्रताप ने सहस्त्रों और लाखों राजपूतों के साथ-साथ अपने प्राणों का बलिदान किया था, उसका संरक्षण राणा

पुत्र अमरसिंह के द्वारा सम्भव न हो सका। शत्रुओं से त्रस्त होकर अमरसिंह ने हमारे सम्राट शाहजहाँ का आश्रय लिया।"

इसी समय पुष्प-वाटिका की नीरवता में सुनायी पड़ा 'राजपूत नरेश!' उसके पश्चात फिर नीरवता उद्भासित हुई। कुछ देर तक सुनायी पड़ने वाले स्वर की प्रतिध्वनि होती रही। यह स्वर दुलेरा के मुख से निकला हुआ स्वर न था। स्पष्ट मालूम हुआ, यह स्वर किसी दूसरे के कण्ठ से निकला हुआ था।

इसके उपरान्त दुलेरा ने फिर कहना आरम्भ किया—"चित्तौर के दुर्ग पर आज भी राजपूत स्त्रियों के अर्घ्य के साथ मानो अतीत युग लौटा हुआ आ रहा है। रानी पद्मिनी के टूटे हुए प्रासाद की प्राचीर के ऊपर कोयल बसन्त के गाने गाती है। टूटे हुए स्तम्भों के ऊपर मयूर अनेक वर्णों में चमत्कृत अपनी पूँछों को फैला कर नृत्य करते हैं। प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष उत्थित स्थानों में बैठ कर विभिन्न पक्षी बोलते हुए मानो किसी अतीत दृश्य पर चीत्कार कर रहे हैं! आज भी वहाँ के गगन चुम्बी राणा कुम्भ के विजय-स्तम्भ, अतीत युग के उज्वल गौरव की स्मृति दिला रहे हैं! उनके अस्तित्व चित्तौर के विध्वंस के परिचायक नहीं हैं। वे तो एक मात्र राजपूत-विजय की नीरव साक्षी का दर्शन करते हैं! इन विजय स्तम्भों के नीचे बैठकर गायक जन, वीणा के स्वर में स्वर मिला कर, पराक्रमी राजपत पुट्टा और जयमल की बहादुरी के गीत आज भी गाये जाते हैं।*

---

*विराट मुगल-सेनाओं के साथ युद्ध होने पर, चित्तौर की सेना के दो राजपूत वीरों ने सम्राट अकबर की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न किया था, वीर पुट्टा और पराक्रमी जयमल ने। उनके मारे जाने पर सम्राट अकबर

चित्तौर की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए उन दोनों राजपूत वीरों ने सम्राट अकबर की विराट सेनाओं के साथ युद्ध किया था। पराक्रमी पुट्टा की माता और पत्नी ने अपने हाथों में तलवारें लेकर राजपूत सेना के सामने खड़ी होकर सैनिकों को उत्तेजित किया था। उन्होंने स्वयं युद्ध में भाग लिया था और अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। चित्तौर के बलिदानों के गीत आज भी गाने वालों के मुख से सुने जाते हैं। शत्रुओं के हाथों में वन्दिनी होने की अपेक्षा वीर राजपूत महिलाओं ने प्रज्वलित अग्नि में कूदकर जीवनोत्सर्ग करना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा था। जिस दिन अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण किया था, उस समय दुर्ग के पीछे विस्तृत चिता बना कर नगर की समस्त राजपूत महिलाओं को लेकर वीर आत्मा पद्मिनी भस्मसात् हुई थी। आज बलिदान की रोमाञ्चकारी गाथायें गायक लोग आज भी गाकर अपने आपको धन्य समझते हैं!"

"अनेक दिन बीत गये। भारत की इस पवित्र भूमि पर एक महापुरुष के दर्शन हुए। उस महापुरुष के नेत्रों का अन्धकार नष्ट हो चुका था। उस सत्य पुरुष ने अनुभव किया था कि ईर्ष्या, द्वेष और संग्राम का कोई महत्व नहीं होता। उस प्रकृत पुरुष ने ब्रह्म के विराट रूप का चिन्तन किया था। जीवन के समस्त स्वर, एक ही स्वर में—पवित्र स्वर में समाविष्ट हो रहे थे। अनुभव के उज्वल आलोक में उस महापुरुष का जीवन आत्मा समुज्वल हो उठा था। इस नश्वर जगत के

ने उनके पराक्रम की स्मृति के रूप में विशाल स्तम्भों का निर्माण कराया था और उनकी मृत्यु हो जाने पर सहस्रों राजपूत स्त्रियों ने अग्नि-कुण्ड में कूद कर अपने प्राणों का विसर्जन किया था!

अन्धकारपूर्ण जीवन से निकल कर उस सच्चे पुरुष ने ब्रह्म की महानता प्राप्त की थी। वह सिद्ध पुरुष ही वास्तव में इस देश का सच्चा सम्राट था।"

"जीवन का वह सत्य, सम्राट अकबर ने प्राप्त किया था। उस महान शक्ति के द्वारा उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम द्वेषपूर्ण भावनाओं को मिटाने की चेष्टा की थी। चन्द्र और ताराओं से सुशोभित आकाश के नीचे बैठकर वे भगवान की पूजा करते और सम्पूर्ण जगत के सुख-सन्तोष के लिए वे शक्तिमान परमात्मा का आराधना करते थे। अन्य विदेशियों ने हमारे विरुद्ध अस्त्र निकाला था। परन्तु इस महापुरुष ने हमारी सुविधाओं के लिए सम्पूर्ण द्वार खोल दिये थे। हमारे प्राचीन ऋषियों की भांति उस महापुरुष के जीवन में एक अलौकिक शक्ति थी। विरोधी शक्तियों का संहार करके उस महान सम्राट ने मुसलमानों के साथ हिन्दुओं को समानता का अधिकार दिया था।"

"राणा प्रताप की मृत्यु के साथ-साथ, राजपूतों की स्वाधीनता का अन्त हो गया। परन्तु भारत के सौभाग्य-सूर्य का अन्त नहीं हुआ। एक नवीन दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। जब तक अकबर के आदर्श, तैमूर-वंश की ख्याति को इस विश्व में जीवित रखेंगे, उस समय तक राणा प्रताप के वंशज भी उससे अनुप्राणित होते रहेंगे।"

"सम्राट कुमारी, मैं अपने पूर्वजों के अस्त्रों की शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं जीवित रहूँगा, राजकुमारी जहानारा के लिए, शाहजादा दारा के लिए और सम्राट शाह-जहाँ के लिए अपना जीवन-उत्सर्ग करूंगा।"

यह कहकर प्रियतम दुलेरा ने अपनी तलवार को हाथ उठा

कर ऊंचा किया। मस्तक के ऊपर जाकर वह तलवार चारों ओर से एक प्रभापूर्ण रेखा की रचना करती हुई दिखायी पड़ी।

शताब्दियों और युगों से भारतवर्ष उसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा है। किसी समय निश्चित् रूप से उस दिन का आगमन होगा। उन्मुक्त कण्ठ से निकले हुए ये शब्द वायु-मिश्रित होकर आकाश में विलीन हो गये।

---

[४]

स्वयंबर का उत्सव

आकाश में तारों का समूह होता है। उनमें से बहुतों का प्रकाश लुप्त हो गया है, कितनों ही का क्षीण हो गया है और बहुत से अभी तक आलोक दे रहे हैं। मैं अपनी जिस दालान में बैठी हुई हूँ, उसके नीचे से जल का श्रोत अविराम गति में प्रवाहित हो रहा है। उस जल-धारा से समीप बहुत-से वृक्ष हैं। इन वृक्षों के पत्तों के समूह ने मेरे मस्तक पर छाया की रचना कर रखी है।

मेरी आँखों के सामने से प्रियतम दुलेरा चले गये। रात्रि के इस गम्भीर अन्धकार में मैं प्रियतम के प्रिय अस्तित्व को अनुभव करती हूँ और अनुभव करती हूँ, जीवन के प्रत्येक क्षण में —प्रत्येक मुहूर्त में।

रात्रि की शीतलता मेरे दग्ध शरीर को—शरीर के प्रत्येक अंग को शीतल बनाने का काम कर रही है। मेरी दालान के सन्निकट अनेक प्रकार के पुष्प खिल उठे है। दालान में होने वाले प्रकाश के नीचे बैठकर मैंने श्वेत पुष्पों की एक माला बनायी है।

मैं अपने प्रियतम की पोषाक का स्मरण करती हूँ। वे श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित थे और उनकी श्वेत पोषाक के मध्य भाग में बंधी हुई पेटी अनुपम शोभा का परिचय दे रही थी, मैंने उस

पेटी को देखा है। उसमें किया गया बहुमूल्य सोने का काम सहज ही अपनी ओर मेरे नेत्रों को आकर्षित कर रहा था।

चन्द्रमा की चिन्तना में जिस प्रकार समुद्र में ज्वार-भाटा उद्भ्रान्त हो उठता है, उसी प्रकार अपने प्रियतम दुलेरा का स्मरण करके मेरे हृदय की गति अनियन्त्रित हो उठती है। उनकी स्मृति ही मेरे जीवन का हर्ष और विषाद है।

मैं बैठी हुई हूँ और जीवन के अनेक सपनों के साथ न जाने कितनी कल्पनाओं की सृष्टि करती हूँ। बैठी हुई मैं क्या-क्या सोच डालती हूँ, उसका कोई हिसाब नहीं है। मैं कभी-कभी सोचने लगती हूँ, यह सब मेरे उन्मत्त हृदय का खेल है। कभी हँसती हूँ, कभी अश्रुपात करती हूँ।

मैं बैठी हुई कल्पना-सागर में तरंगे लेने लगती हूँ। मैं सोचने लगती हूँ, क्या और भी कभी, आज की भाँति यह विस्तृत आकाश मेरे इतने सन्निकट आया था? आज का आकाश मुझे अत्यन्त सुन्दर, अनुपम और आनन्दपूर्ण मालूम हो रहा है। आज की पृथ्वी पर मैंने अपने उत्सव की रचना की है। मेरे इस उत्सव में आज के नक्षत्रों ने उज्वल प्रकाश कर रखा है। मेरे इस उत्सव के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए यमुना-जल का सुन्दर स्वर, वीणा के संगीत की पूर्ति कर रहा है। मैंने सम्पूर्ण जगत को आमन्त्रित किया है और आमन्त्रित किया है उसको अपने इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए। आज मेरे स्वयंबर का उत्सव है!

असीम कल्पनाओं ने मेरे आस-पास घेरा डाल रखा है। मैं अनुभव करती हूँ कि मैं अपने पिता, सम्राट शाहजहाँ के समीप सुवर्ण खचित राज-सिंहासन पर बैठी हुई हूँ। मैंने देखा; दीवाने आम के समस्त सामन्त, नरेश और प्रसिद्ध जन एकत्रित हो रहे

हैं। आने वालों में एक-एक को मैंने धैर्य के साथ देखा। सब के पश्चात् मेरे प्रियतम दुलेरा का आगमन हुआ और धैर्य एवम् शब्दहीन पद-सञ्चालन के साथ उनको आते हुए मैंने अपने निस्तब्ध नेत्रों से देखा। देखा उनका उन्नत ललाट, चन्द्रमा के समान उनका समुज्वल शरीर। मैंने देखा प्रियतम के पास में बैठा हुआ निष्प्रभ सामन्तों और नरेशों का समूह! मेरी इस उद्भ्रान्त अवस्था में प्रियतम दुलेरा के शरीर के साथ मेरी माला का स्पर्श हो गया!

वायु से हिलते हुए पत्तों के मरमर शब्द की भाँति, प्रियतम दुलेरा का नाम दिल्ली की सम्पूर्ण वायु में फैला गया। मैंने प्रियतम के दोनों नेत्रों को देखा—समुद्र की भाँति गम्भीर, सूर्य की भाँति आलोक पूर्ण! जिसको अनुसंधान में मैंने न जाने कितने दिन बिताये थे, आज मैंने प्रियतम के साक्षात में उसे पाया। मैंने पाया आज अपना प्रियतम, जिसके प्यार से मैं अपनी तृष्णा को तृप्त करूँगी। मैंने पाया अपना जीवन-सहयोगी, जिसके पुण्य सहयोग से मैं अपना जीवन सफल करूँगी!

मैं अनेक कल्पनाओं के साथ विहार करने लगी। मैं सोचने लगी, प्रेमपूर्ण पति और पत्नी का सम्बन्ध विश्व के विद्वानों ने पति और पत्नी के सम्बन्ध की उपमा सूर्य और उसके प्रकाश के साथ दी है। यह उपमा कितनी सुन्दर है—कितनी सार्थक और सफल है। सूर्य और प्रकाश। दोनों के अस्तित्व एक, दूसरे से अलग नहीं हैं। सूर्य के बिना प्रकाश नहीं होता और प्रकाश के बिना सूर्य का अस्तित्व नहीं रहता। सचमुच पति और पत्नी का सम्बन्ध इसी प्रकार का होता है।

मैं अपने स्थान पर बैठी हुई जीवन का सुख-स्वप्न देख रही हूँ। मेरे विवाह के इस उत्सव में रात्रि के प्रकाश की माला के

रूप में, मेरे आस-पास एकत्रित खद्योत-समूह का नृत्य हो रहा है। मैं उस नृत्य को सावधानी के साथ देख रही हूँ।

प्रियतम दुलेरा को पत्र लिखने की मेरी अभिलाषा हुई। मेरा यह पत्र प्रियतम को, मेरी छिपी हुई आकांक्षा का सम्वाद देगा। प्रिय बन्धु दारा का युद्ध अनिवार्य हो गया है। दारा को युद्ध करना ही पड़ेगा। इस युद्ध में यदि वे विजयी होंगे तो वे सम्राट अकबर के विधान को परिवर्तित करके अपनी प्रिय बहन जहानारा को इच्छानुसार विवाह करने का अधिकार देंगे।

जनक-कुमारी सीता ने अपने स्वयंबर में रामचन्द्र को पति के रूप में वरण किया था। मैं सीता के हृदय की उस कहानी को जानती हूँ। रामचन्द्र की बन-यात्रा के समय सीता ने कहा था—

"स्त्री का स्वामी चाहे इस लोक में हो अथवा स्वर्गलोक में, प्रत्येक अवस्था में स्वामी के चरणों की छाया ही उसकी स्त्री के लिए एक मात्र आश्रय की देने वाली होती है। इस संसार में यदि स्त्री को अपने स्वामी के साथ भ्रमण करना पड़े और उस अवस्था में यदि आँधी की धूलि उसके श्वास-मार्ग को अवरुद्ध कर दे तो वे धूलि के कण पत्नी के लिए सुमधुर चन्दन की सुगन्ध के रूप में परिणत हो जाते हैं।"

मैं अपने जीवन की कहानी को अभी लिखना चाहती थी। मेरे हृदय के भावों का उद्वेग बढ़ रहा है। किन्तु मेरे नेत्र आकाश में रक्तिम आभा फैली हुई देख रहे हैं। उस आभा का अरुण आभास समुद्र में भी दिखाई पड़ रहा है। अपने अञ्चल की माला सूखी हुई मैं देख रही हूँ। मेरे जीवन में आज एक नवीन आशा का अंकुर उठ रहा है क्या मैं उससे आजीवन सुख और सन्तोष का आभास पाती रहूँगी?

आज मेरे जीवन में यह किसका आलोक फैल रहा है ? मेरे मन में आज इतनी उमंग क्यों है ? वह मेरा नियन्त्रण क्यों नहीं मानता ? इस प्रकार के शत्-शत् प्रश्न मेरे अन्तःकरण में आज अनायास उठ रहे हैं। मैं समझने की चेष्टा करती हूँ। परन्तु मैं रह-रह कर अपने आपको असमर्थ पाती हूँ। मैं नहीं समझती कि आज मेरी लालसा में इतना प्रवाह क्यों है ?

मेरी अवस्था आज बहुत-कुछ अद्भुत दिखाई दे रही है। मैं स्पष्ट देखती हूँ। मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रियतम दुलेरा की स्मृति में समाविष्ट हो रहा है। मेरे अन्तःकरण में आज प्रियतम का दिव्य आलोक फैलता जा रहा है। वह आलोक ही आज मेरे हृदय की प्रफुल्लता का कारण है। मैं इस प्रकाश को जितना ही पाती हूँ, उतनी ही मेरी लालसा अनियन्त्रित होती जा ही है।

देवता को प्रसन्न करने वाली स्तुति की मैं खोज में थी। परन्तु मैं देखती हूँ, आज मेरे-रोम में उस स्तुति का समावेश है ! मेरी अन्तरात्मा प्रफुल्लित हो उठती हैं और मैं प्रियतम की अमिट स्मृति में तल्लीन हो जाती हूँ।

मेरी चिन्तनाओं का श्रोत प्रभातकालीन आकाश की ओर जा रहा है। स्वर्ग की नीलम परी के समान, स्वच्छ और निर्मल वायु समुद्र में सूर्य के आस-पास चलती हुई दिखाई देती है। जान पड़ता है, वह विस्तृत आकाश के नाप करने का निश्चय कर चुकी है। दीवार के ऊपर वह कौन-सा पक्षी बैठा है ? उसके कण्ठ से निकला हुआ प्रभात कालीन संगीत अत्यन्त मधुर मालूम हो रहा है। नव प्रस्फुटित गुलाब के फूलों ने अपनी सुगन्ध को लेकर देवता की पूजा की तैयारी की है।

इसके पश्चात् फीरोजशाह के गढ़ के दूसरे भाग में मुझे ऊंटों के चलने की आवाज सुनायी पड़ी। उन पर बैठ कर व्यापारियों का समूह जा रहा है। रात होने के पहले ही वे अपनी यात्रा को समाप्त कर देना चाहते हैं। इसी समय एक संगीत का मुझे स्मरण हुआ। वह संगीत फारसी में मैंने सुना था। उसकी प्रत्येक पंक्ति में प्रेम का अद्भुत चित्र अंकित दिया गया है। मैं उसका स्मरण करके धीरे-धीरे उसे गाने लगी।

कुछ देर तक गा चुकने के बाद, मैंने कुछ सोच डाला। क्या सोचा, इसे मैं स्वयं नहीं जानती। किन्तु मैंने न जाने क्या-क्या सोच डाला। जिसे मैंने सोचा, उसकी स्मृति मूर्तिमान होकर मेरे नेत्रों के समने खड़ी हो गयी। संगीत बन्द करके मैं उसकी ओर देखने लगी।

---

[५]

प्रियतम का पत्र

अन्धकार समाप्त हो रहा है। प्रातःकालीन फैले हुए प्रकाश में मैं अंगूरी बाग में 'जसमिन' प्रासाद की ओर चली जा रही हूँ। मेरा विश्वास है कि उस स्थान में पहुँचकर मैं लिखने के लिए एकान्त स्थान पा सकूंगी। वहाँ पहुँच कर प्रासाद के उस स्थान पर बैठ कर मैं अपने लिखने का कार्य आरम्भ करूंगी, जहाँ किसी मनुष्य का आगमन मुझे आघात न पहुँचा सकेगा।

जिस प्रकार का एकान्त स्थान—नीरव स्थल मैं चाहती हूँ। वैसा मैं उस प्रासाद में पा सकूंगी। जहाँ पर मैं जा रही हूँ वहाँ पर कोई मनुष्य मुझे मेरी अवस्था का बोध न करा सकेगा। और न कोई मेरे अतीत को जगाने का काम करेगा। उस प्रासाद में ही मैं अपनी सुविधाओं के साथ स्थान पा सकूंगी।

पिता सम्राट शाहजहाँ ने आज मुझे अपने पास बुला भेजा है, वे कारागार में हैं और जीवन की भयानक यन्त्रणा का भोग कर रहे हैं, परन्तु औरङ्गजेब ने उनके साथ उपकार किया है, उनकी कारावास यन्त्रणा को कम करने के लिए उसने हाथी और बाघ भेजना स्वीकार कर लिया है।

भाग्यहीन शाहजहाँ ! तुम आज कारावासी हो। तुमने मुझे आज बुलाया है, किन्तु आज में मैं न आ सकूंगी। मेरे न आने का कारण है। आज रानी और दासी के साथ तुम्हारे विलास

की रात है। अपने अतीत की वेदना से मेरा अन्तःकरण जल रहा है। मैं अपनी कथा अपने को ही सुनाना चाहती हूँ। पीड़ा की इन घड़ियों में अपने आश्रय का ही सहारा है। मेरी इस पीड़ा की कथा को और कोई सुनने वाला नहीं है। इसलिए मैं अपने आपको सुनकर अपनी वेदना का भार कम करना चाहती हूँ।

उस दिन महल की छत पर बैठ कर मैंने कहा था कि मैं दूसरे दिन प्रियतम को पत्र लिखूँगी। दासी ने मेरे पत्र का उत्तर उनसे लाकर मुझे दिया है। अपनी सवारी पर बैठकर मैं एक पुरानी मसजिद की ओर रवाना हुई। यह मसजिद दिल्ली से बहुत दूर नहीं है। और उसका वर्तमान रूप, एक टूटे हुए दुर्ग के रूप में दिखायी देता है। मैं जानती हूँ, उस स्थान पर पूर्ण शांति मिलेगी।

अपनी आशाओं को हृदय में लिए हुए मैंने मसजिद की टूटी हुई सीढ़ियों को पार किया। बन के फूलों की तीव्र गंध ने मदिरा के समान मुझे विभ्रान्त बनाने का काम किया। उसी समय दीवार के ऊपर बैठे हुए एक हरे रंग के पक्षी ने उच्च स्वर में बोल कर मेरा अभिनन्दन किया।

मसजिद में प्रवेश करने के मार्ग में मुझे एक हिन्दू सन्यासी के दर्शन हुए। तपस्वी महोदय, मृगछाला पर बैठे थे और उनके पास में एक शंख रखा हुआ था। सन्यासी का उज्वल ललाट देख कर मैं स्थिर हो उठी। किन्तु उन्हें ध्यान निमग्न देख कर मैं स्थिर हो रही।

सन्यासी महोदय को देखकर मुझे प्राचीन काल के हिन्दू ऋषियों की याद आयी। मैं शान्त होकर खड़ी थी और उस

सन्यासी की ओर मैं देख रही थी। अकस्मात् उनके मुख से संस्कृत के कुछ श्लोक निकले। सन्यासी ने गम्भीरता के साथ अपने मुक्त कण्ठ से उनका उच्चारण किया। उनका अर्थ इस प्रकार था—

"वे मूर्ख है, जो इस नाशवान शरीर में अमरत्व की कामना करते हैं। यह शरीर तो उस वृक्ष के समान है, जिसकी समस्त शाखायें नित्य निकलती हैं और नित्य सूख जाती हैं। वास्तव में समुद्र के फेन के समान यह शरीर क्षण भंगुर और नाशवान है।"

सन्यासी महोदय नेत्रहीन थे। उनका भिक्षा-पात्र सामने रखा था। मैंने बिना कुछ कहे-सुने उनके उस भिक्षा-पात्र में सोने के कई एक मुद्रा डाल दिये। उसी समय मैंने सोचा, यदि तपस्वी के मुख से मैं अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ सुन पाती!

मैं चुपचाप खड़ी थी। मैंने जो कुछ सोचा, मेरे मनोभाव उसी ओर थे। मैं तपस्वी के दिव्य चक्षुओं पर विश्वास करती थी। उसी समय मैंने सन्यासी के मुंह से सुना, वे कहने लगे—

"माँ, तुम अपनी स्वर्ण-मुद्रा लिए जाओ।"

मैं आश्चर्य चकित होकर सन्यासी की ओर देख रही थी। सन्यासी ने मेरी ओर हाथ फैला कर कहा—"तुम्हारी आत्मा, तुम्हारे सन्तोष से भी बड़ी है, फिर तुम किसी सन्तोष की अभिलाषा क्यों करती हो?"

मैं कुछ कहना चाहती थी, किन्तु मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो उठा। मैं कुछ कह न सकी। अपना सम्पूर्ण शरीर मुझे काष्ठवत् अनुभव हुआ। मैं नीरव अवस्था में अपने स्थान पर खड़ी थी।

मैंने एक बार फिर सन्यासी की ओर देखा, वे अपने स्थान पर न थे। मेरे दिये हुए मुद्रा वहीं भूमि पर पड़े थे। मैं चुपचाप खड़ी थी और मेरे कानों में सन्यासी के वाक्यों की बार-बार प्रतिध्वनि हो रही थी।

वहीं पर एक कुंआ था। मैं धीरे-धीरे चलकर उसके निकट गयी और उसके एक स्थान पर बैठकर प्रियतम दुलेरा के भेजे हुए पत्र को पढ़ने लगी। पत्र के प्रत्येक शब्द में अनुराग का समावेश था और उसके प्रत्येक वाक्य में सरलता, सदाशयता थी।

पत्र को समाप्त करते ही मेरे मुख से निकल पड़ा—प्रियतम, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ। तुमने अपने पत्र में प्रियतम, प्रसन्नता प्रकट की है, मुझसे तुम्हें आनन्द मिला है। तुमने यह क्या लिखा है! तुम्हारे एक-एक वाक्य में मैं तुम्हारी उच्चाशयता पाती हूँ। मैं अनुभव करती हूँ, तुमने मेरे प्राणों को स्पर्श किया है, इसीलिए तो मेरे प्राण अकस्मात अनुप्राणित हो उठे हैं। तुम्हारे प्राणों का आलोक मुझे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक में मिश्रित दिखायी देता है। पृथ्वी के सम्पूर्ण स्वर, प्रार्थना के स्वर में मुझे परिणत मालूम हो रहे हैं। तुमने अपने पत्र में मुझे देवी लिख कर सम्बोधन किया है, तुमने लिखा है, मैं यदि संयुक्ता होती और पृथ्वीराज बन कर तुमने कन्नौज की ओर प्रयाण किया होता! आह, मेरे जीवन का यह सौभाग्य! सारा विश्व आज मेरे निकट प्रस्फुटित गुलाब के फूल के रूप में हो रहा है। तुमने आज फिर मुझे संयुक्ता की याद दिलायी है। मैं स्त्री हूँ! मैं सरोवर हूँ और तुम उसके राजहंस हो!

प्रियतम, तुम्हारे पत्र ने मेरे प्राणों में नववसन्त का सञ्चार किया है। मैं अपना मस्तक तुम्हारे सम्मुख नीचा करती हूँ।

अपने जीवन में मैंने एक आशीर्वाद प्राप्त किया है और उसी आशीर्वाद को लेकर मैं मन्दिर से निकल कर चली आयी हूँ। यहाँ पर बैठकर, मेरे आकुल प्राणों को तुम्हारे पत्र से शान्ति मिली है। इस पत्र के पढ़ने के समय मुझे अनुभव हुआ जैसे मेरे सम्पूर्ण शरीर के रक्त की गति उत्तेजित हो उठी है।

यहाँ पर आने के समय, सम्पूर्ण मार्ग एक अपूर्व शोभा में परिवर्तित हो रहा था। मैं अपनी सवारी के भीतर बैठी थी। सवारी में दोनों ओर बादामी रंग की झालर लटक रही थी। दोनों ऊंटों के ऊपर पड़ी हुई झूलें दृश्य को और भी मनोरम बना रही थीं। सवारी पर बैठी हुई मैं ऊंटों की चाल में एक अद्भुत मस्ती का अनुभव करती थी। मेरी इस यात्रा के समय पक्षियों ने अपने संगीत के द्वारा मेरा स्वागत किया था। मृग-शावक अपनी गर्दन को झुका कर मेरा अभिनन्दन कर रहे थे। पृथ्वी से लेकर आकाश तक—सभी तो मेरे प्रति उल्लास प्रकट कर रहे थे। मार्ग में सभी दृश्य मुझे अत्यन्त मनोरम मालूम हो रहे थे। मैं प्रसन्न होकर उनको देख रही थी। मेरे मन में अनेक कल्पनायें उठ रही थीं। मैं उन कल्पनाओं के साथ उड़ती हुई, कभी-कभी इस पृथ्वी से बहुत दूर निकल जाती थी। मार्ग में अनेक प्रकार के स्थानों का मैंने संदर्शन किया। कहीं पर विस्तृत भूमिखण्ड थे, कहीं पर हरे-हरे वृक्षों की पत्तियाँ थीं और कहीं पर स्त्री, पुरुषों और बच्चों से भरा हुआ स्थान था। सभी कुछ तो था। मैं इन सभी दृश्यों को देख रही थी और अपने मन में अपूर्व कल्पनाओं की सृष्टि कर रही थी।

मार्ग के दोनों ओर अद्भुत दृश्य दिखाई देते थे। सभी की अपेक्षा मुझे वृक्षों के ऊपर प्रस्फुटित पुष्प सुन्दर मालू म होते थे। कहीं पर विस्तृत निर्जन वन दिखाई देते और कहीं पर मनुष्यों के

कोलाहल से भरे हुए स्थल दृष्टि में पड़ते थे। अत्यन्त दूर पर जाकर विस्तृत अनन्त आकाश पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ दिखाई देता था।

इस प्रकार के दृश्यों को देखकर मैं फिर कल्पना-सागर में लहरें लेने लगी। मैं सोचने लगी, विशाल भूखण्ड पर यदि मैंने मीनारों से भरे हुए एक प्रासाद का निर्माण कराया होता? आह, मैं उस समय कितनी प्रसन्न होती!!

मुझे स्मरण आता है, एक दिन मैंने चाँदनी में के मार्ग को पार किया था। उस समय दरबार का समय था। मार्ग में वृक्षों के बीच से होकर कितने ही मनुष्यों का समूह स्वच्छ पोशाक में चला जा रहा था। वहीं पर साँड़ों और हाथियों का समूह दिखाई दे रहा था वायु में फैली हुई जाफरानी कस्तूरी की सुगंध और चन्दन की तीव्र सुवास की अनुभूति हो रही थी। मार्ग के किनारे आभूषणों की दूकानें अद्भुत शोभा की वृद्धि कर रही थी। अनेक पशुओं के गले में बंधी हुई घंटियों की आवाज भी सुनायी पड़ती थी। मार्ग में चलने वाली स्त्रियों के पैरों के विभिन्न आभूषण भी अपनी ध्वनि उत्पन्न करके लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। परदेदार स्त्रियाँ अपने मकानों के बराण्डों में खड़ी हुई थीं। उनके परदे के भीतर कभी-कभी उनके विभिन्न वर्णों के मुख-मण्डल दिखाई दे जाते थे।

मार्ग के इस अद्भुत दृश्य को देख कर मैं अपनी कल्पनाओं में विभोर हो रही थी। मैं सोच रही थी, इस प्रकार के पुलकित जीवन का हर्ष, क्या जीवन में फिर कभी देखने को मिलेगा? दरिद्र-से-दरिद्र पथिक भी आज प्रसन्न दिखाई देता है। मार्ग के दृश्य देखकर मेरे हृदय में एक अपूर्व ईर्ष्या की उत्पत्ति हो रही थी। मैं सोचती थी, मेरे जीवन में क्या एक दरिद्र का सुख भी

नहीं है ? सचमुच इन दीनों-दरिद्रों की अपेक्षा मेरे पास अधिक रखा ही क्या है ? फिर उनकी स्वतन्त्र अभिलाषाओं की पूर्ति भी तो मेरे जीवन में नहीं है। सूर्य के आलोक से आलोकित स्त्रियों के मस्तक पर जो पीतल और ताँबे के जल से भरे हुए कलस दिखाई देते हैं, वे एक सम्राट के मुकुट में जड़े हुए मणि के टुकड़ों से भी अधिक उज्वल और सुन्दर मालूम होते हैं। मेरे गले के मुक्ताहार की अपेक्षा, साधारण स्त्रियों के श्वेत दाँतों की पंक्ति अधिक उज्वल मालूम होती है !

शाहजहानाबाद नगर अपनी रमणीकता के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ पर एक विस्तृत और सुन्दर विश्राम-भवन बनवाने की मेरी उत्कट अभिलाषा है। वह विश्राम-भवन इतना विशाल और मनोरम हो कि उसके समान भारतवर्ष में कोई दूसरा विश्राम-भवन न हो। उस विश्राम-भवन में आकर पथिकों को शारीरिक और मानसिक शान्ति और विश्राम मिले। यदि मैं ऐसा कर सकी तो मेरा नाम इस देश में सदा के लिए अमिट हो जायगा। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दीनों, दरिद्रों और पीड़ितों के लिए व्यय कर देने की मेरी तीव्र कामना है !

मेरे मन की अवस्था विलक्षण है। अविराम रूप से मेरी चिन्तनाओं का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मेरे जीवन की परिस्थितियाँ प्रत्येक क्षण में बदल जाती है। कभी विराट अन्धकार दिखाई पड़ता है और कभी मुझे अपने जीवन में उज्वल प्रकाश के दर्शन हो जाते हैं। मेरी यह अवस्था विरामहीन गति में चल रही है !

राज प्रासाद के निकट आकर मेरी सवारी रुक गयी। सूर्य के प्रकाश से जब पृथ्वी आलोकित होती है, उस समय प्रकाश के संख्यातीत क्षुद्रकण, मनुष्य के नेत्रों में पड़कर, उसके निकट

प्रकाश का निर्माण करते हैं। यहाँ के विस्तृत बाजार में सहस्रों और लाखों आदमियों की भीड़ होती है। पृथ्वी के सभी देशों से मनुष्य आकर यहाँ पर एकत्रित होते हैं। यहाँ पर अनेक पथ आकर एक, दूसरे से मिल जाते हैं। यहाँ पर इंगलैण्ड, हालैण्ड, टर्की, खुरासान, काबुल, चीन और दूसरे देशों के मनुष्य आते रहते हैं। व्यवसाय के लिए यह स्थान एक बड़ी ख्याति कर चुका है। दूसरे देशों से लोगों को यहाँ के बाजार में सभी प्रकार की वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं।

यहाँ के बाजारों में अंगूर, अनार, सेब, सन्तरे और दूसरे मेवे अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। फलों की दूकानें वहाँ पर इस प्रकार सजायी जाती हैं कि उनको देख कर, पुष्प-वाटिका का-सा सुख मिलता है। फलों के बाजार की सुगन्ध मनुष्य को मस्त कर देती है। यहाँ के बाजारों की दूसरी वस्तुएं भी अद्वितीय होती हैं। यही कारण है कि दूसरे देशों के लोग, एक विस्तृत पथ पार करके यहाँ पर पहुँचते हैं और अपना अभीष्ट सिद्ध करते हैं।

मेरे मनोभावों में चिन्ता का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मैं देखती हूँ कि भोजन बनने के स्थानों पर सुगन्धित मसाले तैयार किये जा रहे हैं। यहाँ के भोजनालय विदेशियों को सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन देते हैं। बाजार के किसी भाग में चले जाने पर बेचने वालों का चीत्कार सुनायी देता है। ऊंची-से-ऊंची आवाज करके विक्रेता अपनी वस्तुओं का परिचय देते हैं। ऐसा करने में लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होता है। चारों ओर मनुष्यों का जो कलरव सुनायी पड़ता है, वह विभिन्न प्रकार का होता है और सभी प्रकार के स्वर मिल कर एक अद्भुत ध्वनि

उत्पन्न करते हैं। दूर से सुनने पर मालूम होता है, मानो बहुत-से कवि ऊंचे स्वर में अपनी कविताओं का गान कर रहे हैं।

यहाँ के बाजारों में विभिन्न प्रकार के आदमी दिखायी देते हैं। कहीं पर बैठे हुए ज्योतिषी-लोगों के भाग्य की रेखाओं का अध्ययन कर रहे हैं और कहीं पर नजूमी लोगों के तकदीर का फैसला सुनाते हैं। इन ज्योतिषियों के आगे ज्योतिषियों की पुस्तकें रखी हुई हैं और नजूमी भी अपने सामने रखी हुई किताबों को देख रहे हैं। विपदापन्न स्त्रियाँ इन लोगों के पास बैठी हुई अपनी विपदाओं की कहानियाँ सुन रही हैं। ज्योतिषी और नजूमी उनके अतीत और भविष्य की बातें बता रहे हैं। मेरी अभिलाषा होती है कि मैं उनसे पूछूं कि मेरे कपाल में क्या लिखा है। क्या मेरे जीवन में भी कभी सुख और सन्तोष की घड़ियाँ आ सकती हैं ?

मैं अपने चिन्ता-स्रोत में पड़ कर अनेक प्रकार के लोगों को राज-दरबार की ओर जाते हुए देख रही हूँ। उनके साथ बड़ी संख्या में दूसरे लोग भी जा रहे हैं। उनको देखकर एक सेना का-सा दृश्य मालूम होता है! उनके साथ अस्त्रों की जो आवाज होती है, वह एक अद्भुत संगीत के रूप में सुनायी पड़ती है। दीवाने आम की ओर और भी कुछ लोग चले जा रहे हैं।

मार्ग में चलते हुए लोगों के साथ पालकी के भीतर बहुमूल्य पोषाक पहने हुए नर्तकी दिखाई पड़ रही हैं। उनकी पालकी पर रेशमी कपड़े का आवरण है, इन चलने वालों के साथ हाथियों का समूह दिखायी देता है। उनके गलों में घण्टे

दिखायी देते हैं और उन घण्टों का एक साथ एक अद्भुत स्वर उठता है। इन हाथियों के कानों के पास हिलते हुए तिब्बत के चवंर दिखाई पड़ रहे हैं। उनके साथ-साथ बहुत-से हाथियों के बच्चे चल रहे हैं। उनको देख कर एक अजीब शोभा का अनुभव होता है। मैं अपनी भावनाओं के साथ इस प्रकार के अद्भुत दृश्यों को देख रहीं हूँ।

मेरी चिन्ताओं का स्रोत अभी और भी आगे चलता है। और मुझे अरण्यवासी भयानक पशु चीता और बाघ दिखायी देते हैं। उनको देख कर सहज ही जान पड़ता है, वे अपने-अपने जंगलों के राजा हैं। मैं और भी कुछ देखती हूँ, मैं देखती हूँ, शिकार बाज पक्षी। उसकी निर्भीकता शून्याकाश के शासन का परिचय देती है। इन सब के साथ उजवग देश के भीषण कुत्ते दिखायी देते हैं। इन पशु-पक्षियों के साथ-साथ छोटी-छोटी पताकायें चल रही हैं, इस प्रकार जो दृश्य मुझे दिखायी देता है, उसमें सब से सुन्दर मुझे मृगों का समूह मालूम होता है।

इस प्रकार का दृश्य देखने के साथ-साथ मेरे मन के भावों में कहीं पर शान्ति दिखायी नहीं देती। मैं अपनी स्थिति को बदलने की चेष्टा करती हूँ। परन्तु मेरा सामर्थ्य बार-बार पराजित होता है। एक भीषण चिन्ता सन्निकट आकर मेरे मन को आच्छन्न कर देती है—मेरे प्रियतम युद्ध में विजयी होकर अपनी सेना के साथ लौटेंगे। वे यहाँ पर मुझे देख कर, मेरा अभिनन्दन करेंगे और मैं उनको......!

सचमुच प्रियतम आये। उनका शक्तिशाली घोड़ा इस समय भी अत्यन्त चञ्चल हो रहा है। उसके पैरों की टाप भूमि का स्पर्श नहीं करती किन्तु संगमर्मर की मूर्ति के समान अपने अचल

घोड़े पर बैठे हुए मुझे अपने प्रियतम दिखाई दे रहे हैं। उनके दर्शन करके मैं अपने आपको भूली जा रही हूँ। मैं प्रियतम को बार-बार देखती हूँ और मेरे अस्थिर नेत्र प्रियतम के अश्रु को देखकर आश्चर्य चकित हो उठते हैं। घोड़े की अस्थिरता और चञ्चलता को देखकर, मुझे एक संगीत के द्वारा उत्पन्न होने वाले उन्माद की याद आती है!

मैं फिर अपने प्रियतम को देखने लगती हूँ। क्या मैं अपने प्रियतम को स्पर्श करने का अधिकार न पा सकूंगी! मेरा हृदय अधीर हो उठा। मन के उन्माद में मैं न जाने क्या क्या सोच गयी। मुझे स्वयं किसी बात का ज्ञान न रहा। अपने गले के बहुमूल्य मुक्ताहार को मैंने खोल डाला। उससे हाथी के मोती से बने हुए पत्ते पर कुछ अक्षरों को अंकित करके मैंने अपने प्रियतम के पास उसे भेजा, प्रियतम ने उसे पाकर अपने प्रेम का प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन में मैंने बहुत-कुछ देखा। मैंने उनके अस्थिर नेत्रों को देखा और मैंने उनको, अपने वक्षस्थल पर अपना दाहिना हाथ रखे हुए। यह सब देखकर मैं अचेतन अवस्था का अनुभव कर रही थी, उसी समय अपने नेत्रोन्मलिन के पश्चात् मैंने देखा, स्वामी अपने स्थान पर थे! मेरे नेत्रों के सामने एक बार गम्भीर अन्धकार की सृष्टि हुई और मुझे कुछ दिखाई न पड़ा।

इस चिन्ता-स्रोत के स्वप्न में मैंने अपने बहुत-से दिन व्यतीत किये। अतीत कालीन स्मृतियाँ क्रम से मेरे सामने आने लगीं और उनका आलिंगन करके मैंने अपने जीवन में फिर एक बार प्रकाश का अनुभव किया।

अब मैं कुछ और देखने लगी। मेरे नेत्रों के सामने मेरी

पुष्पवाटिका है। उस वाटिका के एक-एक वृक्ष को मैं देखती हूँ और उसके प्रस्फुटित फूलों पर अपनी दृष्टि डालती हूँ। परन्तु मैं यह क्या देखती हूँ! वाटिका के पार्श्व में बहती हुई यमुना का जल आज प्रवाहित नहीं होता। मैं यह देख कर उद्भ्रान्त हो उठती हूँ। फिर मैं अपनी वाटिका को देखने लगती। हूँ उसका सौन्दर्य मुझे अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। मैं उसकी छवि को देखकर प्रसन्न हो उठती हूँ। मेरे पिता सम्राट शाहजहाँ ने मेरे प्यार के उपलक्ष में संगमर्मर की मसजिद का निर्माण कराया था। मैं आज देखती हूँ, उसी मसजिद का टूटा हुआ प्रांगण, सूर्य की किरणों के साथ मिल कर कुछ-का-कुछ हो गया है।

अपने स्वप्न के प्रवाह में मैं क्या देखने लगती हूँ, इसे मैं स्वयं नहीं जानती। मेरा एकान्त जीवन है। नीरवता मेरी चिर-संगिनी है और निर्जनता ही मेरे आज के जीवन की आश्रय-दायिनी सहयोगिनी है। मैं अपनी इसी तवस्था में अपने अतीत जीवन की एक चिरस्मरणीय घटना का वर्णन करूँगी। ग्वालियर की रहने वाली नर्तकी गुलरुख बाई की मुझे याद आ रही है। उसने मुझे प्रसन्न करने के लिए एक नये प्रकार का नृत्य आरम्भ किया था। जिस दिन की घटना का मैं उल्लेख करती हूँ, उस दिन उसने अपनी बहुमूल्य ओढ़नी के आञ्चल को गुजरात के प्रसिद्ध इत्र से सुगन्धित किया था। उसकी वह ओढ़नी सुन्दर बादामी रंग की थी। मैंने उसको जितने आभूषण दे रखे थे, उसने उन सब को पहन रखा थ।

निस्सदेह, गुलरुख मुझे बहुत प्रिय थी। कहा जाता है कि मृत्यु का आभास पाकर मनुष्य की दृष्टि सूक्ष्मदर्शी हो जाती है। गुलरुख उस दिन नृत्य के समय पर एक हरिणी की भाति

अत्यन्त चञ्चल हो उठी थी। उसने अपने मधुर कण्ठ से एक चिर-परिचित संगीत का गान किया था। उस गान की प्रत्येक पंक्ति आज भी मुझे उद्भ्रान्त बनाने काकाम करतीं है।

नर्तकी गुलरुख का वह संगीत ? आह, मुझे न जाने क्यों उसकी स्मृति आयी है। उसका संगीत, गाने का अत्यन्त प्रिय स्वर, संगीत की प्रत्येक पंक्ति के साथ उसकी चञ्चल गति—आज मुझे सभी कुछ तो याद आ रहा है। उस गाने को सुनकर ही तो मैंने अपने जीवन की एक कल्पना की थी । उस कल्पना की आराधना मेरे जीवन की साधना बन गयी। वहीं से मेरे जीवन के प्रेम का बाँध टूटा था। चिर-सञ्चित और सुरक्षित प्रेम की अगाध वारि अकस्मात् एक दिशा की ओर प्रवाहित हुई। आह, आज वह धारा मेरी एक अमिट पीड़ा का कारण बन गयी है ?

मैंने देखा, नृत्य के समाप्त होते-होते, गुलरुख ने उस स्थान का त्याग किया। उसे जाते देख मैंने उसका पीछा किया। मैं उसके सुन्दर गान के लिए प्रशंसा करना चाहती थी, गुरुलख जहाँ से होकर निकली, वहाँ एक दीवार के निकट दीपक जल रहा था। उस दीपक से आग की लौ निकल रही थी। वायु से उड़ कर गुलरुख के ओढ़नी का अञ्चल उस दीपक की लौ को स्पर्श कर गया। क्षण-भर में मेरी गुलरुख—मेरी प्रिय गुलरुख आग का लपटों में आ गयी। जिस प्रकार जंगल में आग लगने पर हरिणी भागती है, गुलरुख भी त्रस्त होकर वहाँ से भागी। मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ी।

भाग कर मैं महल के खुले हुए प्राङ्गण में पहुँची। मैंने अपने वस्त्र को उसके ऊपर फेंक दिया। उसी समय मेरा वह सूक्ष्म

वस्त्र तेजी के साथ जल उठा। उस समय उस जलती हुई आग के पास हम दोनों खड़ी हुई थीं।

उस समय दरबारे-खास चल रहा था। अपनी सहायता के लिए हम दोनों ने चीत्कार किया। परन्तु आने वाला कौन था? मेरे प्रियतम उस दरबार में थे। मैं सोचने लगी, क्या इस अवस्था में वे मेरी आँखों के सामने आवेंगे? क्या प्रियतम आकर मेरे शरीर का स्पर्श करेंगे? और ऐसा करके क्या वे हमारी इस अस्वथा के एक साक्षी बनेंगे?

मैं अपनी लज्जा के कारण लाल हो उठी। मेरी यह रक्तिम अवस्था, अग्नि की अपेक्षा भी अधिक रक्तिम हो रही थी। परन्तु उस समय भी मैं नीरव और चुपचाप थी। मेरे अन्तःकरण में अनेक आँधियाँ उठ रही थीं। मै नहीं जानती, उस समय मेरे मन की क्या अवस्था थी।

उस दिन की अग्नि से मेरा शरीर इस प्रकार दग्ध हो गया था कि मैं बहुत दिनों तक शैयाशायिनी हो कर रही। औरङ्गजेब के साथ मेरे प्रियतम दक्षिण में में युद्ध करने गये थे। मैंने प्रियतम को राखी भेजी थी और उन्होंने उसके सम्मान में मेरे लिए चोली भेजी थी। उसका अग्रिम भाग लाल वर्ण के रेशम से तैयार किया गया था और उसके सम्पूर्ण वस्त्र में हीरा, मुक्ता और विभिन्न प्रकार के मणि लगे थे। मैंने उसे पाकर प्रियतम को पत्र लिखा था और उनको लिखा था कि यदि हाथी दाँत पर अपना चित्र आप मुझे भेजें तो मैं बहुत सुखी होऊंगी।

मेरा यह पत्र पिता सम्राट शाहजहाँ से भी छिपा न रह सका था। उन्हें मालूम हो गया कि मैंने इस प्रकार का पत्र प्रियतत दुलेरा के पास भेजा है। सम्राट ने भी एक पत्र लिखा और उस

पत्र को उन्होंने एक राजदूत के द्वारा छिपाकर औरङ्गजेब के पास भेजा।

एक-एक करके कितने ही दिन बीत गये। उसके बाद मेरे पत्र का उत्तर आया। अपनी अधीरता के साथ मैंने उस पत्र को खोला। दृष्टिपात करते ही मैंने देखा, पत्र की लिखावट में निर्बलता थी। उसको पढ़ते ही मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। अपना सम्पूर्ण शरीर मुझे काष्ठवत् मालूम होने लगा। मुझे मालूम होने लगा, जैसे हिमालय पहाड़ ने अपना स्थान बदल दिया है और सूर्योदय, पूर्व के बजाय पश्चिम में होने लगा है। इस परिवर्तन का रहस्य मेरी समझ में न आया। अनेक प्रकार की दुश्चिन्तायें मेरे मन में उठने लगीं। मेरी समझ में न आया कि प्रियतम में यह परिवर्तन कैसे हुआ। पत्र छोटा था, परन्तु शौर्य प्रदर्शक था। उसके शब्द हिम के समान शीतल थे। उस पत्र को पढ़ते-पढ़ते मेरे हृदय की गति मुझे रुकती हुई मालूम होने लगी। मुझे इस बात के समझने में देर न लगी कि प्रियतम को मुझे पत्र लिखने के लिए भी अब अवकाश नहीं है, इसीलिए उन्होंने इतने संक्षेप में मुझे यह पत्र लिया है। पत्र के अन्त में लिखा था—

"मुगल-सम्राट-कुमारी के हाथों में चित्र पहुँचने से एक राजपूत चित्र का महत्व न हो ससेगा।"

पत्र को समाप्त करने के बाद मैं अवाक् होकर रह गयी। अपने नेत्रों का प्रकाश मुझे क्रमशः क्षीण होता हुआ दिखायी देने लगा। मैं निश्चेष्ट हो रही थी। खुरासान के एक प्रसिद्ध कवि अनवर की लिखी हुई पंक्तियाँ मुझे याद आने लगीं। मुझे अकस्मात् मालूम हुआ कि मेरे हृदय की छिन्न-भिन्न अवस्था को

देखकर ही उस कवि ने अपनी कविता की उन पंक्तियों को लिखा था।

मैं अवाक थी, हृदय की गति मानो रुक गयी थी। मैं प्रस्तर के समान अपने आपको मालूम हो रही थी। मुझे विश्वास हो रहा था, जैसे मेरी श्वास अब बन्द होने वाली है! अपनी इस दुरवस्था में मैं सोचने लगी—क्या प्रियतम ने किसी से मेरी निन्दा सुनी है अथवा किसी ने स्वयं उनके पास जाकर मेरे विरुद्ध बातें पैदा की हैं! मेरी निन्दा करने वाले पर उनका क्या विश्वास हो सकता है! प्रियतम, मैं तुमको विश्वास दिलाती हूँ कि यदि एक नहीं, सैकड़ों—सहस्रों ज्योतिषी अथवा नजूमी आकर तुम्हारे विरुद्ध मुझसे कुछ कहते तो मैं उन पर विश्वास न करती और उस समय तक विश्वास न करती, जब तक तुम्हारे मुख से मैं स्वयं उन बातों को सुन न लेती!

मेरे हृदय की अधीरता रह-रह कर मुझे विक्षुब्ध करने लगती। मैं सोचने लगती, क्या औरङ्गजेब की बहन रोशनआरा से तुमने मेरे विरुद्ध कुछ सुना है? यदि ऐसी बात है तो क्या तुम जानते नहीं कि वह दारा की शत्रु है और मेरी परम घातक है। दारा को सब से बड़ा और विश्वासनीय तुम्हारा आश्रय मिला है। इस आश्रय को मिटाने के लिए ही तो रोशनआरा ने कोई साध्य चेष्टा नहीं की? औरङ्गजेब के साथ युद्ध में मेरे प्रिय बन्धु दारा के तुम सहायक और संरक्षक हो। तुम चौहान राजपूत हो। भारतवर्ष के राजपूतों में बून्दी का चौहान-वंश अपनी वीरता और ख्याति के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है!

इस प्रकार सैकड़ों प्रश्न मेरे अन्तःकरण में उठने लगे। परन्तु एक प्रश्न का भी मुझे कोई उत्तर न मिला। मेरे नेत्र अपने प्रकाश को मानो खो रहे थे। मुझे कुछ दिखाई न पड़ रहा था। अपने

हाथों की उंगलियों को मैंने दाँतों से काटना आरम्भ किया। मेरे कानों में काले मेघों की गड़गड़ाहट सुनायी पड़ने लगी। उस भीषण आवाज में शत्-शत् नगाड़ों का उत्तेजनात्मक स्वर छिपा हुआ था। मुझे अपनी विपदा का एक प्रतिरूप उसमें दिखाई देने लगा। मुझे मालूम होने लगा मानों आकाश में श्मशान-यात्रा की ध्वनि उठ रही है। मैं सोचने लगी, क्या स्वर्ग में किसी की मृत्यु हो गयी है? यह क्या! मेरे देखते-देखते जोर की वर्षा होने लगी। विजली की कड़क से मेरे हृदय के टूक-टूक होने लगे। विद्युत-शक्ति के द्वारा संगठित मेघों के टुकड़े होते हुए दिखाई देने लगे। मेरे शरीर में मानो वज्रपात हो रहा था। मेरे हृदय की वेदना के भीतर से एक प्रकार का शब्द निकला—वह शब्द हृदय-स्पर्शी था।

मेरे कानों में नृत्य की प्रतिध्वनि होने लगी। वह प्रतिध्वनि अन्तःकरण स्पर्शी जान पड़ी। रात्रि के अन्धकार के साथ-साथ मेरे महल के सहस्रों दीपकों ने प्रकाश देना आरम्भ किया। उसी समय महल के मेरे प्रकोष्ठ में परदा अपने अपने विस्तार का अस्तित्व प्रकट करने लगा। वीणा, करताल और बन्शी का स्वर मिल कर एक अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा था।

मुझे जान पड़ने लगा, विश्व की समस्त वस्तुएं क्या भगवान की देन नहीं हैं? मेरे हृदय की असह्य पीड़ा और वेदना भी तो उसी की देन है। मनुष्य इन सब का भोग करने के लिए वाध्य है। मेरे हृदय की पीड़ा अविराम गति से चल रही थी। मैंने बाजे वालों को तीव्र आँधी के रूप में बाजा बजाने के लिए कहा। मेरे पद-सञ्चालन में व्याघ्र-गति की तीव्रता थी—विराम हीन वाक्यों का प्रतिरूप था। मेरे चिन्तास्रोत में शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी की तरंगें थीं।'

करतालों का स्वर शान्त हो गया। फिर भी उनके स्वर की प्रतिध्वनि मेरे कानों में बराबर होती रही। कालीन-सुसज्जित अपने स्थान को छोड़ कर मैं चलती हुई उस स्थान पर पहुँची जहाँ पर फिरोज शाह की दुग्धधारा नीरवता का साम्राज्य भङ्ग कर रही थी। मैंने क्षण-भर तक उसकी ओर देखा।

उसके पश्चात् मैं फिर चलती हुई। आगे चलकर मैं एक शिला के पास पहुँची। विराट शिला के नीचे अपने शरीर का मोह छोड़कर मैं लेट गयी। मुझे अपना हृदय स्पन्दनहीन अनुभव होने लगा। अकस्मात् किसी ने आकर मुझे उठा लिया। मेरा हृदय क्षत-विक्षत होने लगा।

विभ्रान्त अवस्था में मुझे अपने प्रियतम का स्मरण हुआ। मेरे हृदय का स्पन्दन चञ्चल हो उठा। मैं कह उठी—कितने ही पत्र मैंने भेजे। एक का भी उत्तर न मिला! आह, मेरे अन्तः-करण में यह हाहाकार क्यों हो रहा है? इस उद्भ्रान्ति का अन्त कहाँ जाकर होगा?

मेरे मनोभावों में फिर परिवर्तन हुआ। एक दिन सम्राट के दरबार में मैंने कोलाहल सुना था। मैं दुलेरा का चिन्तन करने लगी। दुलेरा—प्रियतम दुलेरा—वीर प्रतापी किन्तु सुन्दर दुलेरा! वही दुलेरा—जो कि एक नर्तकी की सन्तान के नाम से प्रचारित किया गया है—वही दुलेरा—प्रियतम दुलेरा! वृष्टि के स्वर की भाँति उसके संगीत ने—उसके मृग-लोचनों ने मेरे अन्तःकरण को उद्भ्रान्त बना दिया है।

आह, सम्राट शाहजहाँ की प्रियतमा कुमारी जहानारा अपनी अभिलाषाओं की एक मात्र अधिकारिणी—अपनी इच्छाओं की सम्पूर्ण स्वामिनी! सम्राट-कुमारी का विरोध करने की किसमें क्षमता है! इसीलिए तो उद्भ्रान्त जहानारा ने साम्राज्य के एक

श्रेष्ठ गायक को अपने जीवन का अमूल्य दान देकर स्नेह के कच्चे धागे में बाँधने की चेष्टा की थी। सम्राट-कुमारी का यह अक्षय समर्पण और उसका यह प्रत्याख्यान! ओह, कितना भीषण दृश्य है! मेरे हृदय की गति फिर क्षीण होने लगी।

एक दिन की बात है। वह श्रेष्ठ गायक—एक अश्वारोही के रूप में—अपनी छोटी-सी पैदल सेना के साथ, पताका फहराता हुआ, सम्राट के राज-प्रासाद में आया था। सम्राट जहाँगीर का विख्यात सेना-अधिकारी महावत खाँ, मार्ग में उस श्रेष्ठ गायक के साथ-साथ दिखायी पड़ा। राणा प्रताप का बन्धु-पुत्र, महावत खाँ देश-द्रोही था, धर्म-द्रोही था। महावत खाँ सम्राट के दरबार की ओर आ रहा था। उसके साथ भी एक छोटी-सी सेना थी। उस श्रेष्ठ गायक के सैनिकों और महावत खाँ के सैनिकों में संघर्ष हो गया।

महावत खाँ युवराज दारा से असन्तोष रखता था, इस अवसर पर मेरे ऊपर वह असंतुष्ट हुआ। महावत खाँ ने दरबार में प्रवेश किया। उसके साथ कोई झण्डा न था। महावत खाँ को देखकर सम्राट ने पूछ—"झण्डा कहाँ है!"

सम्राट के इस प्रश्न को सुनकर महावत खाँ ने कहा—"झण्डे की आवश्यकता नहीं। क्योंकि एक गायक को दरबार में झण्डा लेकर आने का अधिकार मिला है। इसलिए अमीर महावत खाँ को झण्डे की आवश्यकता नहीं है।"

उसी समय मैं समझ गई कि सम्राट के दरबार में मेरे शत्रुओं की और औरंगजेब के मित्रों की संख्या अधिक है। इसका बहुत कुछ कारण यह है कि युवराज दारा के स्वाभाव में किसी प्रकार अहंकार का मिश्रण है। वे सम्मानित जनों के सथ व्यवहार करना नहीं जानते। एक ओर युवराज दारा

की यह अवस्था है और दूसरी ओर सम्राट शाहजहाँ अपनी विलास-प्रियता के लिए प्रसिद्ध हैं । इसका परिणाम:यह: हो रहा है कि दरबार में विरोधियों को संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है ।

अनेक क्षण पर्यन्त महावत खाँ का उत्तर मेरे नेत्रों के सामने घूमता राह । उसकी दूषित भावनायें अपने आप अपना परिचय दे रही थीं । सम्राट के दरबार की जो परिस्थिति थी, उसका वह लाभ उठा रहा था । पिता सम्राट शाहजहाँ को दरबार की इन भीतरी बातों का कुछ पता नहीं था ।

बन्धु दारा के स्वभाव-दोष के कारण भी दरबार में विरोधियों को अपनी शक्ति-संचय का अवसर मिल रहा है । इन सभी बातों में भगवान का कुछ रहस्य जान पड़ता है ।

---

[६]

विवाह का प्रस्ताव

उसके पश्चात् फिर एक दिन उसी प्रकार का संयोग उत्पन्न हुआ। दुलेरा राज-प्रसाद में आये और उस दिन महावत खाँ वहाँ पहले से ही उपस्थित था। दुलेरा के आने पर महावत खाँ ने उनको देखा, उसके हृदय के भाव उसी समय दूषित हो उठे। उसके मुंह से निकल गया—

"एक साधारण गायक के साथ सैनिक और पताका! किसी अधिकारी के मार्ग में मिलने से गायक जैसे साधारण आदमियों को पथ छोड़ देना पड़ता है। परन्तु इस दरबार में दिल्ली के एक गायक का इतना मान कि उसके लिए पथ छोड़ना पड़ेगा।"

महावत खाँ के मुंह से निकले हुए इन शब्दों को मैंने अपने कानों से सुना। लज्जा से मेरा मस्तक नीचा हो गया। मैं उसी समय अपने अन्तःपुर चली गयी। मैं स्वयं अपने आपको एक दीन-दुखी और भिखारिणी के रूप में देखने लगी। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मैं किसी को अब अपना मुख न दिखाऊं और एकान्त में छिप कर रहूँ।

मेरे नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। मैं सोचने लगी, एक दिन था, जब मैं अपने पिता सम्राट की आँखों की मणि थी। नूरजहाँ और मुमताज बेगम की तरह मैं साम्राज्य के शासन में भाग लेती थी। उसके उपरान्त, मैं दमयन्ती और सीता बनी।

परन्तु मेरे प्रियतम राजा नल और राजकुमार रामचन्द्र के समान स्वामी न बन सके।

मेरे मन के भाव अत्यन्त खिन्न हो उठे। मैं सोचने लगी, मेरे बन्धु दारा ने भी राणादिल के साथ प्रेम किया था। राणा दिल एक नर्तकी थी। उसके साथ विवाह करने के लिए सम्राट शाहजाहाँ ने दारा को आज्ञा दे दी थी। राणादिल सम्राट अकबर की प्रपौत्री थी और नादिरा बेगम की सपत्नीक बनने का वह अधिकार प्राप्त कर चुकी थी। राणादिल की पालकी को मार्ग में कभी कोई कर्मचारी रोक न सकता था। क्योंकि युवराज दारा उसके साथ स्नेह करते थे!

आज मेरी अवस्था अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हो रही थी। अपने निर्जन भवन में शोकार्त होकर मैं बैठी थी और पृथ्वी से आकाश तक निराशा का विस्तार देख रही थी। मेरी चिन्ताओं का कहीं अन्त दिखायी न देता था। मैं विह्वल होकर कह उठी—

"अभिमानिनी जहानारा बेगम, तुमने अपने जीवन में यदि यह भयंकर भूल न की होती! लज्जालु जहानारा, तुमने यदि अपने गायक को विश्व के नेत्रों में सम्मानित करने का प्रयत्न न किया होता! तो आज...!"

मैं जिस स्थान पर बैठी थी, वहाँ पर रुक न सकी। उठी और खिड़की की ओर चल पड़ी। मैं अपनी अवस्था को स्वयं समझ न सकती थी। मेरे सम्पूर्ण प्राण विक्षुब्ध हो रहे थे!

रुक कर मैंने एक ओर देखा। मेरी आँखें एक साधारण घर की ओर गयीं 'उस घर की एक साधारण स्त्री एक सन्तान की माता हो चुकी है। आह, इस स्त्री का भी आज कितना गौरव है। इस नारी के जीवन का भी एक राज्य है। वह अपने राज्य

में आज सुखी है। उसका स्वामी उसका प्रियतम है और उसकी सन्तान उसके भविष्य की आशापूर्ण किरण है!

"परन्तु जहानारा की अवस्था आज कितनी विपद्पूर्ण है। उसके अतीत और वर्तमान जीवन में पृथ्वी-आकाश का अन्तर हो गया है। उसकी समस्त अभिलाषाओं के सहस्रों और लाखों टुकड़े हो गये हैं! वह आज कितनी दीन और दुखिया है!"

मेरे मनोभाव उत्तरोत्तर निर्बल होते जा रहे थे! मेरे नेत्रों में आँसुओं की भयानक बाढ़ आ रही थी। इसी समय अपने दिव्य नेत्रों से मुझे दिखाई पड़ा—ऊपर विभिन्न प्रकार के नक्षत्रों से सुसज्जित और समन्वित नीला आकाश है! मेरे विवाह के दिन का पूर्ण चन्द्रमा! मधुर और शीतल वायु ने आकर मेरे मुख का चुम्बन किया और फिर उसने कहा, 'प्रियतम आ रहे हैं।'

दूरवर्ती संगीत की एक ध्वनि कानों में सुनायी दे रही थी। मधुर स्वर में उसने वायु का समर्थन करते हुए कहा—तुम्हारे प्रियतम आ रहे हैं। मैं इस प्रकार के सन्देश सुनकर चौंक उठी और विह्वल-बदन होकर कुछ सोचने लगी। उस समय मेरे कानों में उस सन्देश का स्वर प्रतिध्वनित होने लगा।

मेरे मन की स्थिति अत्यन्त अद्भुत होती जा रही थी। कभी सन्तोष की तरंगें उठतीं और क्षण-भर के लिए मेरे हृदय को सन्देह देकर विलीन हो जातीं। कभी चिन्तनाओं का स्रोत बड़ी कठोरता के साथ एक अपरिचित दिशा की ओर मुझे ले जाने की चेष्टा करता। मैं अत्यन्त अधीर हो उठती।

बेगम नूरजहाँ के जसमिन-प्रासाद में मैं बैठी हुई थी। श्रान्ति-हीन वर्षा हो रही थी। सीमा हीन आकाश विराट मेघ खण्डों से आवृत हो रहा था। घोर वृष्टि का जल मानो पृथ्वी की समस्त जीवन-शक्ति को बहाकर ले जाना चाहता है।

इसी समय बादलों के आवरण से आकाश मुक्त दिखायी देने लगा। मेघों के विशाल खण्ड आकाश में दौड़ते हुए मालूम हो रहे हैं। उनकी द्रुत गति को देखकर मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठने लगीं। उनके साथ हमारे जीवन की बहुत-कुछ समता है। समय और सुयोग पाकर मेघों के शत्-शत् और सहस्र-सहस्र खण्ड एकत्रिक हुए थे और उस संगठित समूह ने पृथ्वी पर जल की वृष्टि की थी। अब वे एक, दूसरे से पृथक हो रहे हैं। इस प्रकार अलग हो जाने के कारण अब वे वृष्टि न कर सकेंगे। उनकी शक्तियाँ क्षीण हो जायँगी। यही अवस्था हमारे जीवन की भी है।

यमुना की जल-तरंगों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। उनमें जीवन था—जीवन की मस्ती थी। उनको लगातार देखकर मादकता की प्रेरणा मिलती है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी समय अतीत की एक स्मृति ने मुझे कहीं-से-कहीं पहुँचा दिया और मैं उसमें डुबकियाँ लेने लगी।

बल्क के राज परिवार में नजवत खाँ की वीरता की ख्याति थी। सम्राट शाहजहाँ की विलासिता जितनी ही बढ़ती जाती थी, दीवाने आम की उपयोगिता और महानता उतनी ही दीन-दुर्बल होती जाती थी। दरबार के पदाधिकारी शासन के कार्यों की आलोचना करते। मुझे भी उनका अनुसरण करना पड़ता। इन्हीं दिनों में सम्राट के दरबार में बल्क राज्य के साथ संघर्ष की बात चल रही थी। उसकी आलोचना में मैंने भी भाग लिया था।

पिता शाहजहाँ की एक बात का मुझे स्मरण आ रहा है। पालकी में बैठकर जुमा मसजिद से मैं अपने महल लौटी हुई आ रही थी। मेरा दिया हुआ दान मिट्टी में परिणत हो गया

था। मेरा अन्तःकरण अत्यत अशान्त हो रहा था। उसकी अस्थिरता मेरे मन की उत्कट पीड़ा की वृद्धि कर रही थी।

मेरी पुष्प-वाटिका में अनेक प्रकार के फूल खिले थे। कितने ही फूल टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़े थे। मैं अपनी शैया पर लेटी थी। परन्तु चिन्ताओं से मुझे विश्राम न मिल रहा था। मैं सोचने लगी, शीतल पाषाण का एक टुकड़ा यदि मैं अपने मस्तक पर रख कर लेटती तो...! मुझे मालूम हो रहा था कि पृथ्वी की सम्पूर्ण आग आज मेरे हृदय में केन्द्रित हो रही है।

इसी समय मैंने बाहर घोड़े की टापों की आवाज सुनी। मुझे मालूम हुआ कि मेरे प्रिय बन्धु दारा अपने अश्व पर बैठ कर आये हैं। क्षण-भर में वे मेरे सामने आकर खड़े हुए। मैंने स्नेहपूर्ण नेत्रों से अपने बन्धु की ओर देखा। दारा ने मेरी ओर निहारते हुए सहज ही मुझसे प्रश्न किया—

"क्या तुम नजवत खाँ के साथ अपना विवाह करोगी?"

मैंने बन्धु दारा के प्रश्न को सुना। बिना कुछ उत्तर दिये मैं सोचने लगी—थोड़े ही दिनों में दारा इस राज्य के स्वामी होंगे। यदि मेरा सम्बन्ध हुआ तो नजवत खाँ इस सम्पूर्ण साम्राज्य के प्रधान अधिकारी बनेंगे।

इसी समय दारा ने फिर कहा—मैं इस विषय में पिता सम्राट के साथ रात में परमर्श करूंगा।

एक विराट आरण्य के भीतर वृक्ष-समूह में जिस प्रकार एक विशाल वृक्ष खड़ा होता है, उसी प्रकार अपने नेत्रों के सामने मैंने उस वीर सेना अधिनायक को देखा। उसके मुख पर पराक्रम के समस्त लक्षण प्रकट हो रहे थे और सबल शरीर पुरुषार्थ का परिचय दे रहा था।

उसके बाद मैंने दुलेरा की मनोहर मूर्त्ति देखी। उनके मुख

का स्वाभाविक और सरल हास्य मेरे नेत्रों में उद्भासित हुआ। इसी प्रकार के अनेक कारणों से दुलेरा मेरा प्रियतम बन चुका था। उनकी हंसी का आकर्षण मैंने अन्यत्र नहीं देखा। प्रियतम दुलेरा का संगीत मेरे अन्तरतल में उसी प्रकार मिश्रित होता, जिस प्रकार उत्तप्त वायु में शीतलता मिलकर वायु को शीतल बना देती है।

मेरे जीवन में अनेक कौतुक रहे हैं, अब उनके साथ मेरी प्रीति नहीं रही। आज मेरे सामने अपने जीवन के आश्रय का प्रश्न था। कौन-सा राजवंश मेरे सुख-सन्तोष के लिए सघन छाया का काम करेगा?

बन्धु दारा की बात को सुन कर मैंने कुछ उत्तर न दिया। मेरे पास कोई उत्तर था भी नहीं। मैंने सहज ही उनकी ओर सिर उठा कर देखा। इसी समय जोर के साथ मैंने दारा को हंसते हुए पाया। मैं उस समय भी निरुत्तर थी। इसी समय मैंने फिर सुना—

"आज सायंकाल पिता से मैं नजवत खाँ के साथ तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव करूंगा।"

सहोदर दारा के मुंह से यह वाक्य निकला। उन्होंने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न की और वे उस स्थान से चले गये। मैं उस समय भी निरुत्तर थी। मैंने निर्निमेष नेत्रों से दारा को जाते हुए देखा। मैं नीरव थी। मैं प्रस्तर के समान शान्त और स्निग्ध हो रही थी। दारा चले गये।

सन्ध्या का समय था। काले बुरके से आपाद-मस्तक आवृत होकर मैं राज-प्रसाद की ओर चलती हुई। मार्ग में मैंने हयात बख्श के बाग में प्रवेश किया। चतुर्दिक प्रस्फुटित फूलों की सुगन्ध मेरा स्वागत कर रही थी। जीवन के अनेक दूसरे अवसरों

पर मैं यहाँ से निकली थी, परन्तु आज के पुष्पों का दृश्य ही निराला था। सूर्य की अन्तिम बेला कालीन अस्तगामी रश्मियों ने वृष्टि की उन्मत्त आकाँक्षा लिए हुए बादलों को रंगीन आवरण दे रखा था। उन रक्ताभ रश्मियों से प्रासाद के संगमरमर-प्रस्तर और उसकी शिलाओं को एक अपूर्व कान्ति मिल रही थी रक्तमुखी, कलावती, गुलाब तथा अन्यान्य पुष्प अपनी छवि और सुवास की अनुपम सृष्टि कर रहे थे। अस्तगामी सूर्य की किरणें धीरे-धीरे म्लान होती जा रही थीं। सुवर्ण निर्मित शिविर के उच्चतम भाग पर जल के कण नीले आकाश का संस्पर्श पाकर अद्भुत रूप धारण कर रहे थे।

सूर्यास्त कालीन आभा हृदय के क्षोभ को प्रतारणा दे रही थी। शिविर के मदिरा की गन्ध उन्माद का कारण बन रही थी। मैंने आगे बढ़ कर कमला नीबू के बाग में प्रवेश किया। वृक्ष की छाया में रखे हुए एक पाषाण पर मैं बैठ गयी। हृदय में एक दाह-सी उठ रही थी। नेत्रों से चिनगारियों का विस्फुरण हो रहा था। हृदय के आवेग में मैं सोचने लगी—

"मैं नजवत खाँ की पत्नी बनूंगी! राज्य का प्रलोभन नजवत खाँ के प्रेम का कारण नहीं बन सकता। स्नेह के अभाव में जीवन का सर्वस्व एक असह्य भार होता है। इस प्रकार का जीवनाश्रय सुख और सन्तोष बनेगा ?×× उसकी टेढ़ी चितवन की मुझे याद आती है। उस समय उसने बल्क राज्य के प्रलोभन की बात की थी। उसके शब्दों के एक-एक अक्षर ने विद्युत के समान मनोभावों का स्पर्श किया था। एक में था प्रलोभन और दूसरे में था भय का प्रदर्शन! नजवत खाँ ने कहा था, 'यदि मैं बल्क का शासक बनूंगा तो तुम उस राज्य की रानी-राजेश्वरी बनोगी।' इस बात को सुनते ही क्षण-भर के लिए मेरे अन्तःकरण

में एक नया स्रोत प्रवाहित हुआ। 'जहानारा नजवत खाँ की परिणीता होगी !' उस प्रवाह में मैं अनेक बातें सोच गयी।

दीवाने आम में संगीत चल रहा था। एक विशाल तरंग के रूप में संगीत की ध्वनि उठी और प्रवाहित हुई। ऐसा जान पड़ा। मानो मैंने भी उसका अनुसरण किया। उड़कर मैंने आकाश की ओर अपने आपको जाते देखा। मेरा वह हर्षोल्लास जल के बुलबुलों के समान था। इसीलिए क्षण-भर में मैं वेदना के सागर में डुबकियाँ मारने लगी। मनोभावों में एक स्मृति क एक जागरण हुआ। किसी तीव्र अस्त्र का-सा मुझे आघात मालूम हुआ। इस प्रकार के आघात से मैं अपरिचित न थी। इसका अनुभव पहले भी मुझे हो चुका था। राखी बन्धु की प्रतीक्षा में भी इसी प्रकार के आघात को मैंने अनुभव किया था। आज फिर वही आघात मेरे साथ था।

मेरे कानों में एक बात सुनायी पड़ने लगी। उसके साथ-साथ क्रन्दन का स्वर सुनायी पड़ा। एक दीर्घ स्वप्न के आवरण को फाड़ कर स्वप्न मेरे कानों में प्रवेश किया—'उस राखी के बाँधने में क्या मेरा कोई अभिप्राय था? उद्देश्यहीन वह राखी किसी दूसरे बाहु में क्यों न बंधी थी? प्राचीन मसजिद में बैठकर मैंने जो पत्र पढ़ा था, उसका अर्थ और अभिप्राय आज कहाँ है? जान पड़ता है, उस मसजिद के किसी ऊंचे भाग पर बैठ कर किसी अपरिचित और अशुभचिन्तक पक्षी ने अपशकुन पूर्ण ध्वनि की थी? फिर भी मेरे प्राणों को सन्तोष मिल रहा था। मेरे जीवन में हर्ष की जल-राशि प्रवाहित हो रही थी। मेरा सम्पूर्ण शरीर प्रस्फुटित पुष्प-वाटिका के रूप में परिणत हो रहा था।

मेरे दोनों हाथ आकाश की ओर उठ गये। हृदय की एक

अक्षुण्ण अभिलाषा को शून्याकाश के तिमिराच्छन्न वातावरण में मेरे नेत्र देख रहे थे। मनश्चक्षुओं में छिपा लेने के लिए वह आकांक्षा-अभिलाषा, शून्य के अस्तित्वहीन कणों में परिवर्तित हुई। अपने अशान्त हृदय को शान्त करने के लिए मैं कुछ पा न सकी। किसी दूरवर्ती सुख और स्वस्थ्य के लिए माता अपने प्रिय पुत्र का त्याग करती है। उस त्याग में किसी अभिलाषा का सुख होता है! परन्तु निष्फल परित्याग सुख का प्रवर्तक नहीं होता!

"प्रियतम के बिना पत्नी—सूर्य के बिना दिन!"

दीवाने आम के संगीत के साथ-साथ मेरे हृदय का वेग वृद्धि कर रहा था। मनुष्यत्व के विध्वंसक औरङ्गजेब का जो समर्थक हो, उसके जीवन में सम्राट अकबर के उच्च सिद्धान्तों का क्या महत्व हो सकता है! क्या प्रियतम को राणा प्रताप के उच्च विचारों का स्मरण नहीं रहा। जो वे मुझे आज भूल रहे हैं—क्या वे मुझे परित्याग कर सकेंगे? उन्होंने तो मुझे संयुक्ता का नाम दे रखा था!

हृदय की पीड़ा का फिर उभार हुआ। उठती हुई वेदना के रूप में एक अद्भुत स्वर की अनुभूति हुई। मुझे मालूम हुआ, मानो मैं अपने जीवन की चेतना को खोती जा रही हूँ। आकाश की पश्चिम दिशा में अस्त होने वाले सूर्य की म्लान प्रभा रक्त-रञ्जित विस्तृत वस्त्र के रूप में दिखाई दे रही थी।

मेरे बन्धु दीवाने खास के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गये थे। वहाँ से उनके लौटने का समय था। अपने प्रासाद के एक छिपे हुए स्थान से उनको देखने का मैंने निर्णय किया। अपने दुर्भाग्त के निर्णय का सम्वाद सुनने के लिए मैं यहाँ पर

आयी थी। इसीलिए मेरी उद्विग्नता बढ़ रही थी। कदाचित उस निर्णय के पहले भी कोई व्यवस्था की जा सकती है

दीवाने खास के मार्ग में मुझे कुछ सुनायी पड़ा। उसी समय दो आदमी मुझे दिखायी पड़े। एक आदमी के मस्तक पर पीले रंग की पगड़ी थी। शरीर राजकीय भूषण थे। घने काले बाल थे। गम्भीर कुएं के भीतर से आती हुई आवाज की भांति, उस आदमी का स्वर सुनायी पड़ रहा था। वृक्ष के घने पत्तों के भीतर दृष्टि निक्षेप करने से दिखायी पड़े—नजवत खाँ।

दोनों आदमी शिला के आगे बढ़ कर खड़े थे, मुझे सुनायी पड़ा—"युवराज दारा राज-सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा को सफल बनाना चाहते हैं। यह उनकी भूल है। जब तक हाथ में तलवार है, वे दिल्ली के सिंहासन पर बैठ नहीं सकते।"

स्थिर नेत्रों से उसकी ओर देखकर मैंने इस बात को सुना। इसी समय उसने फिर कहा—सम्राट, नजवत खाँ के साथ सम्राट—कुमारी जहानारा के विवाह का निर्णय अभी तक नहीं कर सके। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि दिल्ली-सम्राट शाहजहाँ अपनी शाहजादी को अन्तःपुर में ही रखना चाहते हैं।

नजवत खाँ और उसके मित्र जाफर—दोनों उस स्थान से आगे बढ़े। वृक्षों से घिरे हुए एक तालाब के निकट वे पहुँचे। वहाँ पर एक मखमली बिस्तर पर दोनों बैठ गये। मैं उनकी बातों को सुनना चाहती थी। इसीलिए एक-छोटे से आवरण के निकट आकर मैं उनकी ओर देखने लगी। उनकी बातें आरम्भ हुईं और मैंने सुना—

"अपना विचार बदलने के लिए सम्राट शाहजहाँ को बाध्य करना होगा। यह कार्य कठिन नहीं है। इसलिए कि साम्राज्य की रक्षा के लिए सम्राट को शक्तिशाली सहायता की आवश्यकता

है। सम्राट जहाँगीर के विरुद्ध शाहजहाँ ने किसी समय विद्रोह किया था। आज शाहजहाँ के विरुद्ध औरंगजेब की तैयारियाँ हैं। यह विद्रोह होकर रहेगा। सम्राट-कुमारी जहानारा अत्यन्त सुन्दरी और रूपवती है। बुद्धिमती होने के साथ-साथ वह सम्पत्तिशालिनी भी है। सूरत बन्दरगाह में चुङ्गी की जितनी आय होती है, उसकी अधिकारिणी जहानारा स्वयं है।"*

नजवत खाँ उठ कर खड़ा हो गया। उसके सम्पूर्ण शरीर में क्रोध की अग्नि बढ़ रही थी। उसने अपने सहयोगी की ओर देखा और फिर आवेश के साथ कहना आरम्भ किया—

"जहानारा के साथ विवाह करने की मेरी अभिलाषा थी। मेरी आकाँक्षा के उत्पन्न होने का कारण युवराज दारा स्वयं है। वह अहंकारी है और महत्वकाँक्षी है। मैंने जहानारा को देखा है। वह सुन्दरी है और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सभी के मुख पर है। बुंदेला राजकुमार के साथ उसकी अनेक बातें सुनी जाती हैं। इसकी चर्चा कितने ही लोगों में है।"

नजवत खाँ की बातों को मैंने सुना। मेरी अवस्था जंगल की उस हिरणी के समान हो रही थी, जिसके शरीर में शिकारी का आघात पहुँच जाता है। अपने हृदय के भावों को रोककर, मैंने सभी बातों को सुना। मेरे हृदय की गति तीव्र हो रही थी। नजवत खाँ जोर के साथ हंसा और फिर अहंकार के साथ उसने कहना आरम्भ किया—

"मेरे राज-वंश की ख्याति किस प्रकार सुरक्षित रह सकती है, इस बात को मैं जानता हूँ। जहानारा के साथ विवाह करके

* मुगल राजवंश में शाहजादों और शाहजादियों के व्यय के लिए अलग-अलग व्यवस्था के अनुसार सूरत बन्दरगाह का व्यावसायिक शुल्क जहानारा को मिलता था।

मेरे वंश के गौरव की वृद्धि नहीं हो सकती। इसीलिए मेरे निकट उसकी आवश्यकता नहीं है।

नजवतखाँ की बातों को सुनकर मैं अपने आप को चेतना-हीन अनुभव करने लगी। मुझे मालूम होने लगा; जैसे मेरा सिर घूम रहा है। मैंने नजवतखाँ के सहयोगी की ओर देखा। मुझे वह एक शिकारी के रूप में दिखायी पड़ा। उसको देख कर मुझे इस बात के समझने में देर न लगी कि वह एक सिद्धहस्त शिकारी है और इस प्रकार के शिकार की खोज में वह सदा रहा करता है। उसको देखते ही मालूम हो जाता है कि वह एक दुष्ट आत्मा है! इसी समय उसने नजवतखाँ को सम्बोधन करके कहा—

"अमीर, तुमको मालूम नहीं है कि उस दिन के अग्नि काण्ड में सम्राट-कुमारी का शरीर, कपड़ों में आग लग जाने के कारण जलते-जलते बचा। किन्तु उसने किसी दूसरे को अपना शरीर स्पर्श करने नहीं दिया? उसके विचारों का परिचय क्या उस दिन नहीं मिला था?"

इस बात को सुनते ही नजवत खाँ ने अवहेलना के साथ कहा—"क्या तुम इस बात को जानते नहीं हो कि उसके रक्त में अनेक रक्तों का सम्मिश्रण है। आवश्यकता पड़ने पर अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए कुमारी जहानारा प्राणों के साथ खेल सकती है। परन्तु उसका वह प्रेमी उस दिन कहाँ था? मैं एक भीषण मनुष्य हूँ। उस दिन यदि मैं उसके प्रेमी का नाम जान पाता तो बिना किसी सन्देह के मेरी तलवार से उसका सिर गरदन से अलग दिखायी देता। यहाँ से चलो। परन्तु ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी ने मेरे चरणों को बाँध दिया हो।"

नजबत खाँ चुप हो रहा। आदि से अन्त तक उसकी कही हुई बातों को मैंने सावधानी के साथ सुना। मेरे नेत्रों के सामने अंधकार दिखाई देने लगा। आँखों की पलकें दग्ध हो उठीं। मैं शान्त थी किन्तु अन्तःकरण में अंगारे जल रहे थे। नजवत खाँ अपने स्थान पर खड़ा था। उसने एक बार आकाश की ओर देखकर फिर कहना आरम्भ किया।

"भाई जाफर, एक दिन प्रातःकाल खिड़की के पास मैंने एक राजकुमारी को देखा था। वह प्रभात कालीन उषा के समान मालूम हो रही थी। वह एक सुन्दरी और पवित्र कुमारी थी। देखते ही उसके भोले स्वभाव की अनुभूति होती थी। उसे अपनी अन्तःपुर की राजेश्वरी बनाकर मैं अपने सौभाग्य का निर्माण कर सकता हूँ। उसकी पवित्रता और सुन्दरता के प्रति मैं अपना सर्वस्व अर्पित करने में, अपना गौरव समझूंगा। मैंने उसके उज्वल सौन्दर्य को देखा था। उसके दर्शन करके वास्तव में मैं कृतार्थ हुआ था। परन्तु उस दिन सायंकाल वह इस लोक को छोड़ कर चली गयी।"

कुछ देर के लिए नजवत खाँ चुप हुआ। उसका सहयोगी, उसकी ओर देख रहा था। नजवत खाँ ने फिर कहना आरम्भ किया—

"मेरे अन्तःपुर की समस्त रानियाँ पर्वतीय बर्फ के समान पवित्र और उज्वल हैं। उनके जीवन, संयम और सदाचार अन्यत्र असम्भव है।"

नजवत खाँ की इस बात को जाफर ने सुना। वह चुप था। मैं जाफर से अपरिचित न थी। वह औरङ्गजेब का भाई होता है। औरंगजेब की भाँति वह भी भारतवासियों से अत्यन्त

घृणा करता है। उसके स्वभाव की क्रूरता को मैं जानती थी। उसने नजवत खाँ के हाथ को स्पर्श करते हुए कहा—

"अमीर, तुम एक बार मेरी बात पर बिचार करके देखो, मुगल साम्राज्य की महान सुन्दरी सम्राट कुमारी जहानारा को यदि तुम शत्रु के हाथों से निकाल सको तो इसमें तुम्हारा कोई विरोधी न होगा। मैं इस बात को जानता हूँ कि कुमारी जहानारा जब तुम्हारे अन्तःपुर में प्रवेश करेगी, तो तुम्हारा सम्पूर्ण अन्तःपुर उद्यान बन जायगा।"

नजवत खाँ अस्थित नेत्रों से जाफर की ओर देख रहा था। उसकी वात को सुनकर नजवत खाँ ने कहा—

"शत्रु के हाथों से यदि मैं किसी भी स्त्री को बल पूर्वक निकालूंगा तो वह शत्रु मेरा विरोधी बनेगा। किन्तु जहानारा यदि मेरे अन्तःपुर को तुच्छ समझ कर यदि किसी काफिर को अपनावेगी तो वह उसको स्वर्ग की परी समझ कर आदर करेगा।"

नजवत खाँ की बातों को मैं अधिक सुन सकने में असमर्थ हो गयी। सुनते-सुनते मैं अचेतन अवस्था में आ गयी थी। चैतन्य प्राप्त करने के पश्चात् जब मैंने देखा तो वे अपने स्थान पर न थे। कदाचित चले गये थे। मैंने उसी दशा में महताब बाग की ओर पदार्पण किया। वहाँ पर मैंने क्रीतदासी को देखा। परन्तु उसकी आँखें मुझे देख न सकी। मैं चाहती भी न थी कि वे लोग मुझे देखें। उस बाग में पहुँचते ही मेरा सम्पूर्ण शरीर विभिन्न प्रकार के फूलों की सुगंध से परिपूर्ण हो उठा।

यहाँ आने के प्रथम मेरी अवस्था चिन्तनीय हो रही थी। मस्तक मानो चक्कर कर रहा था और मन के भाव दूषित हो उठे थे। परन्तु यहाँ आते ही मेरे मनोभावों में अन्तर पड़ गया।

चम्पा, चमेली और गुलाब के फूलों की सुवास को पाकर अपनी खोयी हुई चेतना और स्फूर्ति मैंने फिर प्राप्त कर ली।

बाग के दोनों पार्श्व में विशाल वृक्षों की श्रेणियाँ प्रहरी के रूप में खड़ी थी। श्वेत कमल के पुष्प आकाश के तारों के समान प्रदर्शित हो रहे थे। चतुर्दिक संध्या कालीन अंधकार और निर्जनता छायी हुई थी। मखमल के समान मुलायम घास के ऊपर मैं धीरे-धीरे चल रही थी। उसके रेशमी-रेशे मेरे चरणों का चुम्बन करके मानो कृतकृत्य हो रहे थे। अचानक जान पड़ा, जैसे किसी ने आकर मेरे हाथ को स्पर्श किया।

मैं एक वृक्ष की छाया के नीचे पहुँची। साँप के डर से मैं आक्रान्त न हो सकी। यद्यपि एक विषैले साँप ने मेरे मन को विषाक्त बनाने का काम किया था। एक झरने के निकट जाकर मैंने विश्राम लिया। अन्धकार का प्रभाव दूर करने के लिए एक दासी ने दीपक की व्यवस्था कर दी थी और विश्राम के लिए एम छोटी-सी चाँदनी सजायी थी।

"स्त्री का जन्म कितना भयानक अभिशाप है!" मेरे मुंह से एकाएक निकल पड़ा। मैं विक्षुब्ध हो उठी। सोचने लगी, रेगिस्तान के भाराक्रान्त ऊंट की भाँति यदि मैं चीत्कार कर उठूं तो दिल्ली के सम्पूर्ण निवासी एक बार चौंक उठेंगे!

स्त्री की पवित्रता की रक्षा करने के लिए पुरुष उसको बंदी बनाकर रखना चाहता है! उस पुष्प की भाँति वह स्त्री का उपयोग करना चाहता है, जिसका स्पर्श भी न किया गया हो। पुरुष नहीं जानता कि स्त्री के अन्तःकरण में किस प्रकार की ज्वाला उठा करती है। प्रकृति ने स्त्री को मातृत्व के लिए उत्पन्न किया है। परन्तु पुरुष अपने उन्माद को लेकर उसके जीवन की श्रेष्ठता का उपहास करता है। पुरुषों ने स्त्रीत्व की आलोचना

करके सतीत्व की व्याख्या की है। यदि पुरुष स्त्री के जीवन का महत्व समझने की चेष्टा करे तो वह एक अद्भुत निधि के रूप में उद्भासित होती है। यदि स्त्री-पुरुष के उपभोग की सामग्री हो सकती है तो उसका अस्तित्व कितनी मर्यादा रखता है!

जल हीरा के समान स्वच्छ और निर्मल होता है। परन्तु उसका उपभोग उसकी इस निर्मलता और पवित्रता के मिटाने का काम करता है। उपभोक्ता को इस श्रेष्ठता का ज्ञान नहीं होता। वह जिस भ्रष्टता की कटु अलोचना करता है, उसका वह स्वयं स्रष्टा होता है। मानव जीवन का विधान प्रकृति के विधान का अनुसरण नहीं करता। वह सत्य की अलोचना करता है, परन्तु उस सत्य का वह आश्रय लेना नहीं चाहता!

नजवतखाँ, तुम्हरे विशाल कार्य को मैंने देखा। तुम्हारा विराट रूप जीवन की भीषणता परिचायक था, खजूर के वृक्ष के समान तुम नेत्रों में दिखायी पड़ रहे थे, तुम्हें देख कर शिकामोर वृक्ष की याद आती थी—उस शिकामोर की जिसके अंग-प्रत्यंग वायु के दृष्टिकोण का सहज ही अनुसरण करते हैं। तुम स्त्री के जीवन की श्रेष्ठता को सवझने की क्षमता नहीं रखते—उस स्त्री के जीवन की, जिसके प्राणों में सन्तोष का स्रोत बहता है और जिसके जीवन-पथ में आग के अंगारों का समन्यय रहता है! नजवतखाँ, तुम एक पुरुष हो। तुम्हारे जीवन में पुरुष की प्रकृति का निर्माण हुआ है। स्त्रीत्व और पुरुषत्व के तत्वों में विभिन्नता होती है, इसीलिए तो तुम एक स्त्री के जीवन के तत्वों को न तो समझ सकते हो और न समझने के योग्य हो सकते हो! तुमको समझना भी न चाहिए। इसलिए

कि प्रकृति ने तुमको पुरुष तत्वों के द्वारा निर्माण किया है। दोनों प्रकार के तत्यों में मौलिक विभिन्नता होती है। स्त्री, पुरुष-जीवन के तत्वों का सम्मान करती है। पुरुष, स्त्री-जीवन के तत्वों का यही एक सार है। इसीलिए स्त्री-जीवन की श्रेष्ठता, पुरुष-जीवन की श्रेष्ठता का कारण नहीं बनती। यही अवस्था एक स्त्री के लिए जितनी ही दुर्भाग्य की सामग्री होती है, उतनी ही पुरुष के लिए वह अभिशाप बन जाती है! इसको पुरुष समझने का कभी प्रयास नहीं करता! वह कर भी नहीं सकता! प्रकृति का यह अक्षय विधान है।

नजवत खाँ, तुमने जाफर को सुनाकर जो कुछ कहा है उसे मैंने सुना है। तुमने मुझे नहीं पहचाना। क्रोध के आवेश में तुमने जो कुछ कहा है, उसमें तुम्हें सुख मिल सकता है। तुम्हारा अभिमान तुम्हारे सन्तोष का कारण बन सकता है। मनुष्य की यदि सच्ची व्याख्या की जाय तो दुलेरा देवता की मूर्ति है। इसके विरुद्ध खोजने पर भी मैंने कोई दोष नहीं पाया। तुममें और दुलेरा में बहुत बड़ा अन्तर है। तुम उस अन्तर को समझ नहीं सकते। तुम्हारे समझने के वह योग्य भी नहीं है। तुम्हारी उपमा यदि खजूर के साथ दी जा सकती है तो दुलेरा की उपमा में किसी देवता का नाम आ अकता है तुममें और दुलेरा में इतना विशाल अन्तर है।

सत्य को स्वीकार करना अपराध नहीं है। मैंने दुलेरा के साथ प्रेम किया था और आज भी करती हूँ। अरण्य-वासिनी एक हिरणी जिस प्रकार अपनी तृष्णा को तृप्त करने के लिए पर्वत की जल-धारा की अभिलाषा करती है; उसी प्रकार दुलेरा के जीवन में मिश्रित होकर मैंने अपने गौरव की कामना की थी। वह कामना आज भी मेरे प्राणों के साथ जीवित है एक आकुल

पथिक जिस प्रकार पर्वत-शिखर को स्वर्ग का द्वार समझकर अपने जीवन में कल्पना करता है, उसी प्रकार दुलेरा के जीवन की मैंने वीरता, पवित्रता और निर्मलता को स्वीकार किया था। मेरा आज भी उस पर उसी प्रकार विश्वास है, जिस प्रकार वह आरम्भ में था। उस विश्वास के अस्तित्व पर जीवन के प्रवाह का प्रभाव नहीं पड़ा। वह आज भी उतना ही आशा-पूर्ण है, जितना वह जन्म के मुहूर्त में था।

भारतवर्ष की हिन्दू स्त्रियाँ शिवमूर्ति की पूजा करती हैं। अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए अपने बहुमल्य आभूषण अपने अभीष्ट को अर्पित कर देती हैं। सुवर्ण-पात्र में अपने देवता का अर्घ्य देती है और भूमिष्ठ होकर अपने आराध्य की आराधना करती हैं। ईसाई-धर्म में निर्मल मातृत्व के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। ईसा ने स्वयं निष्कलंकिनी कुमारी माता से जन्म लिया था। मनुष्य का जन्म, पाप की नहीं—पुण्य की प्रेरणा है!

चिन्ताओं से भाराक्रान्त होकर विश्राम की अभिलाषा में मैं लेट गयी थी। बेदना का आभास रह-रहकर लहरें ले रही थीं। कमल की सुगन्ध वायु में मिश्रित हो रहीं थी। मेरे विश्राम-स्थान के चारों ओर विभिन्न पुष्पों की सुगन्ध आ रही थी। रात्रि के अन्धकार में क्षीण दीपकों की भाँति खद्योत प्रकाश कर रहे थे। उच्चाकाश में तारों की दीपमालिका का दृश्य था। मैं एक प्रस्तर-शिला के नीचे लेटी थी। मैंने अनुभव किया कि मेरे शरीर को शीतल कर, कोई स्पर्श करके चला गया है।

इसके पश्चात् अपनी दिव्य दृष्टि से मैंने एक अद्भुत दृश्य का अवलोकन किया। उस दिन दरबार में एक सिंह के खेल का प्रदर्शन हुआ था। सिंह अपनी गर्दन को झुका कर मेघों के समान भीषण गर्जना कर रहा था।

उस सिंह की भयानक आवाज को सुनकर मैं सोचने लगी कि यह सिंह कदाचित् अपनी परिणीता सिंहिनी के वियोग में आकुल-व्याकुल हो रहा है। उसके बाद मैंने दो शेर देखे। संध्याकालीन मधुर वायु चल रही थी। पवन की प्रेरणा पाकर वृक्षों की पत्तियाँ हिलती हुई एक, दूसरे का स्पर्श कर जाती थीं। आकाश में एक उज्वल नक्षत्र का प्रकाश हो रहा था। बहुत देर तक प्रकृति के उद्देश्य और विधान का मैं अर्थ लगाती रही।

मैं समझने लगी, किस प्रकार दिन, रात्रि में अन्तर्हित हो जाता है। वृक्षों से लेकर पशु-पक्षियों तक—जीवधारियों का जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है। दिन और रात्रि का किस प्रकार निकटवर्ती सम्पर्क है। सभी का एक, दूसरे से सम्बन्ध है। मेरा ही जीवन सम्पर्क हीन है! वह महापुरुष कहाँ है जो भारतवासियों के नेत्रों में मुझे सम्मान पूर्ण स्थान दे सकता है। कब तक वह दिन आवेगा!

सन्ध्याकालीन रक्तिम आकाश मुझे रंगीन पगड़ी और दो उज्वल नेत्रों के रूप में दिखायी दे रहा था। जिस प्रकार एक शब्द किसी पहेली का उत्तर दे देता है, उसी प्रकार मनुष्य का हृदय भी, किसी एक हृदय का स्पर्श कर के सफल होता। इस प्रकार के दो हृदयों की मैं कल्पना करने लगी।

मैं दुलेरा के उस प्रथम पत्र का अनुसन्धान करती हूँ जिसके साथ मैंने अपने प्राणों का आलिंगन किया था। अन्तिम पत्र का वह अन्तिम वाक्य आज भी मेरे कानों में प्रति-ध्वनि करता है। वह वाक्य जिसमें मेरी अवहेलना की गयी है। चित्र माँग कर मैंने स्वयं अपना अपमान किया। उस वाक्य का अर्थ यही तो होता है। उसका स्मरण क्या कभी भूल सकेगा!

मेरा सम्पूर्ण हृदय शोकाकुल हो उठा। मैं सोचने लगी, 'क्या दुलेरा भी नजबत खाँ की तरह मेरी आलोचना करेंगे?' मेरे शरीर में कठोर बज्र का-सा आघात हुआ। चतुर्दिक पृथ्वी भयानक हो उठी। यह सब क्या है, मैं कुछ समझ न सकी। आकाश और भी दूर दिखायी देने लगा। जान पड़ता है, मेरी वेदना के विस्तार के लिए उसे अपना स्थान छोड़ देना पड़ा है। मैं सोचने लगी—'आह मेरी वेदना का आकार क्या इतना बड़ा होगया है? उससे आक्रान्त होने के कारण मेरे नेत्रों का प्रकाश अन्धकार में परिणत होता जाता है! जान पड़ता है कि विश्व शून्याकाश में मैं अन्तर्हित हो जाऊंगी।'

अचेतन अवस्था आने के पूर्व मेरी वेदना का एक भीषण चीत्कार निकला, उसकी तीव्र ध्वनि निशा की नीरवता में वायु के समान फैल गयी। सम्पूर्ण प्रासाद में उस चीत्कार की प्रतिध्वनि हो उठी।

प्रातःकाल होने पर जाना, सभी लोग कह रहे थे—'महताब बाग में जहानारा को रात में साँप ने काटा है!'

विद्रोह की आग

सुल्तान महमूद गजनवी के द्वारा भारत की विजय पर मुसलिम कवि अनसारी ने काव्य में एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक को कल मैंने पढ़ा था। उस पुस्तक में लिखा गया है—

"भारत पर आक्रमण करके महमूद ने जिस प्रकार भयानक रक्तपात किया, उसके निशान आज तक देश में पाये जाते हैं उन दिनों को बीते हुए बहुत दिन हो गये, परन्तु इस देश का दुर्भाग्य न बदला। भारत-भूमि पर आज भी रक्तपात के उसी प्रकार के वातावरण दिखायी देते हैं, जिस प्रकार के वातावरण इस देश ने महमूद के आक्रमण काल में देखे थे।

गंगा जी के किनारे के समस्त नगरों को महमूद ने विध्वंस किया था। इसलिए कि वे नगर हिन्दुओं के तीर्थ स्थान थे। उन स्थानों को विध्वंश करने के साथ-साथ, वहाँ के देव-मन्दिरों और देव-मूर्तियों को भीषण रूप से नष्ट किया गया था। इस प्रकार के मन्दिर और उनकी मूर्तियाँ भारतीय जीवन की स्मारक थी।

इस भारत-भूमि पर इस प्रकार कब तक रक्तपात होते रहेंगे जननी भारत-भूमि को अपने जीवन में और कितने दिनों तक इस प्रकार के अत्याचार सहने पड़ेंगे? महमूद की भांति जिन शत्रुओं ने इस देश पर आक्रमण किये और जिन्होंने भारतमाता

की सन्तानों के रक्त की नदियाँ बहायीं, उनके क्रूर अत्याचारों को भारतमाता कभी भुला न सकेगी।"

रक्तिम मेघाच्छन्न भारतीय आकाश को देखकर आज देश के दूरदर्शी चिन्ताओं को अनुभव कर रहे हैं। स्त्रियाँ भयभीत हो रही हैं। सभी के सामने प्रश्न है, इस प्रकार के दुर्दिनों में हमारी कौन रक्षा करेगा? देश की इन हिंसक परिस्थितियों में आज कोई सुख और सन्तोष की साँस नहीं ले रहा है।

हिजरी का १०६७ वाँ वर्ष था, जब शाहजहानाबाद में सम्राट शाहजहाँ बीमार हुए। रात्रि के समय मैं पिता के पास में बैठी हुई थी। पिता की अवस्था देखकर मेरा साहस निर्बल होता जाता था। मुझे जान पड़ता, जैसे मेरी नीचे की भूमि विकम्पित हो रही है। मेरे अन्तःकरण में चिन्तनाओं की अनेक लहरें उत्पन्न हो रही थीं। मुझे मालूम होता था मानो तैमूर वंश का अस्तित्व धीरे-धीरे मिर्बल होता जाता है।

मैंने पीड़ित पिता की ओर देखा। मेरा मन घबरा उठा। पिता की मुखाकृति को देखकर मैं काँप उठी। मैंने कुरान का स्पर्श किया और उसके साथ-साथ मैंने शपथ ली—'मैं अपने पिता के प्रति अपने विश्वास को कभी निर्बल न होने दूंगी।

मैं जानती थी, मेरे पिता सम्राट आज भयभीत अधिक हैं। वे दूसरे लोगों से ही नहीं, मेरी जैसी हतभागिनी से भी उनको भय होने लगा था। उनको इस बात का ज्ञान था कि उनके असाध्य रोग का समाचार सम्पूर्ण साम्राज्य में एक तूफान उत्पन्न करेगा। इस प्रकार की दुश्चिन्ता का अनुभव करके सम्राट ने कहा—

"मेरी हथेली को सूंघकर देखो और फिर बताओ कि उसमें सेव की सुगन्ध मालूम होती है या नहीं?"

पिता ने मुझसे जो प्रश्न किया, उसकी एक पुरानी कहानी है। किसी समय एक तपस्वी ने मेरी माता को दो सेव के फल दिये थे और उन फलों को देकर तपस्वी ने मेरी माता से कहा था—"जब तक सम्राट की हथेली में इनकी सुगन्ध रहेगी, उस समय तक उनका प्रताप सजीव और जाग्रत रहेगा। इनकी सुगन्ध के मिटने के साथ-साथ सम्राट के प्रताप का क्षय होगा।"

मेरे पिता उस तपस्वी की बात को भूले न थे। अपने रोग से भयभीत होकर; उन्होंने उसकी याद की थी और मुझसे जो प्रश्न किया था, उसका यही अभिप्राय था।

उस तपस्वी के फलों को पाकर पिता को परम सन्तोष हुआ था। प्रसन्न होकर उस तपस्वी से पिता ने पूछा था—"मेरे लड़कों में क्या कोई मेरे विरुद्ध भी विद्रोह करेगा?"

पिता के प्रश्न सुनकर उस तपस्वी ने उत्तर दिया था—"हाँ, करेगा और करेगा आपका वह पुत्र जो सब की अपेक्षा अधिक गोरा होगा।"

तपस्वी की उस बात को सुनकर पिता उसी समय भयभीत हुये थे। मेरे भाइयों में औरंगजेब सब से गोरा था। उस समय औरंगजेब की अवस्था दस वर्ष की थी। उन दिनों में उसके जीवन में यद्यपि कोई विद्रोह के लक्षण न थे परन्तु उसके प्रति पिता के विचारों में अन्तर पड़ गया था वे औरङ्गजेब को प्रायः 'श्वेत सर्प' कहा करते थे।

मेरे पिता सम्राट शाहजहाँ इस बार जब बीमार पड़े थे तो पहले दिन से ही उन्होंने तीस हजार सैनिकों का पहरा अपने पासाद में रखने की आज्ञा दी थी। उनके आदेश के अनुसार तुरन्त व्यवस्था हो गयी थी। प्रासाद में तीस हजार सैनिक जो

पहरे पर रखे गये थे, वे सब के सब राजपूत थे। पिता सम्राट को राजपूत सैनिकों पर अधिक विश्वास था। इन प्रहरी सैनिकों पर युवराज दारा का नियन्त्रण था और दारा ही राजप्रासाद में पिता सम्राट के निकट आने-जाने के एकमात्र अधिकारी थे।

पिता की बीमारी उत्तरोत्तर गम्भीर होती जाती थी। बन्धु दारा ने आदेश देकर इस बात की मनाही कर दी थी कि सम्राट की बीमारी का सम्बाद राजप्रासाद से बाहर किसी के द्वारा न पहुँचाया जाय। अपने इस आदेश के सम्बन्ध में युवराज दारा ने बड़ी सावधानी और सतर्कता के काम लिया था।

युवराज दारा के निषेध करने के बाद भी सम्राट की बीमारी का सम्बाद राज प्रासाद के बाहर इधर-उधर फैलने लगा और कुछ ही दिनों के भीतर लोगों ने कहना आरम्भ किया—'सम्राट की मृत्यु हो गयी !'

सम्पूर्ण साम्राज्य में इस दुस्सम्बाद के फैलने में देर न लगी। सम्राट के विरोधी वातावरण से विद्रोह की चिनगारियाँ निकलने लगीं। जो विरोधी थे, अपनी अभिलाषओं के स्वप्न देखने लगे, जो लोग पक्षपाती थे, उनकी भावनायें भी संकुचित होती हुई दिखायी पड़ने लगीं। सभी के सामने अपने-अपने स्वार्थों का प्रश्न था।

समस्त राज्य में लोगों को विश्वास हो गया कि सम्राट शाहजहाँ अब संसार में नहीं हैं। इस सम्बाद के कारण समस्त बाजारों में ताले पड़ गये। आमोद और उत्सव रोक दिये गये। इसके साथ-साथ गुप्त रूप से बहुत-से समाचारों का यातायात आरम्भ हो गया।

गुप्त बातों का पता लगाने में और गुप्त रूप से सम्बाद भेजने में मेरी बहन रोशनआरा अत्यन्त प्रवीण थी। इस प्रकार के

सम्वादों से लाभ उठाने में औरङ्गजेब पहले का अभ्यासी था। मुगल परिवार के अन्य लोग भी इन बातों में उसकी सहायत करते थे।

मुगल-राज वंश में भीतर-ही-भीतर आग की उत्तेजना काम कर रही थी उसके ऊपर धूल का आवरण था। सम्राट की मृत्यु के समाचार से वह आग भ्रातृ-विरोध के रूप में उत्तेजित होने लगी। मेरे तीन भाइयों ने विद्रोह का झण्डा ऊंचा किया। उनकी ओर से 'सिंहासन अथवा मृत्यु' की आवाज सुनायी देने लगी। परन्तु दरबार के समर्थकों ने दारा के राज्याधिकार को स्वीकार किया।

विद्रोहात्मक धूम्र उत्तेजित हुआ। इधर-उधर चिनगारियाँ निकलती हुई दिखायी पड़ने लगीं और रक्तिम मेघों ने आकाश में उड़कर गरजना गड़गड़ाना आरम्भ किया। प्रथम आक्रमण बंगाल से शुजा का हुआ। दारा की एक सेना ने उस आक्रमण का सामना किया। इस आक्रमण के कारण में विद्रोहियों की ओर से कहा गया कि दारा ने विष देकर सम्राट की हत्या की है। दोनों ओर से युद्ध आरंभ हुआ। किन्तु उस लड़ाई में शुजा की पराजय हुई। दारा के पराक्रमी पुत्र सुलेमान शिकोह ने विद्रोहियों का विध्वंस किया।

इन्हीं दिनों में सम्राट ने रोग से मुक्ति पायी। दरबार दिल्ली से आगरे चला गया था। गुजरात से एक सेना लेकर मुराद ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। प्रतारणा-कुशल औरंगजेब ने मुराद को मिलाकर अपना विद्रोही पक्ष सबल बनाया औरंगजेब मुराद की बीरता और युद्ध-कुशलता से भलीभाँति परिचित था। इसलिए उसने सोचा कि मुराद की सैनिक शक्ति को मिला कर लड़ने से दारा को सहज ही पराजित किया जा सकता है।

मेरे सभी भाई दारा से घृणा करते थे । इस घृणा का कारण था। दारा सच्चे धर्म का समर्थक द्वेष को उसने कभी स्वीकार न किया था। औरंगजेब हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज का विध्वंस चाहता था । इसीलिए दारा को इस्लाम का विरोधी कह कर अपराधी ठहराया गया और इसी कारण से औरंगजेब ने दारा को काफिर कहकर सम्बोधन किया और उसके अनुयायियों ने भी ऐसा ही किया।

शुजा के एक बार पराजित होने पर भी बंगाल का विद्रोह समाप्त नहीं हुआ। सागर की लहरों की तरह बंगाल के काले साँपों की बाढ़ आरम्भ हुई । इस प्रकार के सम्वाद प्रासाद में पाकर मैं भयभीत हो उठती थी । सम्राट की बीमारी के दिनों में ज्योतिषियों ने घोषणा की थी—'शीघ्र ही सम्राट नीरोग होंगे और विरोधियों की पराजय होगी।' यह सुन कर मुझे सन्तोष हुआ था। लेकिन मैं जानती थी कि काले साँपों के सिर पर जो श्वेत सर्प बैठा है, वह राज्य को सुखी होने न देगा। उस श्वेत सर्प ने जो विद्रोह किया है, वह किसी प्रकार शान्त हो । परन्तु उत्पन्न होने वाले विद्रोह का आतंक बहुत फैल रहा था और लोग उसकी अपेक्षा श्वेत सर्प—औरंगजेब से अधिक आतंकित हो रहे थे ।

विद्रोह का सम्वाद मुझे विलोचपुर में मिला था। उन दिनों में सम्राट आगरा से फिर देहली लौट रहे थे। इसलिए मैं भी पिता के साथ रवाना हुई। विद्रोह आरम्भ होने के दिनों में ही बिलोचपुर का नाम मुझे बहुत खटकने लगा। मुझे तत्काल उसके पुराने इतिहास का स्मरण हुआ। आज से तीस लर्ष पहले, अपनी युवावस्था में शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध इसी विलोचपुर से विद्रोह आरम्भ किया था।

मैं पिता के साथ वापस आ रही थी। दिन का समय था और सूर्य की तीक्ष्ण किरणें पृथ्वी पर पड़ रही थीं। इसलिए मार्ग में वृक्षों की श्रेणी का आश्रय बार-बार लेने का प्रयत्न करती। मैं पिता के बगल में जिस सवारी के भीतर बैठी थी, वह सम्राट जहाँगीर को उत्कोच-स्वरूप योरप के लोगों से प्राप्त हुई थी। मूक अवस्था में कोस-पर-कोस निकलते जाते थे। शाह-जहानाबाद छोड़ कर जब मैं सब के साथ दिल्ली वापस हो रही थी तो मुझे मालूम हो रहा था, मानो पराजित अवस्था में मैं सैनिकों और सामन्तों के साथ भाग रही हूँ।

दिल्ली के राजप्रसाद में पहुँचने के लिए मैं अधीर हो रही थी। मैं पक्षी बन कर उस प्रासाद में पहुँचना चाहती थी। मेरी इस अधीरता और उद्विग्नता का कारण था। मुझे कुछ ऐसा सुनने को मिला कि दुलेरा राजधानी में आये हैं। इसीलिए मैं राजधानी दिल्ली में पहुँचने के लिए उद्विग्न हो रही थी। इस उद्विग्नता का एक और भी कारण था। मैंने सुना था कि मायावी औरङ्गजेब ने दुलेरा पर अपना जादू डालने की चेष्टा की है। दुलेरा को अपने पक्ष में करने के समस्त उपायों को वह काम में ला रहा है। यह सुनते ही कि औरङ्गजेब की ओर से दुलेरा को बुलाया गया है, मेरे शरीर में मानो विद्युत का स्पर्श हुआ था। परन्तु मैं शान्त थी मैं तुरन्त दिल्ली पहुँचना चाहती थी।

शाहजहानाबाद से मैं पिता के साथ दिल्ली जा रही थी। साथ में सैनिकों और सामन्तों का संरक्षण था। मैं बार-बार औरङ्गजेब की चालों का स्मरण करती थी मैं सोचती थी कि दुलेरा को बुला कर औरङ्गजेब ने कितनी बड़ी धूर्तता का परिचय दिया है। कहाँ वह अनेक वर्षों की घृणा और धार्मिकाता की आड़

में क्रूर दुर्व्यवहार और कहाँ आज का यह स्नेहपूर्ण सम्बोधन! कितनी बड़ी प्रतारणा है! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए क्या नहीं हो सकता! आज एक अधार्मिक और काफिर, धार्मिक और ईश्वरवादी कैसे बन जाय! तब क्या यह सही नहीं है कि मनुष्य-जीवन का स्वार्थ ही उसकी धार्मिकता और अधर्मिकता का प्रतिबिम्ब होता है। आज कहाँ गया औरङ्गजेब का इस्लामी अन्धविश्वास, जिसके कारण दुलेरा अभी तक काफिर था! परन्तु दारा के साथ युद्ध आरम्भ होते ही काफिर दुलेरा परम धार्मिक बन गये!

मार्ग में मिलने वाली सभी वस्तुओं को मैं ध्यानपूर्वक देखती थी, उनमें मुझे कोई अन्तर दिखाई न देता। वे भी चीजें आज के पहले जैसी थीं, वैसी ही आज भी वे दिखायी देतीं। अनेक प्रकार के वृक्ष टेढ़े-मेढ़े रास्ते और ऊँची-नीची भूमि के भाग—सब के सब वैसे ही दिखायी पड़ते थे, जैसे मैंने उन को पहले कभी देखा था। मुझे कहीं कोई अन्तर दिखायी न पड़ा।

मार्ग में एक संगमरमर के कुएं के पास हम सब ने रुक कर विश्राम किया। हमारी सवारी के चारों घोड़ों को स्नान कराया गया। वहीं पर मैंने तरबूज का भोजन किया। उसके बाद मैंने थोड़ी सी शराब पी। विश्राम करने के पश्चात् सब के सब फिर रवाना हुए। इस बार पिता ने तेजी के साथ चलने की आज्ञा दी। सम्राट की आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया।

मेरे नेत्र अब भी मार्ग के दृश्य को देख रहे थे। पिता ने घूमकर मेरी ओर देखा। उनकी ओर देखकर मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि पिता कितने अधिक बूढ़े हो गये हैं।

स्वर्णाङ्कित आभूषणों के भीतर उनके शरीर में वृद्धावस्था के लक्षण अपने आप प्रकट हो रहे थे। पिता ने जो शराब पी थी, वह उनकी पोषाक के अनेक स्थानों पर गिरी थी। मैंने उनके वस्त्रों के अनेक स्थानों में उसको देखा।

मैंने देर तक सम्राट की ओर देखा। उनके शरीर में उनका पहले जैसा सामर्थ्य अब कहीं दिखाई न पड़ता था। उनके नेत्रों की ज्योति अब फीकी पड़ गयी थी, मैं अनुभव कर रही थी कि उनके शरीर की उष्णता, शीतल होती जा रही है। पिता की नीवरता उनके शान्त जीवन का परिचय देती थी।

नीवरता को भंग करते हुए सम्राट ने मीर जुमला का प्रश्न उठाया। मैंने अनुभव किया, उनका कष्ट-स्वर भी उनकी वृद्धा-वस्था का परिचय दे रहा है। पारसी मीरजुमला को किसी समय सम्राट ने राज-सम्मान देकर सम्मानित किया था और उसको मुअज्जम खाँ की पदवी देकर अलंकृत किया था। सम्राट को आशा थी कि आवश्यकता पड़ने पर मीर जुमला सम्राट की सहायता करेंगे। उन्हीं मीरजुमला ने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह होने पर सम्राट के साथ विश्वास घात किया। मैंने देखा, पिता अपनी सम्पूर्ण निराशाओं से भाराक्रान्त हो रहे थे। उनको सन्तोष देने के लिए मेरे पास कुछ न था।

मीरजुमला की बात मुझे भूलती न थी। उनके जीवन की अनेक बातों का मुझे स्मरण होने लगा। एक दिन था, जब यही मीरजुमला जूते का व्यापार करते थे। उसके बाद सम्राट की अनुग्रह प्राप्त करके वे गोलकुण्डा के वजीर हो गये। उन्हीं दिनों में उनको औरङ्गजेब का स्नेह प्राप्त हुआ। गोलकुण्डा की राजरानी को पथ-विपथ करने के कारण इन्हीं मीरजुमला को सुलतान ने राजदण्ड देने का उपक्रम किया। उस दशा में घबरा

कर मीरजुमला ने औरङ्गजेब से सहायता की याचना की। औरङ्गजेब ने सहायता करने के साथ-साथ गोलकुण्डा की राजधानी की लूट की और वहीं से अपने को शक्तिमान बनाया।

मैं मीरजुमला को पहले से ही पहचानती थी। मैं उनका विश्वास न करती थी। इसीलिए मैंने पिता को उनको सतर्क रहने के लिए अनेक बार कहा था। एक दिन था, जब पिता मेरी बातों को मानते थे और उसी प्रकार मानते थे, जिस प्रकार वे मेरी मा के परामर्श को स्वीकार करते थे। परन्तु धीरे-धीरे वे मुझसे दूर होते गये।

अनेक प्रकार की बातों को सोचकर मैंने पिता से कहा—"क्या आपको स्मरण है—मैंने और दारा ने आप से अनुरोध किया था कि औरङ्गजेब को गोलकुण्डा से बुला लेना चाहिए। हम दोनों को इस बात का ख्याल था कि गोलकुण्डा में औरङ्गजेब के अधिकार जमाने का क्या परिणाम हो सकता है। आप को एक हीरा की कणी देकर कहा था कि कन्धार के राजकोष में इसके समान मूल्यवान कोई हीरा नहीं है। यदि मुझे एक सेना देकर सहायता की जाय तो मैं बीजापुर, गोलकुण्डा, सिंहल और करमण्डल प्रदेशों को जीत कर इस प्रकार के बहुत से हीरक सम्राट को लाकर दे सकता हूँ।"

मैंने कहा—मीरजुमला की बात को सुनकर आपने उनको सैनिक सहायता देने का वचन दिया था और जब उसकी व्यवस्था होने लगी थीं, उसी समय मैंने और दारा ने इसका विरोध किया था। मीरजुमला के अधिकार में जो सेना दी गयी थी, उसी को लेकर आज मीरजुमला इस विद्रोह में औरङ्गजेब की सहायता कर रहे हैं।

मेरी बातों को सुनकर सम्राट सजग होकर कुछ सोचने लगे। सतर्कता की समस्त रेखाएं उनके मुख-मण्डल पर अंकित हो उठीं। मैं पिता की ओर देख रही थी, वे शान्त थे। उन्होंने मेरी बात का कोई उत्तर न दिया। उत्तर की प्रतीक्षा में अनेक बातों को मैंने सोच डाला। मैंने निर्णय किया कि सम्राट पर मुझे फिर अधिकार प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। पिता को शान्त देखकर मैंने फिर कहा—मैं इस बात पर विश्वास नहीं करती कि औरङ्गजेब को कुछ प्रलोभन देकर अपने पक्ष में किया जा सकता है। आप जानते हैं, औरङ्गजेब ने किस प्रकार अपने भाइयों के साथ एक लाख रुपये की प्रवंचना की थी। उन लोगों से औरंग-जेब की अभिलाषा थी, मुक्ता खरीदने की। परन्तु शेख मीर बख्श ने इसका विरोध करते हुए कहा था। 'इस मुक्ता की अपेक्षा हिन्दुस्तान में अधिक मूल्यवान मुक्ता मिल सकते हैं। जिस सम्पत्ति के द्वारा तुम इस मुक्ता को खरीदना चाहते हो, उसकी सहायता से सैनिक शक्ति बढ़ायी जा सकती है और न जाने कितने मुक्ता अपने अधिकार में किये जा सकते हैं।' शेख मीर बख्श की बातों का औरंगजेब पर प्रभाव पड़ा। और इसी के परिणाम स्वरूप सूरत बन्दरगाह पर औरंगजेब ने अपना अधिकार कर लिया।'

अपनी बात कह कर मैं चुप हो रही। मैंने कुछ कहा था, उसे मैं फिर सोचने लगी। इसी समय पिता ने मेरी ओर देखा। उनके नेत्रों में सन्तान-स्नेह की रेखायें स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही थीं। उनके मुख पर मैंने और भी कभी इस प्रकार की रेखायें देखी थी। मुझे ठीक स्मरण आता है कि जब मेरी अवस्था छोटी थी तो उस समय भी मैंने कभी-कभी उनको इस रूप में देखा था।

मैं शान्त थी। इसी समय पिता ने कहा—'जहानारा, तुमको

क्या याद नहीं है, औरङ्गजेब को क्षमा करने के लिए मुझसे किसने आग्रह किया था? और किसने अनुरोध किया था। उसको गुजरात से दक्षिण में लाने के लिए? गुजरात छोड़ने के बाद और दक्षिण प्रान्त में आने पर ही औरङ्गजेब ने अपनी सैनिक शक्ति पैदा की है।"

चुपचाप बैठी हुई मैं पिता की बातों को सुन रही थी। उन्होंने अपना हाथ मेरे माथे पर रखा। उनके हाथ के रखते ही मुझे अनुभव हुआ कि उनके शरीर में उष्णता की वृद्धि हो गयी है। मैं कुछ कहना चाहती थी। किन्तु उसी समय पिता ने अपनी बात फिर आरम्भ की—

"जहानारा, तुम्हें स्मरण नहीं है, कितनी बार मैंने तुमको सचेत करते हुए कहा था कि उसका अधिक विश्वास न करना। विषाक्त सर्प भी दूर से अच्छा मालूम होता है, परन्तु सम्पर्क होने पर उसका विष ही अपने हाथ लगता है। हमें खूब याद है, दारा की अवस्था जब छः दिनों की थी, मैंने ध्यान पूर्वक उसके मुख को देखा था। उस समय भी उसके कपाल के दुर्भाग्य की रेखायें थीं। दारा के साथ-साथ मैंने औरङ्गजेब को भी देखा था, उसके कपाल में सौभाग्य के लक्षण! विधाता के लेख को कोई मिटा नहीं सकता।"

पिता की इस बात को बड़ी सतर्कता के साथ मैंने सुना। उनके चुप होते ही मैंने उनके हाथ का चुम्बन लिया। उनकी कही हुई बातों को मैं सोचने लगी। उन्होंने कोई भी बात असत्य न कही थी। बहुत दिनों की पुरानी बातों का स्मरण मुझे हुआ। आधार हीन बातें कहकर और असत्य पत्र लिखकर औरङ्गजेब ने मुझे और दारा को अनेक बार धोखा दिया था। किस प्रकार की प्रतारणा थी, इसका कुछ स्मरण नहीं है। किन्तु इतना याद

है कि वह एक भयानक प्रतारणा थी। मुझे इस बात की भी याद आयी कि औरङ्गजेब का पक्ष लेकर मैंने कई बार पिता से अनुरोध किया था और औरङ्गजेब को क्षमा करने के लिए मैंने पिता को विवश किया था।

पिता की बातों को सुनकर औरङ्गजेब के सम्बन्ध में मैं अनेक प्रकार की कल्पनायें करने लगी। पहले की अपेक्षा अब मुझे और भी अधिक भय मालूम होने लगा। औरङ्गजेब का गोरा शरीर और काले नेत्र मुझे आँखों से दिखायी पड़ने लगे।

सिकन्दरा आगरे से अधिक दूर नहीं है। वहाँ पर मैं पिता के साथ गयी थी। वहीं पर सम्राट अकबर को समाधि दी गयी थी। उस समाधि को मैंने अनेक बार देखा था। परन्तु दूसरे अवसरों की अपेक्षा इस बार वह मुझे अधिक पवित्र मालूम हुई। लाल वर्ण के प्रस्तरों से बने हुए विशाल प्रासाद के सामने झुक कर मैंने उस समाधि के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। मस्तक नीचा करके मैंने भूमि को स्पर्श करते हुए प्रणाम किया। सम्राट अकबर के जीवन की महानता को स्मरण करके मेरे शरीर का प्रत्येक रोम श्रद्धा से परिपूर्ण हो रहा था।

इसके पश्चात् मैं समाधि के निकट गयी। सम्मानपूर्ण नेत्रों से मैंने उसकी ओर ध्यान पूर्वक देखा और देखा संगमरमर के उन समस्त प्रस्तरों को, जिनके द्वारा समाधि का बाहरी भाग निर्माण किया गया था। इस समय सम्राट अकबर के जीवन की एक-एक बात की मुझे याद आ रही थी।

समाधि के अत्यन्त निकट खड़ी मैं अनेक प्रकार की कल्पनायें करने लगी। मुझे अनुभव होने लगा यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ पर मनुष्य अपनी दुश्चिन्ताओं से छुटकारा पा जाता है। यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ पर किसी प्रकार के

अनाचार और अत्याचार का आक्रमण नहीं होता। यहाँ पर पहुँचकर, मनुष्य ईश्वर के सच्चे अस्तित्व को अनुभव करता है।

सम्राट अकबर ने धर्म का सत्य रूप खोज कर 'दीने इलाही' नामक सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की थी। इसके सिद्धान्तों में उनकी श्रद्धा थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी समाधि उनके इस सम्प्रदाय की स्मारक है। क्या उनकी भावना थी कि जब वे इस संसार में न होंगे उस समय 'दीने इलाही' के अनुयायी उनकी समाधि के पास आकर एकत्रित हों और अपने सम्प्रदाय पर अपनी आस्था प्रकट करें ? बौद्ध संघाश्रम के सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार की भावना सम्राट अशोक की थी। क्या मृत्यु के पूर्व सम्राट अकबर ने उसकी इस महानता पर विचार किया था ?

सम्राट अकबर की समाधि को मैं श्रद्धापूर्वक जितना ही देखती, उतना ही तरह-तरह के प्रश्नों को उठाकर मैं आलोचना करती। समाधि के निकट इधर-उधर घूमकर पिता कुछ सोचते हुए दिखायी देते थे। ऐसा जान पड़ता था कि वे अपने पूर्वज सम्राट अकबर के जीवन की अनेक बातों का स्मरण कर रहे हैं। अकबर की समाधि के निकट शत्-शत् और सहस्र-सहस्र हिन्दू-मुसलमान आकर एकत्रित होते हैं और 'दीने इलाही' पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। जिस सम्प्रदायक की महानता सम्राट अकबर ने अपने जीवन काल में बढ़ायी थी, उनकी मृत्यु के उपरान्त, उनकी प्रस्तर-समाधि उसको चिरजीवन देने का काम करती है।

उस समाधि के निकट पिता को अत्यन्त शान्त, गम्भीर और नीरव देखकर मुझे ऐसा मालूम होता, मानो वे सोच रहे हैं कि सभी इस समाधि से पास आते हैं और आने का साहस करते हैं। परन्तु सम्राट अकबर का पुत्र सलीम यहाँ पहुँचने का

साहस नहीं कर सकता। सचमुच सलीम की इस अवस्था का कारण है। वह कारण अत्यन्त भीषण और लज्जास्पद है। सम्राट अकबर के जीवन-काल में ही सलीम ने अपने पिता के विरुद्ध षडयन्त्र की रचना की थी। यही कारण था कि अकबर की मृत्यु -शैया के पास आने का साहस सलीम को न हुआ था। पिता के प्रति किया गया विद्रोह, उसके जीवन का एक अक्षम्य अपराध था । अपराधी को स्वयं अपने इस अपराध का ज्ञान होता है। इसी अवस्था में खूबराम ने यह कह कर अपने जीवन की अकबर के प्रति अटूट श्रद्धा का परिचय दिया था कि जब तक सम्राट जीवित रहेंगे, मैं उनको छोड़कर अलग न हो सकूंगा।

पिता के सम्बन्ध में इस प्रकार की कल्पनायें करने के बाद भी मैं उनसे कुछ पूछ सकने का साहस न कर सकी। अपने स्थान से हटकर मैं उसके ऊपरी भाग पर चली गयी। वह भाग श्वेत संगमरमर से बना हुआ था। सम्राट अकबर की समाधि का कमरा इस प्रकार पाषाण-समूह से निर्माण किया गया था कि वह श्रेणी वद्ध खिड़कियों का एक अद्भुत समन्वय प्रकट करता था। उन खिड़कियों के मार्ग को पार करके सर्वसाधारण के नेत्र वाटिका की हरी घास पर पड़ते थे। सोने से मढ़ा हुआ समाधि का गुम्बज आकाश की तरह गोलाकार, दिन में सूर्य की किरणों से और रात में चन्द्रमा के प्रकाश में अत्यन्त सुन्दर और सुहावना जान पड़ता है।

सम्राट अकबर की समाधि एक सुन्दर प्रासाद है और कई भागों में उसका निर्माण किया गया है। नीचे के भाग में श्वेत संगमरमर पर हिन्दुस्तान के वीर-प्रतापी, महापुरुष को समाधि दी गयी है। समाधि का मुख पूर्व की ओर है, दीवारों

के छोटे-छोटे छेदों से सूर्यालोक आकर उस समाधि को नित्य-प्र.त पुनीत बनाने का काम करता है।

उस पुण्यमयी श्वेत समाधि के सम्मुख होकर मैंने श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम किया। उस समय मेरे नेत्रों से उत्तप्त आँसुओं के बूंद निकल रहे थे। मैं सोच रही थी, प्राचीन तपस्वियों की तरह यदि मैं शक्तिशालिनी हो सकती और मेरी प्रार्थना पर यदि यह महापुरुष जीवित हो सकता तो इस भग्यहीन हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य-तिमिर नष्ट हो जाता।

निर्निमेष नेत्रों से मैं समाधि की ओर देख रही थी। मुझे सहसा जान पड़ा, मानो प्रस्तर-समाधि को तोड़कर वे अपना वक्षस्थल ऊंचा कर रहे हैं और आर्तनाद के साथ वे कह रहे है—

"हमारा साम्राज्य सुरक्षित रहने दो।"

इसी समय अपने पिता के पैरों की आहट मुझे शिला के नीचे सुनायी पड़ी। मेरी अभिलाषा थी कि यहाँ पर सम्राट कुछ देर विश्राम करें। इसीलिए मैं तेजी के साथ वाटिका की ओर चल पड़ी। ऊंची दीवारों से घिरी हुई यह पवित्र भूमि मेरे लिए तीर्थ-स्थान है। लाल पाषाण से बना हुआ प्रासाद मेरे नेत्रों में अपूर्व भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर रहा है। उसका प्रत्येक खण्ड देवताओं का मन्दिर हो रहा है।

समाधि के चारों ओर मार्ग बने हुए हैं। वे मार्ग समाधि के निकट आते हैं और उसको स्पर्श करके अपने अभीष्ट की ओर चले जाते हैं। उसके मध्य भाग में एक क्षीण दुग्ध की धारा निकल रही है। एक कुएं से चार धारायें निकलकर, चार नदियों के रूप में परिणत हो रही है। उनके द्वारा चारों ओर की भूमि उर्वरा बन रही है। उस स्थान के सम्पूर्ण वृक्ष मुझे अत्यन्त प्रिय और पवित्र मालूम हो रह थे। उन वृक्षों की छाया से

अच्छादित पथ पर मैं धीरे-धीरे चल रही थी। पथ के दोनों ओर खड़े हुए विभिन्न प्रकार के वृक्ष मानो जीवन का सन्देश दे रहे थे। उनकी हिलती हुई पत्तियाँ, एक दूसरे को स्पर्श करके जैसे सम्मेलन का महत्व बना रही हों। प्रकृति के इन दृश्यों को देख कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी।

यमुना का नीलाभ वारि आकाश की नीलिमा के साथ मिल कर एक हो रहा था। आगरा-प्रासाद के ऊंचे मीनार मेघाच्छन्न आकाश में एक प्रासाद के रूप में उद्भासित हो रहे थे। सम्राट अकबर के प्रिय नगर फतेहपुर सीकरी का प्रमुख द्वार शून्याकाश में प्रतिबिम्बित हो रहा था। पता नहीं, साम्राज्य का यह प्रदेश कब तक हरा-भरा रहेगा? निकट भविष्य में प्रवाहित होने, वाला रक्त-स्रोत अभी कितनी दूर है? प्रासाद की इस प्रफुल्लित वाटिका में पक्षियों का कब तक मधुर-संगीत सुनायी देगा? मनुष्य-रक्त के प्यासे संग्राम की वाद्य-गर्जन किस घड़ी इन समस्त दृश्यों का विध्वंस करेगी?

अपने शैशव काल में मैं फतेहपुर के जिस द्वार पर बहन और भाइयों के साथ खेला करती थी, उसके निकट पहुँचने पर मैं आशा करती हूँ कि कोई ऐसा पुण्य पदार्थ मुझे मिलेगा, जिसके आशीर्वाद से साम्राज्य को क्षय करने वाले सम्पूर्ण वातावरण का अन्त हो जायगा। इस प्रकार सोचती हुई, लाल प्रस्तरों से बने हुए अकबराबाद के उस प्रासाद की ओर मैं अग्रसर हुई, जहाँ पर मैं आज वन्दिनी हूँ। अस्त होने वाले सूर्य की रक्ताभ रश्मियों की अपेक्षा प्रासाद का रंग अधिक लालिमा-पूर्ण हो गया है। इस राज-प्रासाद के सामने का मार्ग आज जनहीन हो रहा है। मेरे देखते-देखते यहाँ के जलाशय से एक कृष्ण-पक्षी उग्र चीत्कार के साथ उड़ गया। उसका उग्र स्वर

मुझे अशुभ सम्वाद के रूप में मालूम हुआ। मैं भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगी।

पुल से होकर मैं आगे बढ़ गयी। मैंने देखा, दिल्ली द्वार के मध्य से होकर एक सुसज्जित अश्वारोही दल मेरे पथ को पार करके निकल गया। सम्राट-कुमारी रोशनआरा की शिविका की ओर मैं देखती रह गयी। सूक्ष्म जालीदार वस्त्र से उसी की शिविका परिवेष्टित थी। एक क्रीतदास युवक स्वर्णाङ्कित मयूर की पूंछ का बना हुआ पंखा उस पर कर रहा था। वह दृश्य इस प्रकार असाधारण था कि मैं उसे कभी भुला न सकूंगी। बहन रोशनआरा की शिविका दो हाथियों के द्वारा चल रही थी। इस दृश्य को देखकर मेरे अन्तःकरण में अनेक कल्पनायें उठने लगी।

हम लोगों के साथ जो समूह चल रहा था, वह रुका। इत्र की तीव्र सुगन्ध से सम्पूर्ण वायु सुगन्धित हो उठी। बहन रोशन-आरा ने अपने शिविका के भीतर से हम लोगों की ओर देखा। मैंने भी उसकी ओर घूमकर उसके मुख-मण्डल का अवलोकन किया। अश्वारोही दल को आगे बढ़ने के लिए आदेश दिया गया। जुमा-मस्जिद की प्रार्थना में सम्मिलित होने के लिए सम्राट-कुमारी रोशनआरा ने अपने प्रासाद से प्रस्थान किया था। उस मस्जिद का निर्माण मेरे द्वारा हुआ था। उसी समय मैंने पिता सम्राट के मुँह से सुना—"जो वृक्ष मेरे द्वारा अंकुरित हुए थे, उनमें से सभी वृक्षों ने सुखद फल नहीं दिये।"

राज प्रासाद के मुख्य द्वार में प्रवेश करने के पहले ही मैंने जाना कि प्रासाद की सम्पूर्ण व्यवस्था ही विशृङ्खलित हो गयी है। इसी अवसर पर मैंने सुना कि शाइस्ताखाँ और मीर जुमला के पुत्र अमीन खाँ ने औरङ्गजेब को लिखा है—"सम्राट के

जीवन के अन्तिम क्षण गिने जा रहे हैं। यद्यपि सम्राट झरोखे में आकर प्रजा को दर्शन देते हैं और प्रजा उनको देखती है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी मृत्यु सन्निकट है।"

इन्हीं दोनों ने औरंगजेब और मुराद को यह भी लिखकर भेजा है कि "वे अपनी सेनाओं के साथ आगरे में आवें। सूबा बंगाल के सूबेदार शुजा के साथ युद्ध करने के लिए, सुलेमान शिकोह अपनी सेना को लेकर रवाना हो गये हैं। सुलेमान के वापस आने के पहले ही औरंगजेब और मुराद का आगरे आ जाना अत्यन्त आवश्यक है।"

संयोग से यह पत्र औरंगजेब और मुराद के पास न पहुँच कर दारा के हाथ में पड़ गया। इस अन्याय के कारण दोनों को कारागार में भेज दिया गया और कहा गया कि उनको इस अपराध का यथोचित दण्ड दिया जायगा। इनका निर्णय सुनने के लिए प्रजा के बहुत-से लोग दिन भर दारा के महल के सामने उपस्थित रहकर प्रतीक्षा करते रहे।

उन दोनों अपराधियों के बन्दी होने का समाचार बहन रोशनआरा को मालूम हुआ। उसने दारा से मिल कर अपराधियों को मुक्त कर देने का अनुरोध किया। दारा के हृदय में कठोरता न थी। दण्ड देने का विचार उनके हृदय में स्थायी न रह सका। उसी दिन सूर्यास्त होने के साथ ही दोनों अपराधियों को छोड़ दिया गया। इस मुक्ति के साथ-साथ, हमारे अधःपतन का मार्ग भी खुल गया।

अतीत काल की भीषण घटनाओं की स्मृतियों से मेरा हृदय बैठा जाता है। उन घटनाओं की सीमा बहुत विस्तृत है। लिखने की स्याही रक्त में परिणत होती हुई मुझे दिखायी देती है। हे भगवान, इस अनाचार परिपूर्ण धारा की ओर देखो। आज का

जीवन अत्यन्त असह्य और अशान्त हो गया है। प्रभो, एक ऐसा अन्धड़ उत्पन्न करो, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी तिमिराच्छन्न हो उठे!

मकड़ी के जल के समान गुप्तचरों का समूह, राजादरबार और शिविर की रक्षा करने के लिए रवाना हुआ है। मीर जुमला की घोषणा सुनने में आयी है कि वे सम्राट शाहजहाँ की पताका के नीचे आकर आश्रय लेंगे। मैं मीर जुमला की स्निग्ध वाणी को जानती हूँ। वे अपने बातों का रंग देना खूब जानते हैं, परन्तु दारा और सम्राट ने उनकी बातों का विश्वास किया है।

इन दिनों में राज्य से लेकर दरबार तक घातक राजनीति चल रही थी। एक ओर मीर जुमला अपनी बदली हुई नीति में दिखायी देते थे और दूसरी ओर सम्राट की समस्त सेना के पास औरंगजेब के गुप्त सन्देश आरहे थे। उनमें कहा जाता था—

"सम्राट की मृत्यु हो चुकी है। यदि आप लोग औरंगजेब की सहायता करेंगे तो आप लोगों का वेतन बढ़ा दिया जायगा। दारा इस्लाम का विरोधी है। इस प्रकार इस्लाम के विरोधी दारा का पक्ष आप लोग कैसे समर्थन करेंगे!"

इस प्रकार के सन्देशों पर सेनापतियों ने कुरान को स्पर्श करके प्रतिज्ञा की और कहा—"यदि सम्राट की सचमुच मृत्यु हो गयी है तो हम औरंगजेब के पक्ष का समर्थन करेंगे। परन्तु सम्राट की मृत्यु का समाचार मंगा लेना चाहिए।"

सेनापतियों को विश्वास दिलाने के लिए औरंगजेब की ओर से दूत भेजे गये। साथ ही मार्ग में यह व्यवस्था भी कर दी गयी कि जो सही समाचार लेकर आवे, उसे मार्ग में ही समाप्त

कर दिया जाय। यही किया गया। परिणाम यह हुआ कि जो लोग सम्राट के जीवित होने का समाचार लेकर लौटे, वे पथ में ही परलोकवासी हुए। किन्तु जो असत्य समाचार सम्राट की मृत्यु का सम्बाद लेकर लौटे, उन पर विश्वास किया गया। इस प्रकार औरंगजेब ने सम्राट के समस्त सेनापतियों को अपने पक्ष में कर लिया।

औरंगजेब की राजनीति में केवल महावत खाँ नहीं आये। वे अपनी सेना को लेकर अपने देश चले गये और उसके पश्चात् वे आगरे चले आये। उन्होंने अपने पूर्वजों की मर्यादा का मान रखा। उनके जीवन में राजपूती रक्त था और महावत खाँ को भी मैंने किसी समय बन्धुत्व की मर्यादा दी थी।

दक्षिण की ओर प्रस्थान करने के पहले औरंगजेब ने समस्त सेनापतियों से अपनी विजय के लिए अल्लाह से प्रार्थना करने के लिए कहा था और उसके अन्त में औरंगजेब ने स्वयं प्रतिज्ञा की थी—या तो मैं विध्वंस करूंगा अथवा युद्ध में मैं अपने प्राणों का बलिदान करूंगा।

सफलता प्राप्त करने की कुंजी औरंगजेब को भलीभांति मालूम है। बल्क के युद्ध में जब बोखारा के सुल्तान के विरुद्ध औरंगजेब ने अपनी सेना को लेकर चढ़ाई की, उस समय सुलतान के साथ अपरिमित सेना थी। सम्राट की सेना को लेकर औरंगजेब ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। दोपहर की नमाज के समय औरंगजेब ने अपनी हाथी की पीठ से उतर कर और दोनों सेनाओं के बीच मुस्लिम-प्रार्थना के अनुसार झुक कर सम्पूर्ण नमाज को पूरा किया। बोखारा के सुल्तान अब्दुल अजीज पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपनी विलाश सेना के सामने कहा कि "जो इस्लाम का इतना समर्थक है, उसके साथ

युद्ध करना, इस्माल का अपमान करना है।" परिणाम स्वरूप, युद्ध बन्द करने की घोषणा की गयी। उस युद्ध में औरंगजेब की इस प्रकार विजय हुई।

उज्जैन का युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में मेरे पिता के परम मित्र और बन्धु जसवन्तसिंह और उनके राजपूत वीरों को मुराद ने पराजित किया था। उस संग्राम में मेरे पिता-सम्राट के मुसलमान सेनापति ने विश्वासघात किया। वह औरंगजेब से मिल गया। उसने अपने साथ का सम्पूर्ण गोला-बारूद औरंगजेब की सेना को सौंप दिया और उसने तथा उसकी सेना ने युद्ध में भाग न लिया।

उज्जैन के उस युद्ध में पराजित होकर जब यशवन्तसिंह वापस लौटे तो उनकी पत्नी ने अपने दुर्ग का द्वार बन्द कर लिया और अत्यन्त घृणा के साथ कहा—"पराजित स्वामी के दर्शन करने की अपेक्षा विधवा होकर पति की चिता में प्रवेश करना राजपूत पत्नी के लिए अधिक श्रेष्ठ होता है। राजपूत या तो युद्ध में विजय प्राप्त करे अथवा वहीं पर अपने प्राणों का त्याग करे।"

उज्जैन के युद्ध में विजयी होकर जब औरंगजेब और मुराद अपनी सेना लेकर आगरे की ओर बढ़े तो मेरे पिता सम्राट ने भयभीत होकर, अपने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाये और अत्यन्त कातर स्वर में कहा—"या अल्याह, जो तेरी मरजी हो।"

उस समय पिता स्वयं युद्ध के लिए तैयार हुए और आज्ञा दी कि युद्ध के लिए हमारी सेना को तैयार करो।

हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए जब कभी आवश्यकता पड़ी थी, तैमूर ने एक साधारण सैनिक की भाँति युद्ध किया

था! सम्राट शाहजहाँ यदि स्वयं युद्ध में लड़ने के लिए जायं, तो साम्राज्य के लोगों को मालूम हो जाय कि सम्राट जीवित हैं। अपने शासन-काल में यदि सम्राट शाहजहाँ ने स्वयं युद्ध किया होता तो उनके जीवन काल में ही इस राज्य की यह दुरवस्था न हुई होती। एक मस्तिष्क समस्त शरीर का सञ्चालन करता है।

आज जो सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के लिए आता है, वह सम्राट का ही सैनिक तो है! प्रत्येक विरोधी पर कृतज्ञता का भार है। यदि सम्राट युद्धक्षेत्र में उपस्थित हों तो विरोधियों का सामने आकर युद्ध करना दुस्तर हो जाय। सम्राट के प्रताप की रक्षा, अन्तःपुर में विश्राम करने से नहीं होती, उसकी रक्षा होती है, समरांगण में मृत्यु का स्वागत करने से!

विश्वासघातकों का पहचानना सरल नहीं होता, सगे-सम्बन्धियों की विश्वासघातकता का समझना और भी कठिन होता है। सम्राट के साले शाइस्ता खाँ के हृदय में जितनी ही तीव्र घृणा थी, उसकी वाणी में उतनी ही मिठास थी, विश्वास-घातकों का यह एक प्रमुख लक्षण है। चटुकारिता और विश्वास-घातकता का घनिष्ट सम्बन्ध है। खलीलुल्ला भी शाइस्ता खाँ की श्रेणी का आदमी था, दोनों ही इस बात को जानते थे कि मीठी बातों के द्वारा सम्राट को भुलावे में रखा जा सकता है।*

स्वर्ग के द्वार से छिपकर एक बार कहीं शैतान ने सृष्टि के

---

*खलीखुल्ला खाँ को स्त्री के सम्बन्ध में सम्राट शाहजहाँ की अश्लील बातें अन्तःपुर से लेकर राज दरबार तक फैली हुई थीं। इन बातों से खलीलुल्ला परिचित था और वह सम्राट से द्वेष भी मानता था। इसी अपमान का प्रतिशोध करने के लिए उसने सम्राट के विरुद्ध व्यवहार किया था।

गुप्त रहस्यों को जान लिया था। इसके सम्बन्ध में एक बहुत पुरानी कथा है। पिता सम्राट ने पराक्रमी राजपूत रामसिंह और बूँदी के राजा छत्रसाल को अपने मन्त्रिमण्डल में सब से अधिक श्रेष्ठता दी थी। सम्राट के बुलाने पर विलोचपुर से छत्रसाल के आगरा पहुँचने के पहिले ही हम लोग दिल्ली से आगरे चले गये। अनेक वर्षों तक मैंने अपने राखीबन्द भाई के दर्शन नहीं पाये। उस हृदय विदारक पत्र को पाने के बाद मुझे उनको देखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ।

दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। प्रभात बेला मैंने एक कबूतर देखा। उसकी देह में धूलि लगी थी और उसकी लाल गर्दन अपनी ओर मुझे आकर्षित कर रही थी। छत्रसाल को राज दरबार में बुला कर लाने के लिए उसको दूत का पद दिया गया।

गरमी के दिन थे। पुष्प फूल रहे थे और भ्रमरों के सुरीले स्वरों से फूलों के चतुर्दिक स्थान गूंज रहे थे। सम्पूर्ण अंगूरी बाग पुष्प-कलियों की सुगन्ध से भरा हुआ था। परामर्श करने के लिए सम्राट ने अपने गुप्त प्रासाद में बुंदेला छत्रसाल को आह्वान किया था। सम्राट के प्रासाद में उनको जाने के समय मैंने उनके देखने का उपक्रम किया। मेरी यह अभिलाषा अप्रकट रूप में थी। इसीलिए मैंने अपने आपको उस समय छिपा कर रखा।

गोलकुण्डा के हीरे के टुकड़ों के समान स्वेत संगमरमर प्रस्तरों के निकट होकर यमुना का जल प्रवाहित हो रहा था। क्षीण वायु के आक्रमण से मेरा परदा खुल गया। अचानक मेरे कानों में कुछ सुनायी पड़ा। या तो वह किसी के पैरों की आहट थी अथवा मेरे हृदय की तीव्र गति थी। मेरे हृदय-सागर में

कल्पनाओं और भावनाओं के ज्वार-भाटे उठ रहे थे। दौलताबाद और गुलबरगा के युद्ध-क्षेत्रों में प्रकट होने वाले राजपूतों के शौर्य की कहानियाँ सुनने के लिए मैं आतुर और अधीर हो रही थी। उनको एक बार सुनकर अन्तःकरण के आह्लाद को अनुभव करके मैं तृप्त होना चाहती थी। एक बार मेरे हृदय में अपनी विजय का उच्छ्‌वास उठता। मैं अनुभव करती, उसी विजयी वीर के पार्श्व में मैं आज खड़ी हूँ। मेरे अन्तरतर में हर्ष और विषाद का एक भीषण संघर्ष चल रहा था।

मेरे जीवन की सोई हुई समस्त अतीत कालीन स्मृतियाँ एक साथ जागरित हो उठीं। सम्पूर्ण अतीत मेरे नेत्रों के सामने सजीव हो उठा। मैं नहीं समझी, ये स्मृतियाँ अब क्या चाहती हैं? इनके उभार का क्या अभिप्राय होता है। जो घटनायें अतीत के तिमिराच्छन्न गह्वर में विलीन हो चुकी थीं। वे आज प्रदीप्त क्यों हो रही हैं?

मेरा सम्पूर्ण शरीर, एक मृतक की भांति, शीतल हो उठा। प्रभात के नीले आकाश में मुझे उनकी उज्वल पगड़ी दिखायी देने लगी। दैवी घटनाओं के प्रभाव से मृतात्मा जिस प्रकार सजग होकर सजीव होने के लक्षणों का प्रदर्शन करता है। उसी प्रकार मेरे शरीर के रक्त में सजगता और सजीवता के लक्षणों का प्रादुर्भाव हुआ। उन स्मृतियों में आग थी और उस आग में अतीत की घटनाओं का गम्भीर समावेश था।

मैंने उनकी आकृति में उसी सुगठन के दर्शन किये, जिससे मेरे नेत्र भली भांति परिचित थे। अवस्था ने कपाल की रेखाओं को प्रभावित किया था। परन्तु उनके नेत्रों में वही पहले का आलोक था। उनके अस्त्रों की झनझनाहट फिर मैंने सुनी। उनके पैरों की ध्वनि क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रेमातिशय्य और

निराशा के सबल आक्रमण से मेरे प्राणों के टुकड़े-टुकड़े हो गये, मस्तक पर पड़े हुए परदे को मैंने अपने अपराधी नेत्रों पर खींच लिया। अतीत स्मृतियों ने वर्तमान को आच्छन्न कर लिया। मेरे कानों में एक अद्भुत ध्वनि सुनायी पड़ रही थी। अपने खुले हुए नेत्रों से मैं तारों की उज्वलता देख रही थी। विभिन्न फूलों की सुवास चतुर्दिक फैल रही थी। झरना अपनी पूर्वकालीन गति में चल रहा था।

मैंने उनके पत्र की उन अन्तिम और हृदय-विदारक पंक्तियों को एक बार फिर पढ़ा। मेरे अन्तःकरण में बज्रपात-सा हुआ। मेरे प्राण आकुल-व्याकुल हो उठे। उन कठोर पंक्तियों के एक-एक शब्द के आघात से मेरे हृदय के टुकड़े होने लगे।

मैंने अपने आपको सम्हालने का प्रयत्न किया। रक्त की तीव्र गति में मैंने उद्भ्रान्ति का अनुभव किया। मुझे मालूम हो रहा था, मानों मेरे भीतर नृत्य का आरम्भ हुआ है और वह नृत्य पर्वत-शिखा की ओर प्रभावित हो रहा है। मैं अपने आपको समझने में असमर्थ हो रही थी।

अपनी अवस्था को समझने की मैं पूरी चेष्टा कर रही थी। मुझे मालूम हो रहा था कि मैंने न जाने कितने दिनों से स्रष्टा को भूलकर अपने जीवन का सञ्चालन किया है। मेरी वेदना तीव्र विभ्रान्ति के रस से परिप्लावित होती जा रही है। जिसका मैंने प्यार किया था, उससे मैं घृणा करने लगी थी! मैंने उनके पराक्रम और प्रताप पर विश्वास किया था। सहायता के स्थान पर उनसे मुझे भीषण प्रतारणा मिली!

अपनी सुकुमार वेदना का संस्पर्श करते हुए मैं सामने के बुर्ज की ओर चली गई। सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर, यमुना का जल उत्तप्त हो उठा था। परन्तु नीचे का जल अब भी शीतल

था। गम्भीर जल में उठती हुई जल-तरंगों की ओर देखकर मैंने अपने हाथों को फैलाया ! मेरे मुख से अकस्मात् निकल पड़ा—'आह, कितना अच्छा होता, यदि मैं इन तरंगों में विलीन हो जाती !'

लगभग एक घण्टे का समय व्यतीत करके मैं फतेहपुर-सीकरी की ओर चल पड़ी। इस मार्ग का सम्पर्क छूटे हुए बहुत दिन बीत चुके थे। जिस सवारी पर मै जा रही थी, वह बहुत हलकी थी और तीव्रगामी अश्व उसको खींच रहे थे। यंह सवारी नूरजहाँ के व्यवहार में आती थी। 'हाजीर' नामक एक नौकर और 'कोयल' नाम की क्रीतदासी को छोड़कर मेरा कोई साथी न था।

उस दिन की वायु उत्तप्त हो रही थी। बार-बार भीषण आँधी उठ कर उस उष्ण वायु को तितर-बितर कर देती थी। मैं जिस स्थान को पार करके चल रही थी। उसके निवासी स्त्री-पुरुष और बच्चे मेरी ओर आश्चर्य-चकित होकर देख रहे थे। इसका कारण था। जिस सवारी पर मैं जा रही थी, उस पर राज्य-परिवार की सन्तानें कभी निकला न करती थीं।

मार्ग में मैंने विभिन्न प्रकार की बातें देखीं। गृद्ध-समूह मृतक शरीरों के आस-पास मंडरा रहा था। गोबर के समूह के निकट अनेक कौवै एकत्रित होकर चीत्कार कर रहे थे। जनहीन स्थानों में मयूर स्वतन्त्रता के साथ घूम रहे थे। जलाशय की भूमि के समीप जल-पक्षी, अपने नेत्रों को जल की ओर किये हुए, बैठे थे।

मार्ग के ये समस्त दृश्य मेरे लिए असाधारण और आश्चर्य-जनक थे। मैं ध्यानपूर्वक उनको देखती और अनेक प्रकार की कल्पनायें करने लगती। उठती हुई धूलि से आच्छादित मार्ग में

आग चलने वाली अपनी एक छोटी-सी सेना की तलवारों की चमक देख रही थी। मुझे मालूम हो रहा था, मानो तैमूर की सेना जा रही है, जिसने तुर्की के सुल्तान को रण-भूमि में पराजित किया था।

इसी समय मेरे नेत्रों में एक अद्भुत शक्ति का आभास हुआ। अंगूरी बाग में जिस दृश्य को देखकर मैं आ रही थी, उसका दृढ़ संकल्प बार-बार मेरे अन्तःकरण में उठने लगा—"मैं राजपूत के आत्मा पर विजय प्राप्त करूंगी पूर्ण रूप में—पूर्ण आस्था के साथ! वे सम्मुख आकर झुककर क्षमा के लिए प्रार्थना करेंगे और फिर एक बार सम्राट शाहजहाँ की सहायता करने की घोषणा करेंगे। परन्तु जन-साधारण में एक जनश्रुति मैंने सुनी है, उस वीर राजपूत ने सम्राट के प्रति विश्वासघात करने का निश्चय किया है। क्या वे अपने वचनों का उपहास करेंगे?"

जो कुछ हो, उनके आत्मा पर विजय प्राप्त करने पर ही मुझे शान्ति मिलेगी। अपनी इस विजय के लिए, सम्राट अकबर द्वारा प्रतिष्ठित फतेहपुर सीकरी में मैं प्रार्थना करूंगी। इस तीर्थ स्थान—फतेहपुर सीकरी की यात्रा करने की मेरी अभिलाषा बहुत दिनों से थी। मेरा अटूट विश्वास है कि मेरी प्रार्थना को सुनकर 'प्रतापी पुरुष' का मैं आशीर्वाद प्राप्त करूंगी। वह आशीर्वाद इस विजय में मेरी सहायता करेगा!

पाषाण निर्मित नौबतखाने के प्रांगण में मुझे घोड़े के टापों की आवाज सुनायी पड़ी। इस नौबतखाने में अनेक प्रकार के बाजों के द्वारा सम्राट अकबर का अभिनन्दन हुआ करता था। तेजी के साथ चलकर जुमा मस्जिद के मार्ग में विशाल शिला के नीचे मैं पहुँच गयी। यहाँ का प्रमुख द्वार इतना ऊंचा और

सुन्दर बना हुआ था कि उसकी समता का दूसरा द्वार कहीं न मिलेगा। विजय प्राप्त करने के पश्चात् सम्राट अकबर ने तीन खण्ड के इस विशाल द्वार का निर्माण कराया था।

मैं अपने स्थान पर खड़ी हुई मन के प्रवाह में बह रही थी। सोचती थी कि यदि प्रेम की धारा से फतेहपुर सीकरी के इस स्थल को, जहाँ पर मैं खड़ी हूँ, धो सकती तो मुझे कितना सन्तोष मिलता। उस प्रमुख द्वार को शिला के नीचे के भाग को पार करके मैं आगे बढ़ गयी।

मेरे मनोभावों में अकस्मात् ईसा की स्मृति जाग उठी। मुझे उनकी उन बातों की याद आयी, जिनमें उन्होंने अपनी महानता का परिचय देते हुए कहा था—

"यह विश्व एक सेतु के रूप में है। उसको पार करने का प्रयत्न करो। यहाँ पर भवन और वाटिका के बनाने की आवश्यकता नहीं है। इस संसार में जो निष्पाप जीवन बिताने की चेष्टा करता है और उनमें सफल होता है। वही अन्त में मोक्ष का अधिकारी होता है। इस विश्व की कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है। इसलिए इसके प्रत्येक कार्य को भक्ति के—ईश्वर की आराधना के रूप में देखो। इस आराधना को छोड़ कर—परम पिता परमात्मा के सिवा, इस जगत में सब कुछ मिथ्या है।"

प्रमुख द्वार के ऊपर ईसा की कही हुई ऊपर की पंक्तियाँ अरबी में लिखी हुई हैं। उनको देखकर और पढ़कर मैं अत्यधिक प्रभावित हुई।

यह प्रमुख द्वार घोड़े की टाप की आकृति में बना हुआ है। उनके नीचे से होकर मैंने मस्जिद में प्रवेश किया। एक बार मेरे नेत्रों में इस नगर का चित्र घूम गया। इसे छोड़े हुए न जाने कितने दिन बीत गये थे। परन्तु उसे फिर देखकर ऐसा मालूम

होता है, मानो इसका निर्माण अभी कल किया गया है। मस्जिद में प्रवेश करते ही उसका सुन्दर और विस्तृत प्राङ्गण मेरे नेत्रों के सामने पड़ा। मस्जिद की पवित्रता, अपने प्रत्येक स्थान की निर्मलता का प्रदर्शन कर रही थी।

इस स्थान पर पहुँच कर ऊंचे-ऊंचे स्तम्भों पर मेरी दृष्टि गयी। उनका मनोहर निर्माण बार-बार अपनी ओर मुझे आकर्षित करने लगा। कहीं-कहीं पर ये स्तम्भ मस्जिद की छत के साथ मिल कर एक हो जाते थे। स्तम्भों के मिल जाने से उनका बीच का भाग एक चतुष्कोण का निर्माण करता था। इस प्रकार के दृश्य अतीत स्मृतियों को जागरित करते थे। इन स्तम्भों का भव्य निर्माण और दीने इलाही का आकर्षण मनुष्य के जीवन में नवीन प्रकाश उत्पन्न करता है।

अभी थोड़े दिनों की बात है, जब दीने इलाही पर आस्था वालों का यहाँ पर मेला होता था और उनके साधु विचारों से यह स्थान प्रदीप्त हो उठता था। आज इस पवित्र स्थान पर मैं अकेली दिखायी देती हूँ। इस मस्जिद के एक भाग में विश्व विद्यालय की प्रतिष्ठा हुई थी और इसी नगर की पुण्य भूमि पर सम्राट अकबर ने अपनी उदार नीति का श्री गणेश किया था। उसी के प्रभाव से इस विश्वविद्यालय में इतिहास, गणित, चिकित्सा और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। विद्यालय के सम्पूर्ण आदर्शों को कुरान के उद्देश्यों के द्वारा प्रेरणा मिलती थी। यहीं पर बैठकर विद्वान, विश्व की समस्त उपयोगी पुस्तकों का अनुवाद फारसी भाषा में किया करते थे।

जो स्थान इतना महत्वपूर्ण था, आज वहाँ पर एक भी दीपक जलता हुआ दिखायी नहीं देता। मानव धर्म और ज्ञान की खोज अब यहाँ पर जिज्ञासुओं का आना बन्द हो गया है

और तत्वान्वेषी इस पवित्र स्थान पर एकत्रित होकर आज जीवन की कठिन समस्याओं पर विचार-विनिमय नहीं करते ।

समाधि के निकट उपस्थित होने पर मेरे सामने इस प्रकार के अनेक प्रश्न थे, जिनको सुलझाने में मेरे हृदय की शक्तियाँ संलग्न हो रही थीं। आराधना-स्थान से मैं और आगे बढ़ी । उसके भीतरी भाग का मैंने अवलोकन किया। मैं सहसा सोचने लगी—इस सम्पूर्ण विश्व में क्या और भी कोई ऐसा धर्म-स्थान मिल सकता है, जहाँ पर थोड़े से समय में मनुष्य को, जीवन के सौन्दर्य की प्राप्ति हो और उसकी भूलों का समाधान होता है ? मैंने उस रमणीक स्थल को देखा, जो वहाँ के गुम्बज के नीचे विशाल प्रकोष्ठ के भीतर अपनी उपयोगिता का विच्छुरण कर रहा था। इस मस्जिद में एक भी कोई स्थान ऐसा न था, जो सुन्दर, सूक्ष्म और अद्भुत शिल्प कला का आश्चर्यजनक परिचय न देता हो। प्रत्येक दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त मोहक और सन्तोष प्रद प्रतीत हो रहा था ।

उच्च कोटि की शिल्पकला के द्वारा इस मस्जिद का निर्माण हुआ है। उसका प्रत्येक स्थल, एक दूसरे से भिन्न है। प्रत्येक स्थान की सुन्दरता और उपयोगिता अलग-अलग है । जिस सुन्दरता और कला का उसके निर्माण में प्रदर्शन किया गया है, वह अपनी विचित्रता का अलग-अलग परिचय देता है। सभी के रंग-रूप, एक दूसरे से भिन्न हैं । प्रार्थना-वेदी की विशिष्टता और श्रेष्ठता सभी से अनोखी और अपूर्व है । उसके सामने आज भी दीपक अपना आलोक देता है। नतमस्तक होकर, मैंने प्रार्थना करने की बात सोची ही थी कि उसी समय हर्षोल्लास की एक तरंग ने उसको क्षत-विक्षत कर डाला।

मैं दिलखुश महल की बात सोचने लगी। इस महल में मृत्यु

हो जाने के पश्चात् भी तैमूर के अमर जीवन का आभास मिलता है। सम्राट बाबर ने अपनी अत्म-कथा में उस महल की बहुत-सी बातों का उल्लेख किया है। हमारे पूर्वजों ने इरान में जीवन की अनेक बातों की कल्पनायें की थीं। उस आत्म-कथा को पढ़ने से कितनी ही प्राचीन स्मृतियों का आभास होता है। अरबी भाषा में लिखी हुई उसकी अनेक कथाओं से जीवन का एक नवीन स्रोत उमड़ने लगता है।

इस स्थान पर मेरे आने की बात सर्वसाधारण में फैल चुकी थी। समाधि के सामने लोगों को आने के लिए रोक दिया गया था, फिर भी बहुत-से दीन-दरिद्र और भिक्षुक वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये। उन आने वालों में सुदर्शन नाम का एक युवक भी था। उसके नेत्रों में यौवन का आलोक था। उच्च स्वर में वह बोल उठा—'अल्लाहो अकबर', कानों में इस आवाज के पड़ते ही मेरा सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा। मेरे कानों में 'अल्लाहो अकबर' की प्रतिध्वनि होने लगी। इस आवाज में तैमूर वंश का अपूर्व गौरव छिपा हुआ था। उसकी महानता का मुझे एक बार स्मरण हुआ।

समाधि को पार करके मैं एक प्रकोष्ठ में पहुँच गयी। मुझे प्राचीन भारतीयता की याद आने लगी। हिन्दू आदर्शों के अनुयायी और समर्थक, सम्राट अकबर के स्तम्भों का मैंने अवलोकन किया। आराधना-स्थल के सामने, पार्श्व में लगे हुए कमल की कलियाँ मूक भाषा में भगवान गौतम के उपदेश दे रही थी। उन्होंने जिस वृक्ष के नीचे बैठकर जीवन के जिस सत्य को स्वीकार किया था, उसी सत्य को तैमूर के नेत्रों ने भी अवलोकन किया था। तैमूर बेग ने अपने बाल्य काल में किसी भी प्राणी को आघात नहीं पहुँचाया था। यहाँ तक कि मार्ग में

किसी चींटी को भी पैरों के नीचे दबने से उन्होंने बचाने का प्रयत्न किया था।

एक दिन सम्राट अकबर शिकार के लिए बाहर निकले। उन्होंने भीषण बन में प्रवेश किया। उनके अन्तःकरण में शिकार की तीव्र उन्मादता थी। ऐसा जान पड़ता था मानों सैकड़ों जानवरों की मृत्यु होने में अब देर नहीं है। अकस्मात् सम्राट ने अपने घोड़े को रोका। उनके हृदय में ज्ञान का संचार हुआ' उनके मुख से निकला। "मेरे राज्य में किसी जीव की हत्या न होगी। प्रत्येक प्राणी का जीवन पवित्र होता है!"

वही दिन था, जब सम्राट अकबर के हृदय में एक महान आलोक उद्भासित हुआ था और उसने प्रतापी अकबर को महान अकबर के रूप में परिणत किया था।

आराधना-स्थल के निकट संगमरमर के प्रस्तर पर मैं जाकर बैठ गयी। यह स्थल अत्यन्त गम्भीर और छाया-सम्पन्न था। मध्यकालीन सूर्य की तीव्र धूप के कारण मैं पसीने से नहाई हुई थी। मेरा सम्पूर्ण मस्तक चञ्चल हो रहा था। अपनी श्रान्त अवस्था में मस्तक को विश्राम देने के अभिप्राय से मैंने एक दीवार का सहारा लिया।

जिस प्रकार ज्वार के पश्चात् भाटा आता है, उसी प्रकार मेरे शरीर में थकावट का आविर्भाव हुआ। ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई इस स्थान को पार करके चला गया हो। निद्रा और जागरण के समावेश में मैं चिर-शान्ति को अनुभव कर रही थी। इसी अवस्था में मुझे एक उच्च पर्वत का शिखर दिखायी पड़ा। मेरे नेत्रों में जो वस्तु दिखायी पड़ रही; थी वह धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी और मैं उसे एक ओर झुकते हुए देखने लगी।

इसी समय मुझे पर्वत में एक गुफा दिखाई पड़ी। उसके निकट खिड़की के रूप में एक मार्ग प्रदर्शित हुआ। एक जलाशय सा मालूम हुआ। उसके किनारे प्रस्तर पर रेखांकित एक हाथी दिखायी देने लगा। उसके ऊपर प्रस्तर-मूर्ति एक मनुष्य मालूम हुआ। पाषाण की उस मूर्ति में अद्भुत कला का प्रदर्शन किया गया था। दूर से देखने में वह मूर्त्ति सजीव जान पड़ती थी। वह मूर्त्ति अद्भुत और स्थिर थी। अपने उन्मुक्त नेत्रों से मैं उसकी गम्भीरता का अवलोकन कर रही थी। सहसा मेरे अन्तः-करण में भय का प्रवेश हुआ।

उस मूर्त्ति की ओर मैं स्थिर नेत्रों से देख रही थी। उसमें आग की लपट उठती हुई मुझे दिखायी देने लगी। उन लपटों का प्रतिबिम्ब जलाशय में पड़ने लगा और वह धीरे-धीरे शुभ्र ज्योति के रूप में प्रकट होने लगा। ऐसा मालूम होने लगा, मानो जल के निम्न भाग में सुनहली गोलाकृति अंकित होती जा रही है। उसी समय मुझे सुनायी पड़ा—

दूरवर्ती अरण्य में ध्यान-मग्न वह एक तपस्वी है। उसके नेत्रों का अज्ञान-अन्धकार दूर हो गया है। उसने अनुभव किया है—"मनुष्य जो कुछ भोग करता है और उस भोग के लिए जो युद्ध करता है और जिसके लिए जीवन का क्षय करता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता। सम्राट-कुमारी, उस पुण्यात्मा ने स्रष्टा की अपूर्व ज्योति के दर्शन किये हैं। उसने अपनी अभि-लाषाओं को मिटा दिया है। उसकी समस्त कामनायें मिलकर एक ही रूप-रेखा में रह गयी हैं। विश्व की विचित्रता और विभिन्नता को उसने एक ही आकार में देखा है। इस विशेषता ने उस पुण्यात्मा के हृदय में एक आलोक उत्पन्न किया है। उस आलोक के प्रादुर्भाव से तपस्वी ने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों

पर विजय प्राप्त करके आत्मा को विशाल रूप दिया है। वह तपस्वी ही वास्तव में इस देश का सम्राट है !"

मैं आश्चर्य चकित हो उठी। मुझे मालूम हुआ, मानो किसी ने अपने हाथ से मेरे कंधे का स्पर्श किया। मैंने सोचा, मेरा आत्मा-सूक्ष्म शरीर सिंहल की यात्रा करके लौटा है। किसी समय मैं जल-मार्ग द्वारा सूरज से सिंहल गयी थी और अनुराधापुर में उस ऋषि के संगमरमर निर्मित प्रासाद का अवलोकन किया था। जो दिव्य वाणी उस समय मेरे कानों तक पहुँची थी, उसे मैंने भली प्रकार सुना था। वह वाणी आयी थी, मेरे दिल्ली के ग्रीष्म निवास से।

यह मेरा जागृत स्वप्न था, जिसकी तन्मयता में मैं चेतना-शक्ति से वञ्चित हो रही थी। जिस स्थान पर मैं बैठी थी, मुझे अपना शरीर जकड़ा हुआ मालूम हो रहा था। इसके साथ-साथ मैं अनुभव करती थी, विभिन्न वनस्पतियों से निकली हुई मधुर सुगन्ध और आराधना-मन्दिर के प्रवेश-द्वार के सामने विशुद्ध धातु-निर्मित पात्र में उठने वाला काला धुआँ! उसके अन्तरतर में दिखायी पड़ा। मनुष्य की आकृति में एक जीव! मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मेरा विस्मय बढ़ता जा रहा था। वहीं पर मुझे राज-प्रहरी के रूप में शीर्ण काय एक मनुष्य दिखाई पड़ा। ऐसा मालूम होता था, मानो सुवर्ण पात्र में आरती लेकर वह अकबर के प्रार्थना भवन को सुगन्ध युक्त कर रहा है। इसके साथ-साथ वह मुझसे बातें करके तृप्त होने की अभिलाषा रखता है। उसके नेत्रों के साथ मेरे नेत्रों का सम्मेलन हुआ। उसी समय उसके नेत्रों में एक करुण व्यथा की मुझे तीव्र अनुभूति हुई। मैं सोचने लगी, 'क्या यह व्यथा, उसके अन्तरतर के विषाद का परिवर्तित

रूप है ?' मैंने अपने हाथ का बहुमूल्य कंकण उसको समर्पण किया। प्रार्थना-भवन से बाहर आकर मेरे अन्तःकरण को उसी प्रकार प्रसन्नता हुई, जिस प्रकार मेघावृत आकाश में सूर्य आमोदित होता है !

भविष्य के सुखों की कल्पना के साथ अपने मार्ग पर मैंने चलना आरम्भ किया—युद्ध में विजयी होने के पश्चात् इसी फतेहपुर सीकरी में अपने राखी बन्द भाई के साथ रह कर मैं जीवन व्यतीत करूँगी ! इस स्थान पर एक ईश्वरवाद की भावना फिर जागरित होगी ! सम्राट अकबर की श्रेष्ठ धार्मिकता का फिर से प्रचार होगा। विश्व के समस्त जीवों पर अल्लाह की—एक ईश्वर की फिर से दया वृष्टि होगी !

मैं लौट कर गुम्बज के विशाल प्रकोष्ठ में फिर आ गयी। मैंने केवल तिमिराच्छन्न अतीत का ही स्मरण नहीं किया, वरन गम्भीर अन्धकार में अपने उज्वल भविष्य का आभास भी मेरे नेत्रों को हुआ।

अभी तक मैं प्रार्थना करने में असफल रही। अतएव मैंने निश्चय किया कि दोपहर की नमाज की प्रतीक्षा करूँगी। इस अवस्था में मुझे आगामी दिन से सूर्योदय तक विश्राम करना पड़ेगा। मैं इस छोटे से प्रासाद में रात व्यतीत करूँगी। उस प्रासाद में जो राज-परिवार के लिए निर्माण किया गया है। विशाल द्वार पर सवारी मेरे लिए रास्ता देख रही थी। मैं नगर के प्राचीन भाग की ओर चली आयी थी। मेरे नेत्रों में प्राचीनता, नवीनता में परिवर्तित हो रही थी।

यहाँ पर पहुँच कर मैंने दरबार के प्रांगण को पार किया। किसी समय फतेहपुर सीकरी भारतवर्ष में सर्वोपरि थी और यह क्षुद्र प्रासाद फतेहपुर सीकरी का जीवन था। यही स्थान

था, जहाँ पर महान आत्मा अकबर, अपने ब्राह्मण मित्र बीरबल के साथ निवास करते थे। इस प्रासाद को देखकर मेरे हृदय में हुमायूं बादशाह के शिबिर की स्मृति चैतन्य हो उठी। उस शिविर की स्मृति, जहाँ पर महाप्राण अकबर ने जन्म लिया था। उस शिविर में कोई राज्य की सम्पति न थी। केवल एक पात्र कस्तूरी से भरा हुआ रखा था। अकबर के जन्म लेने पर सम्राट हुमायूं ने उस पात्र की सम्पूर्ण कस्तूरी बाँट दी और कहा—

"जिस प्रकार इस शिविर में आज कस्तूरी की सुगन्ध फैल रही है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष में मेरे इस पुत्र की ख़्याति का विस्तार हो!"

सम्राट अकबर की समाधि एक प्रासाद के रूप में थी। उस प्रासाद में जितना ही सांसारिक वैभव और ऐश्वर्य था, अकबर का राज-प्रासाद उतना ही वैभव हीन था। उसमें किसी प्रकार का कोई आडम्बर न था। राज पासाद के मध्य भाग में सम्राट के सोने का कमरा था। वह कमरा, प्रासाद के अन्तरगत एक अद्भुत भावना का परिचायक था। उस शयनागार को—आडम्बरहीन प्रासाद के उस मध्य भाग को स्वप्नपुरी के नाम से सम्बोधन किया जाता था।

दैव-कृपा से नेत्रों के सामने प्रकाश का उदय हुआ। प्रकृति के विभिन्न चमत्कार आँखों के सम्मुख आये। इस समय झरने का श्रोत-स्वर—कलरव सुनायी न पड़ता था। परन्तु तुर्की बेगम का प्रासाद इस समय भी जल के ऊपरी भाग पर प्रतिबिम्बित हो रहा था। उस अप्सरा-प्रासाद के प्रत्येक श्वेत प्रस्तर पर हाथी के दाँत के समान चित्रकारी की गयी थी। रमणीक स्तम्भों और दीवारों के मध्य भाग में उन फलों को चित्रित किया गया

था, जो सम्राट को अत्यन्त प्रिय थे, जैसे अंगूर, अनार, बेदाना और तरबूज आदि।

मैं इस समय जिस स्थान पर उपस्थित थी, वह स्थान था, सरोबर के मध्य भाग में संगमरमर-द्वारा निर्मित रमणीक स्थल। इस जलाशय के मस्तक पदार्थ आज, अन्य आवश्यक और प्रिय पदार्थों की अपेक्षा भी आवश्यक एवम् अधिक प्रिय जान पड़ते थे। अभीष्ट स्थल की ओर मैं अग्रसर हुई। एक विस्तृत मार्ग-स्थल अतिक्रम करके उस स्वप्नपुरी के मार्ग में मैं उपथिस्त हुई, जिसकी प्रियता अपनी ओर मुझे आकर्षित कर रही थी।

वह प्रासाद एक अद्भुत आत्मीयता का परिचय दे रहा था। मैं उस पथ पर उत्सुकता पूर्वक आगे बढ़ने लगी। जाने क्यों, मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मेरी समस्त आशायें वहाँ पर केन्द्रीभूत हो रही हैं। मैं सोच रही थी, वह पवित्र आत्मा कौन है जो महान आत्माओं में भी, महान है। किन्तु दरिद्रों के प्रति करुणामय है—जिसके हाथ की कलाई में बहुमूल्य कंकण है!

यह स्थान यद्यपि अधिक विस्तृत न था, फिर भी उसके सम्पूर्ण भाग में विभिन्न चमत्कारों का सामञ्जस्य था। यह सामञ्जस्य और सम्मेलन अद्भुत और अपूर्व था। विभिन्न वाद्यस्वरों के सम्मिलित रूप में वहाँ की विभिन्न आभायें आलोक पूर्ण हो रही थीं। अपने बचपन में मैंने यहाँ पर आठ प्रकार के चित्रों को देखा था। वे आज भी मुझे उसी प्रकार याद हैं। उत में एक रक्ताभ वस्त्र पहने हुए एक भीमकाय पुरुष था। उसकी एक उंगली, उसके अधर भाग पर थी।

उस पुरुष के सन्निकट एक स्त्री थी, जो अपनी एक उंगली उठा कर न जाने क्या निर्देश कर रही थी। एक अन्य पुरुष अपने पीछे तरुणी परित्याग पूर्वक चल रहा था। एक शिशु

अत्यन्त तन्मयता के साथ पैतृक सम्पत्ति का अनुसन्धान कर रहा था। राजप्रासाद के प्रमुख द्वार के ऊपर स्वर्णांकित फारसी भाषा में पद्य-पंक्तियों का वह अर्थ लगाने की चेष्टा कर रहा था।

समस्त चित्र विस्मयोत्पादक थे। महात्मा बुद्ध का एक चित्रित चित्र चीन के विख्यात शिल्प का स्मरण दिला रहा था। बुद्ध की वह मूर्ति नीलाभ मन्दिर में स्थापित थी। उसका सम्पूर्ण अंक रक्ताभ वस्त्रों से सुसज्जित था। मस्तक पर एक छोटा-सा मुकुट था। उसके चतुर्दिक नरमुण्ड बिखरे थे और इधर-उधर मनुष्यों के अंग-प्रत्यंग टुकड़ों के रूप में पड़े थे। उन टुकड़ों में कोई पीला था; कोई काला था, कोई श्वेत था और कोई लाल वर्ण का था। एक नर-मुण्ड अभी तक मुकुट के साथ था। मुकुट परिहित मरमुण्ड सम्राट अकबर के मस्तक का बोध करा रहा था। उस प्रतिमूर्ति के चारों ओर पराजित शत्रु दिखाई दे रहे थे। वे सभी परलोकवासी यात्रियों के रूप में थे। उस दृश्य को देख कर इस प्रकार की धारणा उत्पन्न होती थी।

और भी कुछ चित्र थे। उनकी चित्रकारी में अद्भुत चित्र-कला का प्रदर्शन किया गया था। एक प्रस्तर खण्ड पर देवदूत का चित्र था और उसके निकटवर्त्ती प्रस्तर पर दो चित्र मयूरों के थे। देवदूत के मुकुट पर बहुमूल्य मुक्ता और जवाहर थे। दोनों नेत्रों की पलकें उसकी खुली थीं। उसका सम्पूर्ण शरीर अद्भुत और अनोखा था। उसके दोनों हाथों में एक छोटा-सा बच्चा था। एकाएक मैंने सोच डाला—यह नवीन शिशु क्या शाहजादा सलीम है? सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से उसका जन्म था। उसके जन्म के पहले राजकुमार इसी पवित्र गुफा के भीतर निवास करते थे। इस प्रकार का मेरा विश्वास आज भी है।

मेरे मनोभावों में अनेक प्रकार की चिन्तनायें उत्पन्न होने लगीं। मैं सोचने लगी—"मेरे पितामह जहाँगीर ने यदि जन्म न लिया होता तो क्या सम्राट अकबर का साम्राज्य नष्ट न होता?"

मेरे मन में चिन्तनाओं का एक स्रोत प्रवाहित हो उठा। इस विशाल भवन में चिर निद्रा में सोये हुये महा प्राण अकबर के वंश में जन्म लेने का क्या अभिप्राय होता है। इसे मैं समझ सकी।

अचानक मेरे कानों में एक मधुर संगीत का स्वर सुनायी पड़ा। मैं सोचने लगी—'यह स्वर कहाँ से आ रहा है? स्वर्ग-लोक से सम्राट अकबर के गायकों का यह स्वर क्या प्रवाहित हुआ है? यदि स्वर्गलोक के इस संगीत को सुनने की मुझमें शक्ति होती!' अपने दोनों करों से मैंने अपना मुख आवृत कर लिया। उसी समय दिव्य नेत्रों से दिखायी पड़ा, मानो मैंने उसी युग में फिर प्रत्यावर्तन किया है, जिसमें प्रभात और संध्या कालीन संगीत का मधुर समागम होता था। उस समय सैकड़ों और सहस्रों वाद्य-यन्त्र के स्वर में अपनी ध्वनि का सम्मिश्रण करके एक अद्भुत माधुर्य का सृजन करते थे।

प्रभात के प्रथम भाग में संगीत की कोमलता रहती। दूसरे भाग में अनेक वाद्य-यन्त्रों के स्वरों में बहु संगीतों की ध्वनि मिलने से संगीत के अपूर्व माधुर्य की सृष्टि होती। सन्ध्या-समागत जब सम्राट अकबर पर भगवान की करुणा होती, उस समय संगीत की प्रत्येक लय मन्त्र-मुग्ध हो उठती। जिस प्रकार संध्या-कालीन शीतल वायु प्रत्येक प्राणी में जीवन का सञ्चार करती है, उसी प्रकार संध्याकालीन संगीत मानव आत्मा में प्रेरणा का प्रादुर्भाव करता है।

अपने स्थान से हटकर मैं बाहर चली आयी। उस समय संगीत समाप्त हो चुका था। जलाशय के निकट कुछ लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके हाथों में वंशियाँ थीं। ऊँचे स्वर में उनकी पारस्परिक आलोचना चल रही थी। उनके मस्तकों पर विभिन्न रंगों की पगड़ियाँ थीं और वे सब मिल कर एक अद्भुत चमत्कार की सृष्टि करती थीं।

प्रतीक्षा करने वालों में एक जन मुझे पहचानता था। उसके नेत्रों में प्रकाश था और वह था शीर्णकाय व्यक्ति। अपने साथ के लोगों से हटकर, वह दूर हो गया। उसने अपनी वीणा की झंकार के साथ गाना आरम्भ किया। उस व्यक्ति के संगीत में तानसेन की मधुर लय थी। उसने अपने सुरीले स्वर में मेवाड़ की धर्म परायण रानी मीराबाई की आत्म-प्रेरणा का संगीत आरम्भ किया।

अपने जीवन के आरम्भ के मीराबाई ने श्री कृष्ण से प्रेम किया था। मीरा का वह प्रेम जीवन की अन्तिम साँसों तक साथ रहा। उन्होंने अपने जीवन सर्वस्व कृष्ण को उत्सर्ग किया था। मीरा का मस्तक किसी अन्य मनुष्य के सामने अवनत नहीं हुआ था।

मीरा का वह संगीत मुझे श्रीकृष्ण के वृन्दावन की ओर ले गया। उस वृन्दावन की ओर, जहाँ सुन्दरी गोपिकाओं को प्रसन्न करने के लिए, सौन्दर्य के उपासक और स्नेह के आराधक श्रीकृष्ण अपनी वीणा के मधुर और प्रिय स्वरों पर नृत्य किया करते थे। उस स्थल पर अपने आराध्य देवता की मूर्ति के सामने रहस्यमय नृत्य देखते हुए रूपवती मीरा को मैंने देखा। मैंने देखा, कृष्ण की विलासिता और मीरा की उत्सर्गिता! जीवन के दोनों चमत्कारों ने मेरे प्राणों में प्रेरणा का प्रादुर्भाव किया।

मीरा के समस्त संगीतों में देवता के प्रति आत्मा की गम्भीर अभ्यर्थना है। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार, कृष्ण भगवान के मानव रूपधारी अवतार हैं। पृथ्वी के अपराधों का भार कम करने के लिए उन्होंने मनुष्य-देह धारण की थी। उनका आलोक विश्व के प्रत्येक आत्मा को आलोकित करता है। जिनकी इतनी बड़ी महानता है, उन्हीं श्रीकृष्ण का कहना है—

जो मेरी आराधना करता है, उसका कभी विनाश नहीं होता।

किन्तु जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में शीर्ण काय वह मनुष्य कौन है? उसके संगीत के स्वर में कितना गम्भीर माधुर्य है! इस विषाद-पूर्ण नगरी में आकर, मेरे मार्ग पर पदार्पण करके स्वप्न-संलग्न मेरे आत्मा को अपने मधुर संगीत की लय के द्वारा जो मुझे सचेत और सावधान करने का काम करता है, वह मानवात्मा कौन है? मैं चिन्ताकुल होकर सोचने लगी—मेरे साथ क्या उसकी आत्मीयता है? उसके संगीत के प्रत्येक स्वर में मेरे उच्छ्वासों की पीड़ा क्यों है?

उस मनुष्य ने अपनी वीणा पर मीरा का एक भजन आरम्भ किया था। उसका स्वर धीरे-धीरे गम्भीर होता गया। उस भजन में मीरा के प्राणों की प्रेरणा थी—निर्धारित विचारों की एक अमिट घोषणा थी। उसकी प्रत्येक पंक्ति, उसकी प्रत्येक लय और उसका प्रत्येक स्वर सुनकर मेरा अन्तरतर आन्दोलित हो उठा :—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई।

मीरा ने राज्य और राजकीय ऐश्वर्य त्याग कर एक मन्दिर का आश्रय लिया था—आमरण आश्रमवासिनी मीरा सम्पूर्ण

जीवन अपने आराध्य की आश्रय-प्राथिनी होकर रहीं। उनका मन्दिर, उनका आश्रम और उनके जीवन की प्रत्येक सामग्री मेरे मनश्चक्षुओं के सम्मुख मूर्तिमान हो रही थी। मीरा के प्राणों का स्नेह—अन्तरात्मा का पवित्र उत्सर्ग और सांसारिक ऐश्वर्य का अपूर्व विराग, मीरा के जीवन को अमर बनाने का काम कर सका।

मेरे शरीर के रक्त में आग की चिनगारियाँ उठने लगीं। यदि सम्पूर्ण भारत अन्धकार से समाच्छन्न हो उठे—यदि युद्ध में दारा पराजित हों और मेरे प्रियतम की उस युद्ध में मृत्यु हो तो भी मैं उनकी स्मृति की पूजा करूँगी! वे मेरे जीवन के आराध्य हैं और मैंने कृष्ण के रूप में उनको देखा है!!

राज-प्रासाद में एक खेल-घर था। उस घर में सम्राट अकबर अपनी बेगमों के साथ विभिन्न प्रकार के खेल खेला करते थे। मैं उस प्रांगण को अतिक्रम करके दीवाने खास में आकर उपस्थित हुई। यहाँ पर सम्राट अकबर संगमरमर के एक खण्ड पर बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। यह खेल सम्राट को अपने जीवन में अत्यन्त प्रिय था। श्रद्धापूर्वक मैं उस मूर्ति के सम्मुख खड़ी हुई और सोचने लगी—

अतीतकाल में इस स्थान पर कितना ऐश्वर्य रहा होगा!

दीवाने-खास में सम्बन्धित खिड़कियों की एक लम्बी श्रेणी थी। इन खिड़कियों के मार्ग में दृष्टिपात करने से दो खण्डीय प्रासाद दिखायी देता। परन्तु उसके भीतरी भाग में प्रवेश करने से जान पड़ता, जैसे वह एक ही विशाल प्राङ्गण के रूप में है। मैंने वहीं पर कुछ समय तक विश्राम किया।

वह स्थान अत्यन्त शीतल था। उस विश्राम कालीन समय में भी उस संगीत की ध्वनि मेरे कानों में सुनायी पड़ रही थी।

मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकत्रित करके मानो भारतवर्ष के उस पवित्र मन्दिर की रक्षा करने का प्रयास किया था। इसलिए कि राक्षस ने उस मन्दिर पर अधिकार करने के लिए प्रयत्न किया था।

उस स्थल के मध्य भाग में एक स्तम्भ था। वह स्तम्भ अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। उसको निरन्तर देखकर किसी प्रकाण्ड पुष्प मृणाल का अनुमान होता था। उस स्तम्भ के निकट—प्रकोष्ठ के मध्य भाग में सम्राट अकबर का राजसिंहासन बना हुआ था।

मेरे अन्तरात्मा में कल्पना स्रोत उत्पन्न हुआ। मुझे वह स्तम्भ विराट विश्व-वृक्ष के रूप में दिखाई देने लगा। मुझे जान पड़ने लगा, मानो यह शून्य आकाश उस विराट वृक्ष के अनन्त पत्रों के रूप में है और उसके फल सूर्य, चन्द्रमा और विस्तृत तारे हैं। इस प्रकार वह विराट वृक्ष अपने विभिन्न रूप में मुझे दिखाई देने लगा।

भारतवर्ष के भ्रमपूर्ण अन्धकार को सम्राट अकबर ने दूर किया था और उन्हीं से तैमूर के राज-वंश को ख्याति प्राप्त हुई थी। सम्राट अकबर, भारतवर्ष के विख्यात सम्राट थे।

इसके पश्चात् मेरी दृष्टि श्रेणी बद्ध आसनों पर पड़ी। मेरी आँखों में दिखाई पड़े, राजसिंहासन के पास में बैठे हुए, अम्बर-राज के अधिपति बिहारीमल। उन्हीं की लड़की योद्धा बाई के साथ सम्राट अकबर का विवाह-संस्कार हुआ था। वही तो जहाँगीर की जननी थीं। उनके सिवा और भी एक जन मुझे वहाँ दिखाई पड़े। जो दिखाई पड़े, वे थे वीर सेनानी राजा मानसिंह—जिन्होंने तैमूर-वंश की शक्ति को अटूट बनाने के लिए मुस्लिम साम्राज्य की ओर से कितने की युद्ध पराजित किए थे।

मेरी आँखें एक बार फिर स्तम्भ-स्थल की ओर गयीं। उस स्तम्भ को केन्द्र के रूप में रख कर, उस स्थल को चौकोर तैयार किया गया था। यह निर्माण-कार्य अत्यधिक मनमोहक था। मेरे नेत्रों ने और भी कुछ देखा। सम्राट के सिंहासन के चतुर्दिक उनके प्रिय अमात्य जन दिखाई पड़े। सब से पहले मैंने राजा टोडरमल को देखा—वे अत्यन्त साहसी, बहादुर और कोषाध्यक्ष थे। उनके द्वारा दीन-दरिद्र प्रजा को अनेक सुविधायें प्राप्त होती थी।

इसके पश्चात् मैंने देखा, सम्राट के प्रिय सखा राजा बीरबल को। उनके गम्भीर परिहास की स्मृति आज भी एक एक बार हँसने के लिए वाध्य करती है। सम्राट के प्रधान मन्त्री अबुल-फजल की ओर मेरी आँखें दौड़ गईं। दीने-इलाही की ख्याति में उनकी स्मृनि भुलाई नहीं जा सकती। उस स्थल के दूरस्थ भाग से असन्तोष की उठती हुई एक गन्ध का भी मुझे आभास हो रहा था।

अपने कल्पना के नेत्रों से मैं देखती थी, अतीत काल के रूप में न्यायासन पर बैठे हुए सम्राट अकबर को। मैं देखती थी, उनके वेश की विनम्रता प्रतिभा की उच्चता। उनके नेत्रों में कितनी बड़ी दृढ़ता का प्रस्फुरण था! जिसके सामने अत्याचारी और आततायी की शक्ति क्षीण होती थीं। किन्तु पीड़ित आश्रय लाभ करते थे। उनके मुख पर उच्चादर्शों का आलोक था। यही कारण था कि इस विदेशी राज-परिवार का राज्य दीर्घकाल से पूर्व में ढाका से लेकर पश्चिम में काबुल तक और उत्तर में काश्मीर से लेकर, दक्षिण में अहमद नगर तक फैला हुआ था।

इस विस्तृत राज्य की प्रजा के कल्याण के लिए सम्राट सदा जागरूक रहते थे। ग्रामवासियों की सुख-सुविधाओं का उत्तर-

दायित्व ग्राम के अधिनायकों पर था। जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में रक्त-सञ्चालन का कार्य, शरीर की समस्त नसों को करना पड़ता है; उसी प्रकार सम्राट के सचिव प्रजा में सुख-सुविधाओं का सञ्चार करने के लिए उत्तरदायी थे। सम्राट की इस शासन-व्यवस्था के कारण, सम्पूर्ण राज्य में कोई कहीं दुखी न था। प्रत्येक मनुष्य उस अल्लाह का भय मानता था। अधिकारियों को कानूनों का नहीं, ईश्वर की सत्ता का भय था।

सूर्य की किरणें जिस प्रकार वृक्ष के प्रत्येक पत्ते की शिराओं में प्राणों का सञ्चार करती हैं, सम्राट अकबर भी उसी प्रकार प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सुख का सञ्चार करने के लिए प्रयत्नशील रहा करते थे। यही कारण था कि इस विस्तृत राज्य में प्रत्येक जन सम्राट के कल्याण के लिए जगत-सृष्टा के निकट प्रार्थना करता था। प्रजा पर किसी प्रकार के शुल्क का भार न था। फिर भी सम्राट के राजकोष में अतुल सम्पत्ति थी।

अल्लाह के पुजारी सम्राट अकबर का विश्वास था—सृष्टि के प्रत्येक तार में सृष्टा के रहस्य का सामञ्जस्य है! इसीलिए सम्राट ने घोषणा की थी—"सृष्टि के अधिनायक को उसकी रचना के प्रत्येक अङ्ग में देखो।"

सम्राट के प्रत्येक आचरण में उनकी घोषणा चरितार्थ होती थी। मन्दिरों और मस्जिदों की अपेक्षा सम्राट की श्रद्धा लोक-सेवा पर अधिक थी। इस धारणा के आधार पर देवताओं के घरों और तीर्थ-यात्राओं का कितना महत्त्व रह जाता है! देवाराधना की अपेक्षा, आत्म-शुद्धि के लिए लोक-सेवा ही सर्वोत्तम साधना है।

अतीत कालीन उस दूरवर्ती ऐश्वर्य के भीतर मेरे नेत्र किस उज्वल प्रकाश को देख रहे थे? मेरे नेत्र देख रहे थे, दिल्ली के

उस मयूर-सिंहासन को जो प्रत्येक क्षण अपने संरक्षकों के द्वारा सुरक्षित रहता था। मेरी कल्पना, मेरे और भी निकट आ चुकी थी। दिल्ली के मयूर-सिंहासनासीन अपने पिता सम्राट शाहजहाँ को मेरे नेत्र देख रहे थे।

विस्तृत मण्डप के नीचे अपूर्व उज्वल आभा विकीर्ण करने वाले द्वादश स्तम्भों को मेरे नेत्रों ने मूर्तिमान देखा। यह उज्वल आभा सम्राट के सिंहासन की सुन्दरता थी! इसी समय मैंने एक पिंजड़े में सम्राट को बन्दी रूप में देखा। वह पिंजड़ा—कारागार उससे कम भयानक न था, जिसमें तैमूर ने बायाजिद को बन्दी बनाकर रखा था।

इतना सब होते हुए भी फतेहपुर-सीकरी कल्प-वृक्ष के समान थी।

अकस्मात् मेरा ध्यान भङ्ग हुआ। कल्पनाओं का आवरण नेत्रों के सामने से हटते ही मुझे अनुभव हुआ, मानो उस स्थान से आगरा बहुत दूरी पर है। अतीत कालीन सम्पूर्ण स्मृतियाँ, वर्तमान दृश्यों के रूप में परिणित हो उठीं। भविष्य कुछ अन्तर पर आता हुआ दिखायी देने लगा।

एकाएक नौबतखाने में तानसेन का मधुर स्वर सुनायी पड़ी। ऐसा मालूम हुआ। जैसे वह स्वर दारा शिकोह का अभिनन्दन कर रहा हो। फतेहपुर-सीकरी में दारा शिकोह ने अपना पहला दरबार करने के लिए निश्चय किया था।

महले-खास के महिला-विद्यालय के बीच से होकर मैं राज-पथ पर पहुँच गयी। उस विस्तृत पथ पर पहुँचते ही मैंने चतुर्दिक देखा। अनेक पथ राज-प्रासाद तक जाकर समाप्त होते थे। उन सभी मार्गों का अपना-अपना रूप था। प्रत्येक पथ एक, दूसरे से कितनी ही बातों में भिन्नता रखता था। बन पथों के प्रतिकूल

दिशा में पञ्च महल नामक प्रासाद था। यह प्रासाद सुमधुर काव्य के रूप में मोहक और आकर्षक मालूम हो रहा था। प्रासाद पाँच खण्डों में विभाजित था। उसका प्रत्येक खण्ड बहुमूल्य प्रस्तरों-द्वारा निर्माण किया गया था।

उस प्रासाद के प्रत्येक पाषाण-खण्ड पर सुललित चित्रकारी की गयी थी। सब से नीचे के खण्ड में स्तम्भों की संख्या कम थी। नीचे के खण्ड में चार स्तम्भों पर एक मनोहर मण्डप था।

मन की उद्भ्रान्त अवस्था में मैंने प्रासाद में प्रवेश किया। सब से पहले मेरे नेत्रों ने दीने-इलाही के शिष्यों को देखा। इनमें से कितनों ही को मैंने दीवाने-खास में पहले देखा था। मैंने अनुभव किया, मानो उन शिष्यों में कोई गम्भीर आलोचना हो रही है। जहाँ पर मैं खड़ी थी, वहाँ—स्तम्भ के पास में सुन्दर कमल ने पुष्पों के चित्र बने थे। वहाँ का दृश्य अत्यन्त सुहावना मालूम हो रहा था। सम्राट अकबर ने महात्मा बुद्ध की भाँति संसार को त्याग करने की शिक्षा न दी थी। दीने-इलाही के शिष्यों को सब से पहले धार्मिक निर्देश किया गया था कि वे विश्व की सम्पूर्ण सम्पदा सम्राट को समर्पण करने के लिए सदा तैयार रहें।

मैंने प्रासाद के दूसरे खण्ड में प्रवेश किया। उस स्थल के दृश्य की ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। इस खण्ड में दीने-इलाही के शिष्य विश्व-सम्राट के लिए प्राणोत्सर्ग की भावना रखते थे। धार्मिक निर्देश की यह भावना सांसारिक जीवन में भी एक उच्चतर उद्देश्य उपस्थित करती थी।

प्रासाद के दूसरे खण्ड में छप्पन स्तम्भ थे। कोई भी स्तम्भ, किसी दूसरे स्तम्भ से सादृश्य न रखता था। इन स्तम्भों का सौन्दर्य अद्भुत और अपूर्व था। प्रत्येक स्तम्भ अपनी एक

विशेषता का विज्ञापन करता था। मैंने एक अपरूप स्तम्भ का आलिंगन किया। उसके साथ-साथ सम्राट अकबर के साम्राज्य के स्तम्भ, मन्त्रियों की बातों का मैंने स्मरण किया। स्तम्भ के पार्श्व में अपना कपोल विन्यस्त करके मैं कुछ सोचने लगी।

इसी क्षण मेरे शरीर के साथ वायु के एक झोंके का स्पर्श हुआ। उसके द्वारा मेरे पास पीले रंग का एक पल्लव पहुँचा। यह पल्लव अतीत का सन्देश लेकर मेरे पास आया था। मेरे हृदय में फिर एक बार जीवन की भीषण ज्वाला का उद्रेक हुआ। मैं पृथ्वी पर बार-बार पदक्षेप करने लगी। मैं सोचने लगी—इसी प्राङ्गण में मैं अपने भाइयों और बहनों के साथ खेला करती थी। उन दिनों की स्मृति मुझे भूली नहीं है। मुझे भली भाँति स्मरण है कि उन दिनों में दारा शिकोह अपनी पगड़ी में मयूर के पंख को जकड़ कर किस प्रकार कौतुक किया करते थे। औरङ्गजेब प्रासाद के कोने में बैठ कर अनेक प्रकार के खेल करते थे। मेरी छोटी-छोटी बहनें गुलाबी रंग की साड़ियाँ पहने हुए इन स्तम्भों में छिप-छिप कर खेला करती थीं।

यहाँ आकर मैंने जिस स्तम्भ का आलिंगन किया था, उसके सन्निकट खड़ी हो कर मैं अपने स्थिर नेत्रों से अतीत के न जाने कितने दृश्यों को देखने लगी।

मुझे दिखाई पड़ने लगा, जैसे वायु के एक झोंके से दारा के सिर में बंधी हुई पगड़ी का मयूर-पंख उड़ गया। हाथ में माला लिए हुए औरङ्गजेब ने सिर उठाकर देखा और देखा इस दृश्य को उपहास के साथ। दारा खड़े थे और वे औरङ्गजेब की ओर देख रहे थे।

उन दिनों में हम सभी बच्चे थे। किसी को भी अपने भविष्य की चिन्तना न थी।

अतीत की इन स्मृतियों को भुलाने के अभिप्राय से मैं प्रासाद के तीसरे खण्ड में चली गयी। मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च होने लगा। क्षण-भर में मैंने अकबर के इस भारतवर्ष की बहुत-सी बातें सोच डालीं; स्तम्भों का आश्रय लेकर मैंने नगर की बहुत-सी बातें देखीं। इसमें सन्देह न था कि उस समय वहाँ की सामान्य बातें ही शेष रह गयी थीं।

मैंने अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा वहाँ की बहुत-सी चीजों को देख डाला। इसलिए कि फतेहपुर के सम्बन्ध में मैंने अबुल-फजल के विचारों का अध्ययन किया था। मैंने चित्रशाला का निरीक्षण किया। इसी स्थान पर भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के आमन्त्रित दीने-इलाही के शिष्य आकर एकत्रित होते थे। सम्पूर्ण पृथ्वी के विद्वान और तपस्वी यहाँ पर आया करते थे। इस नगर की ख्याति गजनी की भाँति समस्त विश्व में फैली हुई थी।

दीने इलाही के शिष्यों ने सम्राट अकबर और अबुल-फजल को अपना आदर्श मान कर अपने जीवन का निर्माण किया था चित्रशाला में किसी एक ही स्थान के चित्रों का संग्रह नहीं था। प्रत्युत विश्व के प्रमुख देशों के चित्रों को लाकर उसे एक अपूर्व चित्रशाला का रूप दिया गया था।

मैंने मुद्रागार पर दृष्टि डाली। पृथ्वी के अनेक देशों के सुन्दरतम मुद्रा वहाँ पर एकत्रित किये गये थे। उनके द्वारा सम्राट के चित्र को समन्वित करने में सहायता मिलती थी। मैंने यन्त्रागार के भी दर्शन किये। वहाँ पर अनेक प्रकार के नवीन आविष्कृत यन्त्रों का संकलन था। उन यन्त्रशालाओं की संख्या शताधिक थी।

वहाँ पर सतरञ्ज की अभूतपूर्व व्यवस्था थी। रेशमी वस्त्र पर सुन्दरतम झालर का समन्वय था। अनेक प्रकार सामञ्जस्य

देखकर मैं आत्म विस्मृत हो रही थी। प्रत्येक स्थल पर सम्राट का अस्तित्व दिखाई पड़ता था। उन्हीं के तत्वावधान में जैसे समस्त कार्यों की सृष्टि होती थी।

इसके उपरान्त मैंने ग्रन्थागार का निरीक्षण किया। वहाँ पर मैंने श्रेणीबद्ध पाण्डुलिपियाँ देखी। उनके ऊपर पृष्ठ अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। सम्राट बाबर के द्वारा वे ईरान से भारतवर्ष में आयी थीं। उस ग्रन्थागार में भारतवर्ष, फारस, अरब, ग्रीस, पैलेस्टाइन आदि देशों के विद्वानों द्वारा विरचित काव्य और दर्शन की पाण्डुलिपियाँ संकलित थीं। सम्पूर्ण ग्रन्थ, पाण्डुलिपियों के रूप में थे। इस ग्रन्थों में सब से महान, सुन्दर और अलंकृत थी सम्राट तैमूर की जीवन-कहानी—मुगल राज वंश का स्पष्ट विधान! उसमें लिखा था :—

"किसी प्रकार के स्वार्थों की प्रेरणा पाकर हम कभी भी आत्मीयता का बन्धन शिथिल न करेंगे। यही हमारी शक्ति है—यही हमारा जीवन है!"

राज प्रासाद के प्रत्येक द्वार पर पृथ्वी के विभिन्न देशों के शासक दिखाई देते। मानो वे तैमूर की अभ्यर्थना के लिए एकत्रित हुए हैं। सम्राट तैमूर ने अपने छः पुत्रों के विवाह-संस्कारों का जिस विराट आडम्बर के साथ सम्पादन किया था, विश्व विख्यात मुगल-राजवंश की सन्तान एक सूत्र में आवद्ध रह सकेगी, यह क्या उस समय का एक स्पप्न न था?

राज्य-विस्तार के लिए सम्राट अकबर ने तैमूर की भाँति शत्-शत् और सहस्र-सहस्र देशों को बिध्वंस नहीं किया था। अकबर की चिर-सञ्चित अभिलाषा थी कि भारतवर्ष अपने प्राचीन आदर्शों की प्रतिष्ठा करे और दिल्ली के चतुर्दिक तैमूर के वंशजों के शान्ति निकेतन स्थापित हों।

इसी आदर्श को लेकर बीजारोपण हुआ और अंकुरित पैदा, एक विशाल और विराट वृक्ष के रूप में परिणत हुआ। परन्तु क्या आज उसकी शाखायें और प्रशाखायें क्षत-विक्षत दिखायी नहीं दे रहीं हैं ? सम्राट अकबर की वह साधन-सञ्चित अभिलाषा आज कहाँ है ? सम्राट बाबर ने क्या इसीलिए भारतवर्ष में प्रयाण किया था ? मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर जिस ग्रन्थ का अध्ययन किया था, वह था दारा शिकोह के द्वारा संकलित और सम्पादित, हिन्दू-उपनिषदों का सार-संग्रह वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान ! दारा ने श्रद्धापूर्वक इस ग्रन्थ का अनुवाद फारसी भाषा में किया था। यह कार्य दीने इलाही के एक शिष्य के लिए सर्वथा उपयुक्त और अनुकूल था !

इसी समय नीचे के खण्ड में मुझे हंसी का स्वर सुनायी पड़ा। उस स्वर में परिहास की व्यञ्जना थी। उसी समय मैंने औरङ्गजेब की विस्फारित दन्त-राशि को देखा। एक हिंसक पशु की तीव्र भावना उसके अन्तरतर में भीषण रूप धारण कर रही थी। उन्हीं ने तो दारा को अविश्वासी, अधर्मी और धर्म-द्रोही के नाम से सम्बोधन किया है और उन्हीं ने तो इन अपराधों के कारण दारा को पृथ्वी से अपसारित करने की अपने अन्तःकरण में, एक अमिट और अक्षुण्ण धारणा बना ली है। ओफ, यह अनुभूति यदि मुझे कुछ दिन पूर्व हुई होती !

तृतीय खण्ड में दीने इलाही के शिष्यों को मैंने सम्राट के निकट आत्म-सम्मान प्रकट करते हुए देखा। मनुष्य के जीवन में आत्म-सम्मान ही तो प्राणों का संरक्षक आवरण है ! अपने ग्रन्थ की रचना करके शाहजादा दारा ने उसे सम्राट अकबर को समर्पण करते हुए अभ्यर्थना की है और कहा—हे अदृश्य विश्व के निर्माता !

अल्लाह, मेरे बन्धु पर आशीर्वाद की वर्षा करो।

तृतीय भाग से चल कर मैं ऊपर के खण्ड पर पहुँची और द्वादश स्तम्भों के निकट जाकर खड़ी हो गयी।

प्रासाद के चतुर्थ खण्ड में दीने-इलाही के शिष्य सम्राट के धर्म का अनुसरण करते थे। दोपहर की नमाज का समय हो चुका था। मैं उसके लिए तैयार होने लगी। सम्राट अकबर ने जिस दिन से एक ईश्वर का अस्तित्व और आधिपत्य स्वीकार किया था, उसी दिन से उन्होंने सभी के लिए जुमा मस्जिद का द्वार खोल दिया था और सभी को नमाज के लिए आह्वान किया था।

यहीं पर मुझे आत्म-ज्ञान की अनुभूति हुई। मेरे अन्तःकरण में उज्वल प्रकाश का उदय हुआ। उस प्रकाश में अवगाहन करने के पश्चात् मेरे आत्मा को चिर-शान्ति का अनुभव हुआ। उसी समय मुझे अनुभव हुआ कि सम्राट अकबर को किस प्रकार दिव्य दृष्टि मिली थी।

अपने शैशव-काल से ही सम्राट अकबर सत्य के खोजी थे। वे किसी ऐसे गुरुजन के अनुसन्धान में थे, जो जीवन के सत्य का उनको ज्ञान दे सके। यह अभिलाषा तीव्र होने पर भी उनको अपने यौवन काल में निराश होना पड़ा। परन्तु उनकी भूख मिटी नहीं। वे अपने अभीष्ट की ओर बराबर चलते रहे। उन्होंने अपनी अभिलाषा को सदा सजीव बनाने की चेष्टा की

सम्राट अकबर सत्य के अनुसन्धान में प्राचीन परम्परा के पोषक न थे। सायंकाल होते ही उल्मा, शूफी और पण्डितजन आकर उनको घेर लेते। उनके साथ बैठकर सम्राट अकबर जीवन की आलोचनायें करते और निकटवर्ती तपस्वियों की अनुभूतियों को वे आदर देते। यह नित्य का उनका व्यवसाय था। सम्राट

अकबर स्वयं एक अन्वेषक थे और अन्वेषी जनों को वे अत्यधिक आदर देते थे।

जीवन के कठोर अन्धकार में जब अकबर अपने सहयोगियों के साथ गम्भीर समीक्षाओं में प्रवेश करते, उन दिनों में भी, सम्पूर्ण संसार अपने रास्ते पर चलता रहता। आकाश का रंग-रूप वही पुरातन बना रहता। फतेहपुर-सीकरी के एक कोने में बैठ कर सम्राट अकबर सत्य की खोज में आत्म-विस्मृत हो जाते। रात्रि की निर्जन अवस्था मे शत्-शत् बार निमग्न रहकर उन्होंने सत्य का अन्वेषण किया था।

प्रभात की शीतल वायु के साथ, सम्राट अकबर के शरीर का—उनके प्राणों का स्पर्श हुआ। उनके अन्तरतर में सूक्ष्म दृष्टि का विकास हुआ। उन्होंने अपने अभीष्ट के संदर्शन किये।

---

[८]

कल्पनाओं का स्रोत

भ्रमण और पर्यटन मुगलवंश का एक स्वाभाविक कार्य रहा है। मेरे नेत्रों के सामने एक विस्तृत प्रदेश था, जिसमें कहीं विश्राम का कोई स्थान दिखाई न देता था। उस प्रदेश में—विस्तृत स्थल के शत्-शत् कण्ठकाकीर्ण मार्ग थे, पहाड़ों के ऊपरी भाग पर चलने वालों के पथ की चौड़ी रेखायें थीं, जो मार्ग के रूप में परिणत हो गई थीं और वहाँ के निवासियों के चतुर्दिक स्थान बने हुए थे। वे लोग संगठित होकर रहते थे।

मुगल वंशजों के समूह ने पृथ्वी के अन्य देशों को विजय करने की लालसा से दूर-दूर की यात्रा की थी। वह समूह पश्चिम में योरप तक और पूर्व में चीन तक पहुँचा था। अन्त में वह समूह भारतवर्ष में आकर उपस्थित हुआ। मुगल जाति दो विभागों में बँटी थी। एक विभाग, संसार के किसी समूह से मिल कर रहना और चलना, अपने जीवन का एक उद्देश्य समझता था और दूसरा किसी के साथ भी सम्मिलन और सहयोग स्वीकार न करता था। भारतवर्ष में आकर जिन मुगलों ने अपना स्थान बनाया, वे मिश्रण के पक्षपाती न थे।

मुगल वंशज तेजस्वी बाबर और प्रतापी सम्राट अकबर ने अपने पूर्वजों के अनुसरण में अपनी शक्ति और स्वतन्त्रता का उपयोग किया और जीवन की उमड़ती हुई विभीषिकाओं का

परिचय दिया। सम्राट अकबर के विवेक में सूक्ष्म अनुभूत का सामञ्जस्य था। वे रेखाओं को देखकर चित्र की कल्पना करने में सफल होते थे और वीणा की झङ्कार सुनकर सङ्गीत और उसके सुर की पहचान करते थे। जीवन की कठोर विभीषिकाओं पर उनका स्वाभाविक अधिकार था, इसमें सन्देह नहीं।

विश्व के दूर-दूर देशों में सम्राट अकबर ने भारतवर्ष की ख्याति का विस्तार किया था। साथ ही इस देश में शान्ति और व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में उन्होंने सफलता प्राप्त की थी। जब वे अपने राज-सिंहासन पर बैठते थे तो उनके गले में एक अनुपम कण्ठहार की अपूर्व शोभा देखने को मिलती थी। उनके सिंहासन में तातार देश की रेशम और चीन देश की झालर का अद्भुत समन्वय था। उनके एक ओर बहुमूल्य सुवर्ण विखरित होता और दूसरी ओर मोती और जवाहर। सम्राट के मस्तक के ऊपर जो बहुमूल्य आवरण होता और उनके सामने विश्व के जो अद्भुत दृश्य होते, वे नवयुग का प्रस्फुरण करते।

उन दिनों में गुलाब के फूल की भाँति फतेहपुर-सीकरी विकसित और पुष्पित हुई थी। उन दिनों में भारत देश धन और वैभव में शक्तिशाली माना गया था और उसे ऐश्वर्य का उपयोग इस देश ने शताब्दियों तक किया।

सम्राट अकबर ने अतीत का अध्ययन करके अपने आदर्श का निर्माण किया था! उनके आदर्श में त्याग और विराग था। यदि वे अनुकूल शासक का अभाव अनुभव न करते तो शासन की सत्ता उसे देने में उन्होंने कभी भी संकल्प-विकल्प को स्थान न दिया होता। उन्होंने क्षण-भर में अपने आदर्श के साथ साक्षात् किया होता। उनके आदर्श में जगत का जो रूप था, वह सहज ही साकार और सजीव हो उठता।

सम्राट अकबर का स्थान अत्यन्त असाधारण था। अतीत की स्मृतियों और भविष्य की कल्पनाओं का जहाँ पर स्पर्श होता था, सम्राट वहीं पर समासीन दिखायी देते थे। अतीत की ओर मैंने अत्यधिक सुदूर दृश्यों पर दृष्टिपात किया। उसी समय मुझे विराट पुरुष तैमूरवेग के संदर्शन हुए। पृथ्वी के प्रत्येक मनुष्य को जिस प्रकार उन्होंने अपने आदर्श के अनुसार, सुगठित करने की कल्पना की थी, उसके विपरीत वे किसी मनुष्य को, मनुष्य नहीं कहना चाहते थे। मुहम्मद के द्वारा प्रतिष्ठित इस्लाम धर्म के एक विश्वासी और अधिकारी के रूप में उन्होंने अपने आपको स्वीकार किया था।

प्रलोभनों के द्वारा अथवा शास्त्रों के आतंक से किसी के धर्म परिवर्तन करने में सम्राट अकबर विश्वास न करते थे। वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ अपनी धारणा रखते थे कि प्रत्येक धर्म और प्रत्येक देश में इस प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं, जिनकी क्षमता में विवेक और प्रतिभा समन्वय होता है। सम्राट का बहुत बड़ा विश्वास यह था कि महापुरुष का अनुसरण करना ही महानता और श्रेष्ठता है।

तैमूर और अकबर की स्वाभाविकता में बहुत बड़ी प्रतिकूलता थी। तैमूर ने रक्तपात में अपनी शक्ति की रचना की थी और सम्राट अकबर की सद्भावना ने ख्याति पायी थी। दोनों के दो रास्ते थे। तैमूर ने तलवार के बल पर दूसरों को अपना शासित बनाया था परन्तु अकबर ने अपने शासन में उदारता को प्रधानता दी थी।

नागरिक की कोलाहल को सुनकर मैं फिर एक बार सचेष्ट हो उठी। जान पड़ा, मानों अतीत आज फिर सजीव हो उठा है। मुझे दिखायी पड़ने लगा कि एक बड़ी संख्या में लोग प्रासाद के

स्नानागार से निकल रहे है। मैं उस प्रासाद को ईर्षालु नेत्रों से देखने लगी। उसका बाहरी दृश्य साधारण था। किन्तु प्रासाद का आवरण-भाग अपूर्व और अपरूप था। उसकी आकृति गुम्बज के रूप में थी। उसके सम्पूर्ण शिला-भाग पर मीना की शिल्पकला का मनोहर चमत्कार था।

सम्राट अकबर ने कुछ विशेष जनों के लिए प्रासाद का विभाजन कर रखा था। प्रत्येक श्रेणी के अनुसार प्रासाद में स्थानों की व्यवस्था थी। साधु-सन्यासियों के लिए योगीपुरा भिखारियों के लिए खैरातपुरा और स्त्रियों के लिए शैतानपुरा बनाया गया था। मैंने खैरातपुरा की ओर दृष्टि डाली। वहाँ पर विभिन्न श्रेणी के भिखारी एकत्रित थे। मेरे अन्तःकरण में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठने लगी और अपने आप को मैं उन्हीं में एक अनुभव करने लगी।

वर्ष के एक निर्धारित दिन में चारों ओर से साधु और तपस्वी आकर योगीपुरा में समवेत होते और उनमें अनेक विशिष्ट जनों के साथ बैठकर सम्राट अकबर भोजन करते।

वायु के एक झोंके से मेरे घूंघट का परदा स्थानान्तरित हो गया। कोयल के छिड़के हुए गुलाब-जल से आस-पास की वायु सुगन्धित हो उठी। क्षण-भर के लिए मेरा ध्यान प्राचीन बातों की ओर गया। किन्तु गुलाब के पुष्पों की सुगन्ध से मेरा ध्यान भंग हुआ। मेरे नेत्र अन्तःपुर की ओर देखने लगे। प्रासाद के अन्तःपुर को सुगन्धित उद्यान ने घेर रखा था। राजप्रासाद में हिन्दू पत्नियों के लिए सम्राट अकबर ने एक विशाल भवन बनवाया था। उसकी सभी बातें हिन्दू आदर्शों के अनुसार थीं। इसलिए कि जिसमें सम्राट की हिन्दू पत्नियाँ उसे अपना प्रासाद समझें। उस भवन में प्रवेश करते ही एक छोटा-सा

मन्दिर मिलता था। सूर्यास्त होने के पश्चात् इसी भवन में मैंने सम्राट अकबर को भोजन करते हुए देखा। सूर्य के अस्त होने के साथ-साथ, भट्टजन सम्राट की कीर्ति का गान करते। सुवर्ण निर्मित द्वादश प्रदीप जल उठे। उन सब के बीच में अत्यन्त सुन्दर एक श्वेत दीपक जल रहा था। इस समय प्रासाद का प्रत्येक जन अपने-अपने स्थान पर खड़ा हो गया था। इसलिए कि पृथ्वी पर अग्नि ही भगवान की प्रतीक है। प्रदीप शिखा ही भगवान के नेत्रों का आलोक मानी जाती हैं। उस विराट प्रासाद में मैंने स्वर्ण प्रासाद के साथ-साथ उस दिव्य भवन को भी देखा, जहाँ पर मैं विश्राम करने के लिए जाया करती थी।

एक स्तम्भ के निकट अपना मस्तक रखकर मैं आकाश की ओर देखने लगी। चिर विस्तृत सूर्य-रश्मियों को मेरे नेत्र देखने लगे। मुझे दिखायी देने लगा, मानो घोड़े और हाथियों का समूह चल रहा है और आकाश में धूलि के कण उड़ रहे हैं। आज एक विराट उत्सव का दिन है। प्रीति, विश्वास, हर्ष और विस्मय के सम्मिश्रण में सम्राट अकबर ने फतेहपुर-सीकरी में बैठकर निरूपण किया था और निरूपण किया था कि जीवन का प्रत्येक अवस्था में ऐश्वर्यमयी फतेहपुर-सीकरी ही जीवन का आधार बनेगी।

फिर सम्राट अकबर ने उस फतेहपुर-सीकरी के साथ वियोग क्यों किया? उनका सम्पूर्ण निर्णय विस्मृति के गम्भीर अन्धकार में क्यों विलीन हो गया? इस राजप्रासाद में आज भिखारियों, यात्रियों और जंगली पशुओं का आवास क्यों हो रहा है?

दूर—अत्यन्त दूर सिकन्द्रा की ओर मैंने देखा। पत्थरों के

ऊपर गम्भीर कुहरा दिखायी दे रहा था। समाधि और नगर के मध्यवर्ती भाग में वृक्षावली, प्रहरी के रूप में दिखायी दे रही थी। सम्राट की समाधि के चतुर्दिक उठता हुआ धुआँ, कुहरे के रूप में परिणत हो रहा था। वह महापुरुष मेरे नेत्रों के सामने मूर्तिमान हुआ। कोई भी शिविर और कोई भी समाधि उस परिव्राजक-महापुरुष को अपने सीमान्तर्गत रखने की क्षमता न रखती थी।

उस महापुरुष के जीवन की कल्पनायें, मेरी स्मृति में जागृत हो उठीं। मैं सोचने लगी—वे कल्पनायें आज कहाँ हैं? महापुरुष सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से जन्म पाने वाले सलीम ने सम्राट अकबर के साथ विद्रोह किया था। उस विद्रोह को सम्राट ने जीवन के एक उल्लास के रूप में देखा था।

मैं एक प्रहेलिका के जाल में आवद्ध अपने आपको देख रही थी। इस जाल को तोड़ने की मैं जितनी चेष्टा करती, उतनी ही अधिक मैं उसमें आवद्ध होती जाती थी। मैंने सावधान होकर शपथ पूर्वक कहा:

युद्ध में यदि हमारी विजय होगी तो सम्राट अकबर के श्रेष्ठ धर्म की फिर एक बार फतेहपुर-सीकरी में मैं प्रतिष्ठा करूंगी। और जुमा मसजिद में प्रार्थना करने की फिर से व्यवस्था होगी। विवेक के पुजारी फिर उस प्रार्थना-भवन में एकत्रित होना आरंभ करेंगे। इस राज प्रासाद में फिर से प्रेम का अनुष्ठान कोगा।

सुवर्ण प्रासाद की चाँदनी के प्रति मैं आकर्षित हुई। मैं सोचने लगी—यहाँ पर मैं नवजीवन प्राप्त करूंगी और वहीं मैं अपने प्रियतम के दर्शन करूंगी। एक पवित्र धातु के द्वारा प्रासाद

का यह स्थान निर्मित हुआ है। उससे तीव्र सुगंध आरही है। स्वर्ण की उज्वल आभा, भीतर और बाहर दोनों ओर अपना प्रदर्शन कर रही है। इस प्रासाद के भीतर और बाहर सुवर्ण मण्डित चित्रों की श्रेणियाँ हैं। सभी चित्रों में विभिन्न प्रकार के रंगों की भूमि है और उन चित्रों में अनेक प्रकार के दृश्य दिखाये गये हैं। युद्ध के दृश्य, मृगया के दृश्य विभिन्न प्रकार के पशुओं और पक्षियों के दृश्य अद्भुत घटनाओं का परिचय देते हुए मनुष्य के अन्तःकरण को मुग्ध करते हैं। पद्मासन धारी विष्णु के अवतार, श्रीरामचन्द्र का स्तम्भ पर बना हुआ चित्र अत्यन्त लोकप्रिय जान पड़ता है।

द्वार के सम्मुख एक चित्र दिखाई पड़ा। शैशव कालीन यह चित्र, चित्त में एक चिंता की लहर उत्पन्न करता था। वह स्मृति आज फिर मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। यह चित्र एक देवदूत का चित्र था। उसके हाथ में खड्ग के रूप में एक पदार्थ था। उसके भीतर से एक अद्भुत ज्योति का प्रस्फुरण हो रहा था। यह चित्र क्या देवदूत जिब्राइल का चित्र था? राजरानी योधाबाई माता मरियम की ओर क्या अग्रसर हो रही थीं।? निकटवर्ती द्वार पर जाकर मैं बैठ गयी।

मेरे अन्तःकरण में अनेक प्रकार की चिन्तायें उठ रही थी। उनका विस्तार बढ़कर अन्तःपुर के महिला-भवन तक पहुँचा। मैं पहले से ही जानती थी कि सम्राट के अन्तःपुर में पाँच हजार से अधिक रानियाँ रहती हैं। आज भी मेरे कानों में उस प्रासाद की घोषणा प्रतिध्वनित होती है—"ईश्वर एक है—पत्नी एक है!" एक-से अधिक पत्नी की जो अभिलाषा करता है, वह स्वयं अपने विनाश का मार्ग निर्माण करता है। सम्राट अकबर के अन्तिम जीवन का निष्कर्ष यही था। यद्यपि कुरान में १, २, ३,

४, स्त्रियों के साथ विवाह करने के आज्ञा दी गयी और इस आज्ञा के समर्थकों और पोषकों ने उसका अर्थ लगाया कि प्रत्येक मुसलमान एक साथ १० स्त्रियों के साथ बिवाह कर सकता है। सम्राट अकबर को उसका बहुत विरोध करना पड़ा था और उनको विरोधीजनों के भीषण आघात सहने पड़े थे। यदि युद्ध में हमारी विजय हुई तो इस सुवर्ण प्रासाद में मैं एक लिङ्ग के मन्दिर की स्थापना करूंगी।

थोड़ी ही देर में मैं उस भवन की ओर अग्रसर हुई जहाँ कोयल मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। इस भवन की रूप-रेखा और निर्माण कला को देखकर मुझे हिन्दू मन्दिरों का स्मरण हुआ। उनके ध्वंसावशेष अस्तित्व जिस अभ्युदय को प्राप्त कर सके हैं, वे मन को सहज ही आकर्षित करते हैं, इन मन्दिरों की दीवारों में जो चित्र कला दिखायी गयी है, कोई भी उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। उनके अपूर्व और अपरूप कारू-कार्य को देखकर जान पड़ता है, मानो सम्पूर्ण एशिया का कल्पना-जगत सम्राट अकबर के हिन्दू राज्य में आकर केन्द्रित और मूर्तिमान हुआ था। इस कल्पना में आस्तिकता को अन्तिम सीमा तक पहुँचाया गया है और उसको देखकर मालूम होता है कि इस जगत में भगवना के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं है!

उस भवन की सोपान-श्रेणी अतिक्रम करके मैं ऊपरी भाग पर पहुँची। उसके एक कोने में बैठने का एक स्थान बना था। उस पर सुवर्ण मण्डित कीनखाब की अपूर्व शोभा थी। एक आले में चर्म निर्मित एक चित्राधार रखा हुआ था। वहीं पर एक वीणा और एक छूरी रक्खी हुई थी। चित्राधार के चित्रों को देखकर अनुमान होता था कि यहाँ पर मेरे भाई दारा अन्य

जनों के पश्चात् विश्राम कर चुके हैं । क्योंकि उनको छोड़कर और कौन इन चित्रों का संकलन करेगा ?

कोयल के एक मृत्पात्र में कुछ सुगन्धित पुष्पों के एकत्रित किया था। उन पुष्पों की गन्ध से उस स्थान की वायु सुगन्धित हो उठी थी । मैंने बाराण्डे में कुछ समय तक विश्राम किया। उन स्थान की दीवारों में भी महत्वपूर्ण चित्रकला का प्रदर्शन किया गया था। इस कला को देखते ही मनुष्य के मन में चिर शान्ति उत्पन्न होती। आगरे के इस राज प्रासाद में ऐसा कोई स्थान न था, जिसमें सुवर्णालंकार न हो, मखमल का आवरण न हो और बहुमूल्य प्रच्छद-छटा न हो । किन्तु उससे समस्त निर्माण में बालू और प्रस्तरों का समावेश था। मेरे जीवन में अविश्राम था और यह मुझे जीवन-व्यापी जान पड़ता था। इसीलिए विश्राम पाने के लिए एक स्तम्भ के ऊपरर मैं लेट गयी।

कोयल मेरे लिए कुछ खाने की सामग्री ले आयी थी । मैंने उसको चित्रों के लाने की आज्ञा दी। उसके लाने पर मैंने देखा कि चित्राधार के जीर्ण पत्रों पर सम्राट अकबर का समय लिखा हुआ था। उन चित्रों में भारतीय किसी महाकाव्य का उल्लेख न था और न उसमें कोई राजनीतिक घटना ही थी। उस चित्राधार में, चित्रकार दशनाथ द्वारा निर्मित एक चित्र था।

दशनाथ एक हरिजन बालक था। यह बहुत दरिद्र था और पालकी ले जाने का कार्य करता था। मथुरा के एक मन्दिर में दशनाथ कोयले से चित्र की रेखायें खींच रहा था । अचानक सम्राट अकबर ने उसको देख कर, उसके भविष्य की कल्पना की। वे दशनाथ को मथुरा से अपने साथ ले आये और अपने

राजप्रासाद में उसको रखा । कुछ दिनों के पश्चात् दुशनाथ एक प्रसिद्ध चित्रकार बना । किसी मनुष्य को पहचानने की सम्राट अकबर में अपूर्व क्षमता थी।

दुशनाथ के उस चित्र को चित्राधार से निकाल कर मैं देखने लगी । मेरे मनोभवों में अनेक कल्पनाओं का जन्म हुआ।

वह चित्र मुझे आशीर्वाद के रूप में दिखाई पड़ने लगा। उस चित्र के आवरण में प्रासाद था और वह प्रासाद रक्तिमाभ उज्वल पर्वत माला से दीवारों की भाँति परिवेष्ठित था। यह उज्वलता क्या अरावली पर्वत माला की थी ! संध्या कालीन आकाश के ईषत् स्वर्णाभ ज्योति में अरावली की आभा बिलीन हो गयी। एक पथ साँप की गति के रूप में प्रासाद की ओर चला गया था। उसके सम्मुख एक स्त्री का चित्र था । उसको देखकर किसी नवविवाहिता का अनुमान होता था। उसके नेत्रों की दृष्टि ऊपर की ओर थी। उन आँखों की ज्योति मुझे आज भी विस्मृत नहीं हो सकी और मैं विस्मृत नहीं कर सकी उसके वामहस्त की उत्तेजित तलवार को सामने की ओर प्रसारित उसकी दक्षिण बाहु को। उसके पीछे सैन्य दल एक चिता की रचना कर रहा था। उसी समय मैंने अपनी कोयल को सम्बोधन करके प्रश्न किया—

"कोयल, तुम तो हिन्दू स्त्री हो, क्या तुम बता सकती हो कि इस चित्र की घटना का क्या अर्थ है।

कोयल ने क्षण-भर तक उस चित्र की ओर देखा, उसके अश्रुपूर्ण नेत्रों में मैंने एक अपूर्व आभा देखी। काँपते हुए कण्ठ से, मधुर स्वर में उसने कहा—

"इस चित्र में कुमारी कुरम देवी की घटना है। यह कथा

लगभग एक सौ वर्ष की पुरानी है। मण्डोर के राजकुमार को देखकर कुमारी मोहित हो गया थीं। उन्होंने राजकुमार को अपना स्वामी बनाने का अपने मन में निश्चय कर लिया था। परन्तु कुमारी के पिता का निर्णय किसी दूसरे राज कुमार के साथ, उसका विवाह करने का था। यह जानकर भी, मण्डोर के राजकुमार ने कुमारी के साथ विवाह करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु राजकुमार की मृत्यु हो गयी। उसी अवस्था में कुमारी ने अपने वाम हस्त में तलवार लेकर, अपना दाहिना हाथ काट डाला और कटे हुए हाथ को वर के पिता के पास भेजते हुए लिखा—

'यह थी आप की पुत्र वधू'।

उसके उपरान्त कुमारी ने एक सैनिक की सहायता से अपना अवशिष्ट हाथ भी कटवा कर अपने पिता के पास भेज दिया। उसके पश्चात् कुमारी ने चिता में प्रवेश करके अपनी आत्माहुति दी। राजकुमारी हिन्दू नारी थी।"

कोयल चली गयी। एकाकिनी अवस्था में मैं लेटी हुई थी। मेरे नेत्र अब भी कुमारी के चित्र को देख रहे थे और मेरे कानों में कोयल की बात सुनायी पड़ रही थी। उसी समय मुझे स्मरण हुआ, सम्राट अकबर के इस अन्तःपुर में मैं एक प्रवासिनी से रूप में हूँ। सम्राट अकबर ने मुगल-रक्त के साथ हिन्दू रक्त को मिश्रित करने का जो प्रयास किया था, उसका कुछ परिणाम न निकला। हिन्दू जाति, हिन्दू जाति होकर रही। किन्तु मुगल ?

यह तो हिन्दू स्त्री ही है जो अपने स्वामी की मृत्यु पर प्रज्वलित चिता में भस्मीभूत होकर मृत्योपरांत स्वामी का चिर-मिलन प्राप्त करती है। इसी आशा और अभिलाषा में चिता की

उत्तेजित अग्निशिखा, हिन्दू-नारी की चिर-शान्ति की साधना बनती है। दशनाथ-अंकित कुमारी के उस चित्र को मैं जितना ही देखती, उतना ही मैं उससे प्रभावित होती। अपने हृदय में मैं एक अविराम पीड़ा का अनुभव करने लगी। मैं एकाकिनी थी और मेरे हृदय की गति धीरे-धीरे तीव्र हो रही थी मैं स्पन्दन हीन नेत्रों से कुमारी के चित्र को देख रही थी।

मैं रो उठी। अपनी माता की मृत्यु पर भी मैं इसी प्रकार रोयी थी। अविराम क्रन्दन की अवस्था में मुझे जान पड़ता था, मानो सम्पूर्ण पृथ्वी काँप रही है और मैं उससे गिरने वाली हूँ। मेरा साहस और धैर्य धीरे-धीरे निर्बल हो रहा था।

मेरा अश्रुपात कम हुआ। मेरे नेत्र शून्य की ओर देख कर रह गये थे। एकाएक मेरे मुंह से निकला—इस देश का सम्पूर्ण भविष्य और मेरे जीवन की समस्त आशायें मेरे राखी बंद भाई के ऊपर निर्भर हैं।

क्रन्दनोपरांत मेरी आँखें झंपने लगीं। निद्राभिभूत अवस्था में मेरे नेत्र बंद हो गये। उसी समय मुझे अश्व-पद-ध्वनि सुनायी पड़ी। मेरी निद्रा भंग हो गयी। वह ध्वनि आगरे की ओर से आ रही थी और धीरे-धीरे निकटतम होती जाती थी। उसके पश्चात् वह ध्वनि अकस्मात् विलीन हो गयी।

अचानक मेरे मन में नवजीवन का संचार हुआ। मैं विश्वास करने लगी कि प्रस्तर निर्मित घूमने वाला निकटवर्ती द्वार मुझे समीप के प्रकोष्ठ में पहुँचा देगा, मैं वहाँ पर सम्राट को अपने सामने देख सकूंगी।

द्रुतगामी घोड़ों के पदों की ध्वनि से मेरे मस्तिष्क का रक्त फिर चञ्चल हो उठा। मैं अनुभव करने लगी, भारतवर्ष की रक्षा करने के लिए राजपूत सेना आ रही है। राजस्थान की स्त्रियाँ

वीर प्रसूता हैं। राजपूत उन्हीं की संतान हैं। कोयल की बातों से मालूम हुआ था कि मैं अब भी सुन्दरी हूँ और उसी प्रकार, जिस प्रकार यौवन में थी। क्या यह सत्य है?

मैंने चित्राधार की ओर अपना हाथ फैलाया, चित्राधार चुम्बक हो उठा और उसने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। हाथ बढ़ाकर मैंने चित्राधार उठा लिया और उसे खोला। उसमें एक दूसरा चित्र मुझे मिला। यह चित्र था श्रीकृष्ण का। वे एक ही समय में समस्त गोपिकाओं के सामने, पृथक रूप में सर्वत्र उपस्थित थे। रुक्मिणी श्री कृष्ण की ज्योति में ज्योतिर्मयी हो रही थीं। कालिन्दी के ऊपर श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे, सत्यभामा के साथ वे क्रीड़ारत हो रहे थे। जिसकी जैसी भावना होती, श्रीकृष्ण उसी के अनुसार उसे मिलते।

चित्र के नीचे दो पंक्तियाँ अंकित थीं और वे इस प्रकार थीं—

> तुम अपने दास को दरिद्र बनाते हो,
> इसलिए कि जिससे वह तुम्हारा स्मरण करे?

कोयल मेरे लिए शीशा, गुग्गुल और रक्तचन्दन रख गयी थी। मानो मुझे किसी विवाह-उत्सव में जाकर सम्मिलित होना है। निस्सन्देह, फतेहपुर-सीकरी में जाकर सलीम चिश्ती की समाधि के मुझे दर्शन करने थे। मैंने अपने साथ कोई भी बहुमूल्य मणिमुक्ता और आभूषण नहीं रखे थे। साथ में एक मुक्ताहार था। उसमें एक कवच सुरक्षित था और उस कवच में वह पत्र था। मैं उस महापुरुष के निकट अत्यन्त दीनता के साथ जाऊंगी। उस महापुरुष के पास न तो बहुमूल्य रत्न हैं और न किसी प्रकार की कोई दूसरी सम्पत्ति है। किन्तु उसमें एक

अलौकिक क्षमता है । उस क्षमता के द्वारा उनमे हिंसक जन्तु दूर रहते हैं और मनुष्य आकर्षित हैं ।

'अल्लाह, तुम अपने दास को दरिद्र बनाते हो ।' सलीम चिश्ती की दरिद्रता ने ही क्या सम्राट अकबर को फतेहपुर-सीकरी का निर्माण करने के लिए प्रेरणा की थी । दरिद्र की अन्तर्निहित शक्ति क्या पार्थिव ऐश्वर्य और सौन्दर्य की विरोधिनी होती है ? मैंने अपने चतुर्दिक निरीक्षण किया । यहाँ पर अब तक उस महापुरुष की अलौकिक शक्ति का प्रभाव था ।

मेरे बन्धु औरंगजेब टोपियाँ तैयार करते थे और एक निर्धन व्यक्ति की भाँति वे टोपियों की बिक्रय का कार्य करते थे । क्षमता के प्रति, उनका प्रलोभन था । परन्तु सौन्दर्य देखकर औरंगजेब अस्थिर हो उठते । मेरे पिता सौन्दर्य के प्रेमी थे । वे सम्राट अकबर की अपेक्षा भी ऐश्वर्यशाली थे । आज यदि उनकी पूर्व क्षमता होती ! मैं आगरे में जाकर हाथियों और घोड़ों का दान करूँगी । मसजिदों और मन्दिरों में एकत्रित होकर प्रार्थना करने की व्यवस्था करूँगी । मैं क्रीतदास और दासियों को मुक्त करूंगी और दरिद्रों को पेट भर भोजन कराने की व्यवस्था करूंगी । कदाचित मेरे इस दान से पिता के पापों का कुछ प्रायश्चित होगा ।

मैं जुमा मसजिद की ओर अग्रसर हुई । वजीर अबुलफजल और उनके बन्धु फैजी के आडम्बर हीन घर उनकी वाटिका में मैं उपस्थित हुई । सम्राट अकबर का साम्राज्य और उनका दीने-इलाही इन दोनों बन्धुओं का अत्यधिक ऋणी है । मैं कोमल चरणों से चल रही थी । मेरा मस्तक श्रद्धा से अवनत हो रहा था । मैं धीरे-धीरे चलकर फैजी के छोटे से घर की सीढ़ियों पर पहुँची । उसी समय मुझे अनुभव हुआ मानो

उस राज कवि ने अपने सम्राट अकबर के सम्मुख श्रीकृष्ण के जीवन की किसी कहानी अथवा नसीरे-खुसुरू की किसी शायरी का पाठ किया था।

इस समय फैजी की एक घटना का मुझे स्मरण हो रहा था। निस्सन्देह वे एक प्र सिद्ध शायर थे। वे इतने स्वाभिमानी थे कि कभी भी उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए किसी से याचना न की थी। उनका यह स्वाभिमान एक साधाराण जन से लेकर, सम्राट तक अपना मूल्य रखता था। परन्तु दूसरे के हित के लिए फैजी अपने स्वाभिमान को भूल जाते थे। उसका एक उदाहरण यह है कि उन्होंने सम्राट से उस मनुष्य के लिए प्रार्थना की थी, जो वास्तव से उनका शत्रु था और उसकी शत्रुता को फैजी जानते थे।

फैजी की इस घटना का रूप इस प्रकार है कि बदायूनी नामक एक जन धार्मिक विचारों में अन्धविश्वासी था। वह फैजी और अबुल फजल—दोनों का शत्रु था। सम्राट के दरबार में यह सब कोई जानता था। मिथ्या भाषण करने के कारण, बदायूनी को अपने पद से च्युत होना पड़ा था। परन्तु उदार हृदय फैजी ने सम्राट से इसके लिए प्रार्थना की थी और बदायूनी फिर अपने पद पर काम करने लगा था।

बदायूनी को क्षमा करने के लिए फैजी ने जिन शब्दों में सम्राट से प्रार्थना की थी, निस्सदेह वे अत्यन्त विनीत और फैजी की उदारता एवम, प्रतिभा के परिचायक थे:

"जो साधु जन प्रतिदिन प्रातःकाल पृथ्वी माता की स्तुति का गान करते हैं और जितने भी पवित्र आत्मा श्रद्धा और विश्वास पूर्वक सम्राट के राज-सिंहासन की परिक्रमा करते हैं उन सब की ओर से मैंने अपनी यह दीन-दुर्बल प्रार्थना आपने सम्राट के सम्मुख उपस्थित की है।"

सोपान-श्रेणी अतिक्रम करके मैं अबुल फजल को, उनके आवास-स्थान पर, अभिवादन करने के लिए गयी। उन दिनों में अबुल फजल भारतीय जीवन पर अनुसन्धान पूर्वक एक पुस्तक लिख रहे थे। अपनी उस पुस्तक में परिश्रम और गवेषणा के पश्चात् उन्होंने स्वीकार किया था कि "भारत के अनेक ईश्वर—देवताओं के ऊपर—परमेश्वर की सत्ता कार्य करती है। वही एक परमेश्वर समस्त मनुष्यों का सृष्टा और संरक्षक है। इसलिए कुछ विशेष दिनों में भारतीय विश्वासों के अनुसार, रक्तपात का निषेध किया गया है। विवाद का विष मिटा कर शांति और सुख के पुष्पोद्यान की प्रतिष्ठा करनी होगी।"

महाप्रभु, प्रत्येक मन्दिर में मैंने तुम्हारी खोज की है। विश्व की समस्त भाषाओं में तुम्हारा ही प्रताप सुनायी पड़ता है। मूर्त्ति-पूजक और मुसलमान—दोनों ही तुम्हारे प्रताप की सरिता में स्थान करते हैं। तुम एक हो—तुम अद्वितीय हो, सभी धर्मों का यही एक निष्कर्ष है। मंदिरों में हिन्दू, मसजिदों में मुसलमान और गिरजाघरों में ईसाई तुम्हारे ही गुणों का गान करते हैं!

इस प्रकार अबुल फजल के जीवन का विश्वास था। उनकी अभिलाषा थी मङ्गोलिया के तपस्वी जनों के दर्शन करने की। लेबानन देश में जो साधु और तपस्वी हैं, उनके दर्शनों की उनमें तीव्र उत्कण्ठा थी। वहाँ पर आज भी भारतीय सन्यासियों का अनुकरण करके भगवान की आराधना और अर्चना होती है।

उन तपस्वी जनों को अबुल फजल ने महाप्रभु ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया था। राजकुमार सलीम को अबुल फजल की इस आस्था से ईर्षा थी और इसीलिए उन्होंने

विश्वासघात करके अबुल फजल की प्राण-हत्या का प्रयत्न किया था। शोकाभिभूत होकर सम्राट अकबर ने आहार और निद्रा का परित्याग किया था। बंधु अबुल फजल के जीवन की रक्षा करने के लिए सम्राट अकबर हर्षपूर्वक जीवनोत्सर्ग करना चाहते थे।

इन दुर्घटनाओं की स्मृति ने मुझे प्रस्तर के रूप में परिणित कर दिया। मैं शोक से विह्वल हो उठी। मेरी समझ में न आया कि इस प्रकार के कुत्सित दृश्यों का अवलोकन कब तक करना पड़ेगा। एकाएक मेरे नेत्र उस प्रस्तर पर पहुँचे, जो मेरे पैरों के नीचे था। उस प्रस्तर के रक्त-चिन्ह अभी तक मिट न सके थे। मेरा सम्पूर्ण शरीर काँप उठा—किस अपराध ने सम्राट अकबर के जीवन का स्पर्श किया था?

राज-द्वार से होकर जुमा मसजिद के प्राङ्गण में मैंने प्रवेश किया। अन्तर्हित होने वाली सूर्य की रश्मियों ने पैरों के नीचे के प्रस्तर-खण्डों को रक्ताभ बना दिया था। उसी भूमि पर महापुरुष सलीम चिश्ती की संगमरमर-निर्मित समाधि, उज्वल मुक्ता की शुभ्र आभा से प्रभापूर्ण हो उठी थी। मैंने स्थिर नेत्रों से देखा, वहाँ पर दीने-इलाही का कोई शिष्य उपस्थित न था। महापुरुष के पुण्य और प्रताप के अनुसार, वस्त्रालंकृत कोई भी मनुष्य वहाँ पर दृष्टिगोचर न हो रहा था। उस पुण्य समाधि-क्षेत्र की यात्रा की करने वाली मैं ही एकाकिनी वहाँ पर दिखाई पड़ती थी।

यह छोटा-सा पवित्र तीर्थ सम्राट अकबर की समाधि के समान था। श्रेणी बद्ध श्वेत संगमरमर निर्मित खिड़कियाँ समाधि की वन्दना करती हुई चली गयी थीं। उनको देखकर योरोपीय गिरजा-घरों में झालर उत्सर्ग करने की घटना का स्मरण होता

था। गिरजा-घरों में ईसाई झालर-उत्सर्ग करने को पुण्य-कार्य के रूप में अत्यधिक विशेषता देते हैं। सम्राट अकबर की समाधि में पाषाण-निर्मित उसी प्रकार की झालर का प्रदर्शन था। भारतवर्ष के किसी भी नगर में इस प्रकार की समाधि के निर्माण की कल्पना नहीं की गयी। सलीम चिश्ती के प्रति सम्राट अकबर का यह उत्सर्ग था।

सोपान अतिक्रम करके प्रवेश-द्वार की ओर मैं अग्रसर हुई। सम्राट अकबर के द्वार के ऊपर रजत निर्मित घोड़े की टाप बनी हुई थी। घोड़ों की चाल की जो ध्वनि मैंने सुनी थी, उसकी स्मृति मुझे फिर से हो आयी। कल्पना के स्रोत में मुझे दिखायी पड़ा—सहस्रों अश्वारोही राजपूत मेरे पिता की सहायता के लिए आ रहे हैं। उसी समय मैंने दीवारों में लिखा हुआ पढ़ा—'भगवान मूर्त्ति पूजक शत्रुओं के लिए दण्ड की व्यवस्था करो।' परन्तु इन विधर्मी जनों में उनकी भी संख्या थी जो ईश्वर पर विश्वास रखते थे और वही हमारे साम्राज्य के प्रहरी थे।

उस स्थान पर एक देवदूत, गुप्त सन्देश लेकर मेरे निकट आ रहा था। उसे केवल मेरे पास आना था। प्रलय के समय भी सृष्टि के वीर्य को सुरक्षित रखने में भगवान की एक अप्रकट नीति होती है, उसी प्रकार अल्लाह के सिंहासन से उतर कर एक देवदूत सलीम चिश्ती के गुम्बज की रक्षा करने के लिए आता है।

पवित्रता मनुष्य के लिए सहज ही साध्य नहीं होती। समाधि भवन के स्तम्भ को परिवेष्टन करती हुई एक स्तम्भ-श्रेणी चली गयी है। दीवार की खिड़कियों के मार्ग से, सूर्य का प्रकाश समाधि-मन्दिर में प्रवेश करता था। भीतरी भाग में श्वेत

संगमरसर द्वारा निर्मित और सुरक्षित अनेक प्रकार के पुष्प क्षीण प्रकाश से उद्भासित हो रहे थे। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो मैं चन्दन की वाटिका निरीक्षण कर रही हूँ। मेरी अन्तर्दृष्टि में जीवन की अनेक अतीत स्मृतियाँ उद्भासित हो रही थीं और जान पड़ता था कि मैं स्वर्ग के शान्तिपूर्ण वातावरण की ओर अग्रसर हो रही हूँ।

अत्यन्त सावधानी के साथ मैंने उस भवन के गुप्त द्वार को खोला। सूर्यास्त कालीन प्रकाश परिवर्तित होता हुआ दिखायी पड़ा। आलोक प्रवेश करने के लिए, यहाँ पर एक मात्र खिड़की का मार्ग था। खिड़की के दोनों ओर निर्माण तीन दीपकों का प्रकाश हो रहा था।

अनन्त विश्व के विस्तृत क्षेत्र में मैं अक्षय सम्पदा की गवेषणा कर रही थी। दीवारों और खिड़कियों के अनेक स्थलों में चित्रित पुष्पों को देखकर मैं सोचने लगी, ये पुष्प स्वर्ग के उस नन्दन-कानन से चयन करके लाये गये हैं जहाँ के पुष्पों की सुगन्धि पर स्वर्ग की अप्सरायें अपना जीवन व्यतीत करती हैं।

इस स्थान का सर्वोत्तम दर्शनीय दृश्य स्तम्भ के ऊपर विस्तृत और निर्मित आवरण है। उसकी अपूर्व और अपरूप चित्रकला सहज ही मन को आकर्षित करती है, समाधि की दीवारों से सुन्दर मुक्ता, मनुष्य चक्षु विस्तृत अश्रु कण जान पड़ते हैं। मेरा अन्तरतर उद्वेलित हो उठा। किन्तु सिजदा करती हुई मैंने अपना मस्तक अवनत किया।

सम्पूर्ण विश्व क्या जीवन की कल्पना के रूप में नहीं है? मिट्टी में बीज अंकुरित होता है और फिर किसी समय वह मिट्टी में ही मिल जाता है। एक उद्भ्रान्त हाथी शत-शत जीवों

को अपने पैरों तले कुचल डालता है। समस्त जीवन नृशंसत की एक छाया है! मनुष्य के जीवन की दुख पूर्ण घटनायें, तरंगों के रूप में उठती हैं और मनुष्य को उसी प्रकार परि-वेष्टन करती हैं, जिस प्रकार एकत्रित और संगठित मेघों से सूर्य और आकाश आवृत हो जाता है। किन्तु विपद्-राशि से जीवन का अंधकार दूर करने वाली एक रश्मि का उसी प्रकार उद्रेक होता है, जिस प्रकार मेघावृत आकाश में एक स्वर्णाभ उज्वल प्रकाश की रेखा सम्पूर्ण तिमिर को बिलीन करती है।

समाधि के सम्मुख, अवनत मस्तक, मेरी अन्तरात्मा से निकला—"मुहम्मद की भाँति स्वर्ग का विहार करो।* वहाँ पर अल्लाह के विराट कार्यों को अपने नेत्रों से देखो। शैशव अवस्था में जिस प्रकार मैंने देखा था, आज भी मैं उसी प्रकार देखती हूँ मुहम्मद के उज्वल ऊनी वस्त्रों को धूलि-धूसरित—धूलि से अवलुण्ठित।S उन वस्त्रों की ओर अत्यधिक हाथ प्रसारित होते हैं। सहस्रों मनुष्य वस्त्रों को स्पर्श करने का प्रयास और प्रयत्न करते हैं और मुहम्मद का अनुसरण करने की चेष्टा करते हैं।......"

मैंने अपना मस्तक ऊंचा किया। मेरे नेत्रों ने संध्या कालीन अन्धकार में आद्र-भाराक्रान्त मनुष्य के चक्षुओं को शुक्ति-मुक्ता

---

*अधिकांश मुसलमानों का विश्वास है कि मुहम्मद साहब जेरशलम की मसजिद से सशरीर स्वर्ग गये थे और अल्लाह के साथ उन्होंने बातें की थीं। मुहम्मद ने स्वयं स्वर्ग और नरक को अपने नेत्रों से देखा था और अल्लाह की विराट सृष्टि का उन्होंने अवलोकन किया था।

S मुसलमानों में ऊनी वस्त्रों को पवित्र माना जाता है। उनका विश्वास है कि मुहम्मद साहब ऊनी वस्त्रों का प्रयोग में लाते थे।

के रूप में उज्वल देखा। जिन महापुरुषों ने भाग्यहीन मनुष्यों के उद्धार का प्रयत्न किया है, शुक्ति-मुक्ता मानो उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हैं। मेरे अधरों ने नीरव प्रार्थना आरम्भ की—

हे भगवान, पृथ्वी का जो सुख और उल्लास नष्ट हो गया है, उसे स्वर्ग में एकत्रित करो और उसके पश्चात् उस सम्पूर्ण आनन्द के आधार पर एक नवीन जगत की सृष्टि करो।

---

[९]

आत्म-वरज

अकस्मात् किसी के पैरों की आहट सुनायी पड़ी। मैं सावधान होकर सोचने लगी, 'क्या मेरा यह भ्रम है?' एक बार फिर नीरवता का आभास हुआ। परन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् किसी के पैरों की ध्वनि निरंतर कानों में आने लगी। उत्सुकता के आतिशय्य में मैंने उठकर देखा। उसी समय द्वार उन्मुक्त हुआ। उसके खुलते ही एक प्रकाश दिखायी पड़ा। उस प्रकाश में मैंने देखा एक खड़ा हुआ पुरुष, उन्नत ललाट-दीर्घ देह, उज्वल वेष-वीर सैनिक—मेरा राखी बंधु! अकस्मात् मैं विस्मयाभिभूत हो उठी।

क्षण-भर में मेरा वह सम्पूर्ण विस्मय पूर्ण प्रशान्ति में परिणत हो गया। 'क्या यह सम्भव है?' मैंने कुछ सोच डाला। मुझे विश्वास होने लगा, मानों इस पृथ्वी पर मैं कितने ही बार जन्म ले चुकी हूँ। अपने पूर्व जन्मों में मैंने जितने भी पुण्य-कार्य किये थे, वे समस्त इसी समय मेरे जीवन में आविर्भूत हुए हैं। आज मैं किसी एक जहानारा के रूप में नहीं हूँ, वरन् अपने अनेक जन्मों की एक सत्ता बन गयी हूँ!

मुख पर पड़े हुए आवरण को मैंने खोल दिया और उनके नेत्रों पर मैंने दृष्टिपात किया। उसी समय मुझे विश्वास होने लगा; मैंने जो पत्र पाया था, वह उनका लिखा हुआ न था।

औरङ्गजेब की प्रतारणा का वह एक सूत्रपात था। उस पत्र को पाकर, मैंने जो उत्तर भेजा था, उसे भी उन्होंने नहीं पाया। अपने गम्भीर नेत्रों से जो वे मेरी ओर देख रहे थे, उसका स्पष्ट अर्थ मुझसे अप्रकट न था। नेत्रों की भाषा में वे कह रहे थे—'अपराधहीन कुमारी-शाहजादी !' क्षण भर में ही उनके मुख-मण्डल पर मुझे परिवर्तन दिखायी पड़ा। उनका सम्पूर्ण शरीर काँप उठा। समस्त शरीर का रक्त तीव्र गति में प्रवाहित हो उठा। प्रत्येक क्षण में उनके नेत्रों में एक नया परिवर्तन दिखायी देने लगा। मुहूर्त-भर के लिए, अपने नित्य के इस संसार से अपने आपको कुछ ऊपर अनुभव करने लगी। इसके साथ ही एक गम्भीर प्रशान्ति का मुझे आभास हुआ। मुझे स्पष्ट जान पड़ा, जैसे मुझे किसी सुदृढ़ आधार की आवश्यकता है ! मैंने अपने मुँह को वस्त्रावृत कर लिया। कोमल स्वर में मेरे मुँह से निकल गया—'राखी बन्धु—मेरे प्रियतम !'

नीरवता का अन्त हुआ। मैं अब भी आवरण के भीतर से उनकी ओर देख रही थी।

इसी समय उन्होंने मेरे साथ उसी प्रकार सम्भाषण किया, जिस प्रकार मेरे पिता—सम्राट के दरबार को प्रथम दिन प्रवेश करने के समय उन्होंने मुझसे सम्भाषण किया था। मैंने अपने नेत्रों से स्पष्ट देखा, अपने मस्तक पर रखे हुए हाथ को उन्होंने ऊंचा किया। उनके उस हाथ का विकम्पन मुझसे छिपा न रहा। उसके पश्चात् ही उन्होंने अपने दोनों हाथों की हथेलियों को अपने वक्षस्थल पर रखा। उस समय वे अपने विशाल नेत्रों से पाषाण-निर्मित एक आवरण की ओर देख रहे थे !

उस स्थान की पवित्रता ने मेरे हृदय का स्पर्श किया। मैं अपने मन में कह उठी—इस पुण्य स्थान में प्रवेश करने के लिए

क्या किसी स्त्री को अधिकार मिल सकता है ? परन्तु शाहज़ादी ज़हानारा को उसका अधिकार मिला हुआ है। यह क्या किसी स्वर्गीय सुख से कुछ कम है !

स्तम्भ से परिवेष्टित एक प्रकोष्ठ में विस्तृत दरी बिछी हुई थी। उस पर बैठकर सहस्रों तीर्थयात्री, कुरान का पाठ करने में अपने जीवन का सौभाग्य समझते थे। आज इस पवित्र स्थान पर हम दो यात्रियों को छोड़कर और कोई न था। उस दरी पर बैठने के लिए मैंने अपने राखी बन्धु से अनुरोध किया। मैं स्वयं कुछ स्थान छोड़कर—दूरी पर बैठी। मुझे विश्वास था कि प्रियतम के गम्भीर वक्तव्य के आरम्भ होते ही, समाधि-स्थल पर निर्जनता की आवश्यकता होगी।

राखी बन्धु ने स्पष्ट शब्दों में मुझे बताया कि "हम दोनों के मिलने पर ही भारतवर्ष का सौभाग्य निर्भर करता है और इसी लिए मुझे आना पड़ा है।" उनके बताने पर ही मैं इस रहस्य को समझ सकी। आज के दिन पिता ने अपने विद्रोही पुत्र के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया था। पिता के इस निर्णय को असफल बनाने के लिए दो विश्वासघातकों ने जो प्रयत्न किया था, वह कुछ कम घातक न था। शाइस्ता खाँ और खलीलुल्ला खाँ ने दारा को इस बात का विश्वास दिलाया कि "युद्ध में सम्राट के जाने से जो विजय होगी, वह सम्राट की होगी, तुम्हारी न होगी। तुमको अपनी शक्ति प्रदर्शन करने का जो सुयोग प्राप्त हुआ है, वह व्यर्थ हो जायगा।" कितना बड़ा दुर्भाग्य था, दारा, तुम इतनी सरलता के साथ प्रतारित किये जा सकते हो, इसे मैं न जानती थी।

मेरी बातों को सुनते ही राखी बन्धु ने कहा—"मैं दारा के भ्रम को दूर कर सकता हूँ और मुझे यह कार्य कल ही करना होगा।"

मैंने राखी बन्धु की बात को सुना। मैं कुछ कह न सकी। मेरी अभिलाषा ऊपर शून्याकाश की ओर देखने की हुई। मुक्त वायु में बैठने की आकाङ्क्षा मेरी तीव्र हो रही थी। मैं समझती थी कि इस समय का प्रत्येक क्षण मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान है। मुझे एक ऐसे स्थान की खोज करना है, जहाँ पर मेरी कुछ गुप्त बातें हो सकें।

मैं अपनी गाड़ी पर बैठकर आगे बढ़ी और एक छोटे-से प्रासाद में आकर पहुँची। पहले उस स्थान में एक बाटिका थी। किन्तु आज उसका दूसरा ही रूप है। वहीं पर दो आमों के वृक्ष हैं। आम के ये वृक्ष धार्मिक घटना का परिचय देते हैं। आम के इन्हीं पेड़ों के नीचे मैं राखीबन्धु—अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करूँगी।

इसी समय वे आकर वहाँ उपस्थित हुए। द्वार उन्मोचन के साथ ही मैंने उनके मुख पर दृष्टिपात किया। वे क्षण-भर तक चुपचाप बने रहे। उनके दोनों नेत्र मेरे मुख पर थे। उनके नेत्रों की उज्वलता से मेरे आस-पास का सम्पूर्ण स्थान आलोक पूर्ण हो उठा। मैंने गम्भीर नेत्रों से उनकी ओर देखकर, उनको अभिवादन किया। मैं राखी बन्धु की ओर देख रही थी और मन में अनेक प्रकार की कल्पनाओं की सृष्टि कर रही थी। बाणकवि ने 'हर्ष चरित' नायक एक नाटक लिखा है। ग्रन्थकार ने अपने उस नाटक में जिस नाटक के चरित्र का चित्रण किया है, प्रियतम को देखकर मुझे उस समय उसकी याद आ रही थी। हृदय और आत्मा के सम्मिलन से प्रेम की उन घड़ियों की सृष्टि होती है, जिनका कहीं अन्त नहीं होता। बसन्त के आने पर जिस प्रकार वृक्षों में नये पत्तों की सृष्टि होती है, उसी प्रकार मेरे हृदय में प्रेम का स्रोत उत्पन्न हुआ मैंने अपने राखी बन्धु

को अभिवादन किया—अल्लाहो-अकबर।* उन्होंने मेरे अभिवादन का उत्तर दिया।

उस प्रासाद में इस समय भी बैठने के अनेक स्थान संगमरमर के बने हुए थे। राखी बन्धु ने मेरे बैठने के स्थान पर कुछ पत्तों को लाकर बिछाया। मैं उन पर बैठ गयी। जिन पत्रों ने हम दोनों के बीच एक संकट पूर्ण भ्रम उत्पन्न किया था, मैं उनके सम्बन्ध में सत्य बात जानना चाहती थी। मेरा विश्वास था कि राखीबन्धु ने मेरा कोई पत्र पाया नहीं और उन्होंने मुझे कोई पत्र भेजा नहीं। पत्रों की घटनाओं पर हम दोनों ही के सामने लज्जा और संकोच था।

इसके पाश्चात् दुलेरा (राखीबन्धु) ने कुछ देर तक मुझ से बातें कीं। उन बातों में उन्होंने बताया कि वे औरङ्गजेब के शिविर से किस प्रकार तीन-तेरह हो गये थे। दुलेरा को एक पत्र इस आशय का भी मिला था कि जिसमें उनको राज-दरबार में उपस्थित होने के लिए आदेश दिया गया था। दक्षिण-राज्य के सम्बन्ध में औरङ्गजेब ने अनेक प्रकार की चेष्टायें की थीं। परन्तु हरवंश के कुमार ने अपने विश्वस्त राजपूतों को लेकर नर्मदा नदी को पार किया था। औरङ्गजेब की सेना ने उसका पीछा किया था। परन्तु आक्रमण करने का साहस न हुआ था।

इसके उपरान्त समाचार मिला कि औरङ्गजेब ने मेरे भ्राता मुराद को अपने पक्ष में करने के लिए षड्यन्त्र की रचना की है।

---

* सामान्यतः मुसलमान भेंट होने पर एक, दूसरे से 'आलेकुम-उस सलाम' कहकर अभिवादन करते हैं और उसका उत्तर 'सलाम-आलेकुम' कहकर दिया जाता है। अकबर ने इस प्रथा को रोक कर 'अल्लाहो-अकबर का प्रचार किया था।

उस षणयंत्र में औरङ्गजेब ने मुराद को एक पत्र लिखा था। मुराद ने अपने सेनापतियों को प्रोत्साहित करने के लिए वह पत्र दिखाया था और सम्पत्ति एकत्रित करने के लिए मुराद ने सम्पत्ति शालियों के सामने भी वह पत्र उसस्थित किया था। उस पत्र की प्रतिलिपि आज भी मेरे पास है, जो इस प्रकार है :

पराक्रमी शाहजादा मुरादबख्श,

मुझे विश्वस्त संवाद मिला है कि शाहजादा दारा ने विष देकर पिता की हत्या की है और साम्राज्य पर अपना अधिकार किया है। दारा पिता के स्थान पर सम्राट बनने की अभिलाषा रखता है। इसी कारण शाहजादा, शाहशुजा ने एक शक्तिशाली सेना लेकर राज-सिंहासन पर अपना अधिकार करने के लिए और दारा के अन्यायपूर्ण अपराध की प्रतिशोध करने के लिए प्रस्थान किया है।

इस संवाद को सुनकर मैं तुमको यह पत्र लिखने के लिए विवश हुआ हूँ। मैं जानता हूँ कि हमारे भाइयों में तुमको छोड़-कर कोई भी सम्राट होने के योग्य नहीं है। यह सभी जानते हैं कि दारा विधर्मी है; वह मूर्त्ति-पूजक है और इस्लाम-धर्म का नाश करने वाला है।

शाहजादा शाहशुजा धर्मच्युत है और शिया-सम्प्रदाय का अनुयायी है। इस प्रकार वह हमारे धर्म का विरोधी है। कुरान के प्रति मेरी जो श्रद्धा है, उसकी सम्पूर्ण शक्ति ने मिलकर मुझे प्रेरणा दी है कि मैं तुमको सम्पूर्ण भारतवर्ष का सम्राट बनाने के लिए अपनी पूरी शक्ति से काम लूं।

इसका कारण है। यह बात सभी को ज्ञात है कि मैं आज से बहुत दिन पहले ही सांसारिक जीवन से नीरीह हो चुका हूँ

और मक्का में जाकर अपना शेष जीवन अतिवाहित करने के लिए मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। इसीलिए मैं अपने हृदय की अभिलाषा तुमसे प्रकट करना चाहता हूँ। तुम कुरान को स्पर्श कर के शपथ पूर्वक इस बात की मुझसे प्रतिज्ञा करो कि यदि मैं तुमको सम्पूर्ण साम्राज्य के सम्राट के पद पर अभिषिक्त कर सकूं तो तुम मेरे परिवार के प्रति उदार व्यवहार करोगे।

यदि तुम कुरान स्पर्श करके मुझे इस विषय में अपनी स्वकृति दे सको तो मैं भी शपथ पूर्वक तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण शक्ति, मेरा समस्त कौशल और राजनीतिक ज्ञान तुम्हारी सहायता और सफलता के लिए कार्य करेगा और तुमको दिल्ली के राज-सिंहासन पर बिठाकर, सम्राट बनाने में मैं अपनी कोई शक्ति उठा न रखूंगा।

मैंने अपने इस पत्र में जो बात तुमको लिखी है, उसके लिए प्रतिभू स्वरूप मैं तुम्हारे पास एक लाख रुपये भेजता हूँ। इस सम्पत्ति के द्वारा हमारी एकता और बन्धुता को चिरन्तन एवम् और चिरस्थायी बनाने का प्रयास किया जायगा।

हम दोनों ही सगे भाई हैं—एक ही पिता की सन्तान हैं। एक ही धर्म पर विश्वास रखते हैं और दोनों ही कुरान के मानने वाले हैं। इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे आने की मैं प्रतीक्षा करूंगा!

तुम्हारा विश्वासी बन्धु—औरङ्गजेब

इस पत्र को पढ़ कर लज्जा से मेरा मस्तक नीचा हो गया। हृदय में ग्लानि और पीड़ा को अनुभव करके मैं कह उठी—ओफ, इतनी बड़ी प्रतारणा! हमारे वंश का यह कितना बड़ा अपमान है! क्या इस प्रतारणा के द्वारा राज-सिंहासन का

प्रलोभन पूरा हो सकेगा ! औरङ्गजेब की भीषण मनोवृत्ति की कोई सीमा नहीं है। उनके हृदय में कितनी बड़ी हिंसक वृत्ति छिपी हुई है—उसी प्रकार, जिस प्रकार तैमूर के हृदय में छिपी हुई थी ! परन्तु तैमूर ने जो ख्याति प्राप्त की थी, वह ख्याति औरङ्गजेब के सौभाग्य को कभी स्पर्श न करेगी !

मेरे हृदय के भावों को राखी बन्धु ने अनुभव किया। उस समय सम्पूर्ण प्रासाद में निर्जनता थी। राखी बन्धु ने फिर कुछ कहना आरम्भ किया। इस समय उनके स्वर की गम्भीरता पूर्व की अपेक्षा अधिक हो गयी थी। वे अपने स्थान से उठ कर खड़े हो गये और वहीं पर पद-संचालन करते हुए वे कहने लगे—

"हमारे सामन्तों ने इस देश को साम्राज्य के रूप में परिणत किया है। राज-परिवार में जब कभी कोई समस्या उत्पन्न हुई है तो उसको सुलझाने के लिए राजस्थान के वीरों ने सदा सहायता की है और साम्राज्य की एकता को सुरक्षित रखने में सफलता पायी है। चन्द्रगुप्त, मौर्य और हर्षवर्द्धन के युग से लेकर, इस बिशाल देश में लगातार इस बात का स्वप्न देखा गया था कि किसी समय भारतवर्ष का राज्य, साम्राज्य के रूप में परिणत होगा !

कोई भी विदेशी शासक, सम्राट अकबर की समता नहीं कर सकता। सुलतान बाबर और हुमायूं की भाँति सम्राट अकबर भारतवर्ष में कहीं बाहर से न आये थे। उन्होंने अभिलाषा की थी, भारतवर्ष में एक साम्राज्य की स्थापना करेंगे। सम्राट अकबर ने भारत की महानता का आदर किया था। वे भरात के निवासियों का विश्घास करते थे, उनके बड़े-से-बड़े कार्य इस देश के निवासियों पर निर्भर रहते थे। वे भारतवर्ष के एक जन

थे। उस स्वर्गीय सम्राट अकबर की तुलना में आज कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता। सम्राट अकबर और औरङ्गजेब में भूमि-आकाश का अन्तर है। सम्राट अकबर भारतवासियों का जितना ही विश्वास करते थे, औरङ्गजेब उनसे उतनी ही घृणा करते हैं।"

मैंने साहस करने राखी बन्धु की ओर दृष्टिपात किया। उनके सरल, साधारण और शान्त नेत्र एकाएक आवेशपूर्ण हो उठे। उनकी आँखों की पुतली तेजी के साथ इधर-उधर घूमने लगी। अपने सन्मुख खड़े हुए मैंने उनको देखा, एक वीरोचित राजकुमार के रूप में! वे उस समय प्रतिभा, पराक्रम और पुरुषत्व के प्रतीक हो रहे थे।

राखीबन्धु ने कोमल कण्ठ से फिर कहना आरम्भ किया—"औरङ्गजेब को हिन्दूओं से घृणा है। उनकी भावना के अनुकूल उपयुक्त सामग्री हमारे पास है। यह बात औरङ्गजेब से अप्रकट नहीं है। हमारी निर्भीकता और शक्ति पर उनको किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, परन्तु उनको हमारे धर्म से घृणा है। अपने धार्मिक विश्वासों के कारण, औरङ्गजेब स्वर्ग पर अपना अधिकार मानते हैं और उसकी विवेचना करते हैं। कुरान के आदेशों के अनुसार, पृथ्वी पर शासन करने के साथ-साथ औरङ्गजेब स्वर्ग पर भी शासन करना चाहते हैं।

"सम्राट शाहजहाँ और जहाँगीर की भी कुरान पर श्रद्धा थी। परन्तु उनके शासन में प्रत्येक हिन्दू अपना अस्तित्व निरापद समझता था। औरङ्गजेब ईश्वर की भाँति अपने आप को शक्तिमान मानते हैं। शासन की राजनीति, उनके नेत्रों में शतरंज के खेल से भिन्न नहीं है। राज्य के प्रलोभन में सफलता प्राप्त

करने के लिए किसी भी कार्य और साधन में औरङ्गजेब अपराध नहीं मानते। सफल होने के बाद कोई भी अन्याय और अपराध, न्याय और राजनीति की कला में विवेचित होता है। औरङ्गजेब का यह अटूट विश्वास है। यदि औरंगजेब को अपने प्रयत्नों में सफलता मिलती है और वे राजसिंहासन के अधिकारी बनते हैं तो इस भारतवर्ष में सम्राट अकबर ने जिस अच्छाइयों को व्यवस्था दी थी, उन सब का एक साथ ही विनाश हो जायगा। पराधीनता के अन्धकार में भारतवर्ष न जाने कितनी शताब्दियों के लिए विलीन हो जायगा और सम्राट अकबर के समस्त आदर्श पूर्ण रूप से भस्मीभूत होंगे!"

राखीबन्धु की अलोचना को सुनकर मैं चीत्कार करके बोल उठी—'वह कभी भी विजयी न होगा!' सलीम चिश्ती के समाधि-मन्दिर में हृदय की वेदना का जो आतिशय्य कम हुआ था, राखी-बन्धु की अलोचना से वह द्विगुणित हो उठा। मेरा मन दुर्बल हो रहा था और जिस प्रासाद में मैं उपस्थित थी, वह जान पड़ता था मानो भीषण आँधी के द्वारा वह विक्षुब्ध हो चुका है। मैं अनुभव कर रही थी, जैसे मैं जिस समुद्र के किनारे पर खड़ी हूँ, उसका बाँध टूट चुका है और जल-प्रलय में अब बिलम्ब नहीं है!

क्षण-भर रुककर मैंने राखी बन्धु की ओर देखा और एक अतीत कालीन घटना का वर्णन मैंने आरम्भ किया—

बहुत दिनों की बात है, उस समय दारा की यौवनावस्था थी। दारा ने पिता, औरंगजेब, शुजा और मुराद को आमंत्रित किया था। आमंत्रण-भवन के पास में एक नदी की योजना थी, जिस भवन में आमंत्रण था, उसको दिखाने के अभिप्राय से

ही दारा ने हम सब को आमंत्रित किया था।* उस भवन के भीतर अनेक बार दारा को आते-जाते हम लोगों ने देखा। किन्तु औरंगजेब पश्र्ववर्ती द्वार से संलग्न बैठे रहे, वे एक बार भी उस भवन के भीतर न गये। अंत में अपने स्थान से उठकर औरंगजेब अदृश्य हो गये। सम्राट उनके इस व्यवहार से बहुत असंतुष्ट हुए थे। औरंगजेब ने इसके उत्तर में कहा था कि शाहजादा दारा सम्राट को बंदी करने के लिए षड़यंत्र रच रहे थे। पर वास्तव में ऐसी बात न थी। औरंगजेब ने स्वयं सम्राट को उनके तीनों पुत्रों के साथ बंदी करने के लिए एक योजना बनायी थी। उस समय मैंने चीतकार के साथ कहा—

"औरंगजेब हम सब को बंदी करेगा और एक रोशनआरा ही सुरक्षित रहेगी!"

राखी वन्धु ने गम्भीर होकर मेरी ओर देखा और कहा— "सम्राट के एक गुप्तचर को पता चला था कि रोशनआरा निरंतर औरंगजेब के साथ पत्र-व्यवहार करती है और औरंगजेब के समस्त षड़यंत्र उसी पत्र-व्यवहार का आधार लेकर रचे जाते हैं। सम्राट के अन्तःपुर की ऐसी व्यवस्था है कि उसमें पुरुषों की दृष्टि अक्षम और असमर्थ हो जाती है। परन्तु परदे की आड़ में स्त्रियों का अस्त्र पुरुषों के अस्त्र से कहीं अधिक कार्य करता है!"

इन कलुषित कार्यों की विवेचना सुनकर मैं विक्षुब्ध हो उठी मेरे अधीर कण्ठ से निकला—

"मुझ में यदि शक्ति हो तो मै चाँद बीबी की तरह युद्ध में

---

* 'आइने-अकबरी' में इस भवन का वर्णन विस्तार से किया गया है। वह भवन अकबर के शासन-काल में बनवाया गया था।

प्रवेश करती। सम्राट अकबर के विरुद्ध उन्होंने युद्ध के लिए प्रयाण किया था। हमारे ही वंशजों में कुलबधू नूरजहाँ बेगम ने कारावद्ध अपने स्वामी जहाँगीर को मुक्त करने के लिए हाथी की पीठ पर बैठकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया था और स्वामी को बंदी करने वाले महावत खाँ से युद्ध करके, स्वामी को मुक्त किया था।

अपनी बातों को समाप्त करके मैंने एक बार राखी बन्धु की ओर देखा। उनके मन के भाव चञ्चल हो रहे थे। अपने दाहिने हाथ की मुष्ठिका का कठोरता के साथ उन्होंने अपने आसन पर आघात किया। उनके इस आघात में संगमरमर का प्रस्तर-खण्ड अनेक टुकड़ों के रूप में परिणत होता हुआ जान पड़ा। इसी समय उन्होंने कहा—

"शाहजादा औरंजेब ने घोषणा की है, 'यदि तैमूर बंश के समस्त जन युद्ध के प्रांङ्गण में अवतरित होंगे तो भी मैं भयभीत न होऊंगा।' आज मैं इस बात की घोषणा करता हूँ, यदि सम्राट के समस्त भारतीय बीर संगठित होकर युद्ध में औरंगजेब की सहायता करेंगे तो भी सम्राट अधीनता स्वीकार न करेंगे।"

इस समथ मेरे मन की अद्भुत अवस्था रो रही थी। मैं उस समय की कल्पना कर रही थी, जब इस्लाम के प्रथभ आक्रमण पर हमारे पूर्व वंशजों ने आत्म-रक्षा की थी। उन पराक्रमी लोगों में सर्व श्रेष्ठ माणिकराय थे। मोहम्मद की मृत्यु के पश्चात् ही वे युद्ध-क्षेत्र में गये थे। उसके युद्ध-कौशल के गीत आज भी बूंदी-राज्य में श्रद्धा के साथ गाये जाते हैं। इसके पश्चात् महमूद गजनी के आक्रमण करने पर पर गोगा चौहान ने अपने छियालीस पुत्रों को लेकर भीषण युद्ध किया था।

चंदबरदायी उन दिनों में प्रसिद्ध कवि थे और वे चौहान वंशज राजपूत थे। उनके बीर साहित्य का स्मरण करके मैंने कहा—"शत्रु के भीषण आक्रमण पर बीर राजपूत गोगा ने जो युद्ध किया था और जननी जन्मभूमि की स्वतंत्रता के लिए जिस प्रकार उन्होंने मृत्यु का आलिंगन किया था, उसको कभी भुलाया नहीं जा सकता। मैं महमूद गजनी से घृणा करती हूँ।"

मेरे शब्दों से राखी बंधु को प्रोत्साहन की अनुभूति हो रही थी उनका सम्पूर्ण मुख मण्डल उद्भासित हो उठा। उन्होंने कहना आरंभ किया—

"उस पराक्रमी पुरुष की मृत्यु निष्फल नहीं गयी। भारतीय वीरों ने क्या कभी किसी देशान्तर में जाकर आक्रमण किया था? क्या उनके द्वारा कभी कोई मसजिद नष्ट की गयी? परन्तु पवित्र इस्लाम और अल्लाह के नाम पर राजस्थान के कोने-कोने में शत्-शत् बार रक्त की भीषण नदियाँ बहाई गयीं! भारत के एक-एक मन्दिर की लूट हुई और उनको विध्वंस किया गया! महमूद गजनी ने नगर कोट के प्रसिद्ध और पवित्र मन्दिर की अनिर्वाण ज्योति का सदा के लिए अन्त किया! गजनी के ही द्वारा सोमनाथ-मंदिर की रत्न-राशि नृशंसता पूर्वक लुण्ठित हुई! हिन्दू राजाओं की युगों और शताब्दियों की संचित सम्पति-राशि निष्ठुरता पूर्वक अपहरण की गयी। भारतीय देवताओं की मूर्त्तियाँ मन्दिरों से बाहर फेंकी गयीं जो आज भी जातीय जीवन के अस्थि-पञ्जर के रूप में समुद्र के गर्भ में पड़ी हुई उस बर्बरता और नृशंसता का स्मरण दिलाती हैं।"

अपनी बात को समाप्त करते ही राखी बन्धु ने आकाश की ओर दृष्टिपात किया। उनको देखकर ऐसा जान पड़ता था,

मानो वे दूरवर्ती शून्याकाश में कुछ अनुसन्धान कर रहेहैं। उनके मुख से निकले हुए शब्द अब भी मेरे कानों में अपनी प्रतिध्वनि कर रहे थे। मैंने लज्जापूर्ण पीड़ा का अनुभव किया। इसी समय उनके मुख पर वीरोचित विकास की स्फूर्त्ति दिखायी पड़ी। उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—

"सुल्तान महमूद ने चौहान राजपूतों के राज्य अजमेर की राजधानी पर आक्रमण किया था। परन्तु राजपूत वीरों के भीषण प्रहार के कारण उसको ससैन्य वहाँ से भागना पड़ा था। यही दृश्य उस समय भी उत्पन्न हुआ जब सुल्तान महमूद ने भारत पर अपना अन्तिम आक्रमण किया था। किन्तु चौहान राजा ने मृत्यु का आलिङ्गन किया। शताब्दी अतीत हो जाने पर, उसी निष्ठुरता की पुनरावृत्ति हुई। भारतीय भाग्य उस समय तिमिराच्छन्न फिर दिखायी पड़ा, जब दिल्ली के अधिपति—भारतवर्ष के अन्तिम राजा, पृथ्वीराज को विध्वंस करने के लिए कनौज के हिन्दू राजा ने मोहम्मद गोरी को आमन्त्रित किया! परन्तु उस भीषण विपद से कनौज भी सुरक्षित न रह सका! इन दोनों राज्यों के पतन के पश्चात् भारतवर्ष के मस्तक पर जिस परतन्त्रता के अक्षर अंकित किये गये, वे आज तक निर्मूल नहीं हो सके!"

मेरे मुख से निकला—"संयुक्ता!" किन्तु वह स्वर मेरे होठों से वहिर्गत न हो सका। उसका अस्तित्व मेरे कानों तक ही सीमित रहा। मुखावरण के भीतर मेरा मुख रक्ताभ हो उठा। परन्तु मेरे मुख से निकला हुआ शब्द राखी बन्धु ने सुन लिया। वे एक साथ चञ्चल हो उठे। अत्यन्त सतर्कता के साथ, मैंने उनके मुख की उज्वल रेखाओं को अनुसरण करने का प्रयास किया। उन्होंने फिर कहा—

"जगत के ऐश्वर्य की अपेक्षा, पृथ्वीराज की नेत्रों में संयुक्ता का स्थान अत्याधिक ऊंचा था। इसीलिए उसके प्रेम में पृथ्वीराज ने अपने राज्य और जीवन—दोनों के मोह का परित्याग किया था! न जाने कितनी बार राजपूतों ने प्रेम और सम्मान के लिए युद्ध-क्षेत्रों में प्राणों का बलिदान किया है! राजकुमारी! अपने मुख के आवरण को दूर करके अपने अन्तरतर का स्पर्श मुझे मिलने दो। उसी सम्पर्क और स्पर्श को पाकर मैं युद्धक्षेत्र में प्रवेश करूंगा! वह देखो, सम्राट अकबर का आकाश-प्रदीप जल रहा है। उस विराट स्थल में सम्राट अकबर ने जिस आकाश-दीपक का निर्माण किया था, वह आज भी युद्ध-क्षेत्र से लौटने वाले सम्राट के सैनिकों के लिए, फतेहपुर-सीकरी के मार्गों को आलोकित करता है! तुम्हारा सम्पर्क ही मेरे जीवन का उज्वल और चिरंतन आलोक बनेगा! अपने पूर्वजों की भाँति मैं इस्लाम की रक्षा की शक्ति-भर प्रयत्न करूंगा और अपने प्राणों के एक मात्र आलोक, राजकुमारी—जहानारा के सुख और सम्मान के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करूंगा!"

मैंने प्रियतम के शब्दों को सुनकर एक गम्भीर निःश्वास ली। बिना किसी संकोच और भय के मैंने अपने मुख का आवरण दूर कर दिया। इसी समय गम्भीर होकर, मैंने एक बार क्षण-भर के लिए प्रियतम की ओर देखा और उनके देखते-देखते मैंने अपने मुख के परदे को फाड़कर, उसके एक टुकड़े का चुम्बन लिया और फिर उसको प्रियतम की कलाई पर बाँध दिया! मैंने एक बार फिर उनकी ओर देखा। वे पलकहीन नेत्रों से मेरी ओर देख रहे थे।

समय बीत रहा था जान पड़ता था कि आज का आधा दिन, समस्त जीवन को अतिक्रम करेगा। इसलिए मैंने निश्चय

किया कि आज अपने राखीबन्धु—प्रियतम के साथ प्रकृति के कोमल सुख और सौन्दर्य का उपभोग करूंगी !

सूर्यास्त की रक्तिम आभा फैल रही थी। जान पड़ता जैसे सूर्योदय के समय हम लोग मार्ग के पथिक हो रहे हैं। उस समय आकाश का वैचित्र्य अत्यंत आकर्षक और मनोहर जान पड़ता था और विस्तृत शून्य नभ-मण्डल में अभिमानी मेघ-समूह, अग्नि के समान स्वर्णाभ दिखायी पड़ता था।

पुष्पों और हरे-हरे पत्तों के बीच से होकर, एक मार्ग शुष्क सरोवर की ओर चला गया था। इसी स्थान पर सम्राट बाबर जल-क्रीड़ा किया करते थे। इस सरोवर के मध्य भाग में एक ऊंचा विश्राम-स्थान बना हुआ था। उस पर बैठकर वे कभी-कभी विश्राम करते थे। किसी समय यह स्थान एक गाँव के रूप में था। उसका नाम था सीकरी। सरोवर के उच्चासन पर जाकर मैं बैठ गयी। वहीं पर मेरे निकट प्रियतम भी बैठे।

हमारी सेना में जितने भी सेनाध्यक्ष, औरङ्गजेब के पक्षपाती थे अथवा मीर जुमला एवम् नजवत खाँ की तरह जो लोग पहले से ही औरङ्गजेब को सहायता दे रहे थे, उनके प्रश्नों को लेकर हम दोनों में बातें होने लगी। उसी समय मैंने प्रियतम को विचार विभोर अवस्था में मस्तक सञ्चालन करते हुए देखा। जैसे वे किसी सूदूरवर्ती वस्तु को देखकर अपने निष्कर्ष का रूप निर्धारित कर रहे हों। उसी समय प्रियतम की पगड़ी में मुक्ताहार के दो मुक्ता-खण्डों को मेरे नेत्रों ने देखा। हृदय में उठते हुए आनन्द के उच्छ्वास को रोकने की मैंने चेष्टा की। प्रेमोपहार में दिया हुआ, वह मेरा ही मुक्ताहार था !

अपना स्वर परिवर्तन करते हुए उन्होंने कहा—"शाहजादी,

उस विराट स्थल को देखो, जहाँ पर किसी समय सम्राट बाबर और राणा संग्रामसिंह में युद्ध हुआ था।"

प्रियतम के संकेत पर मैंने उस स्थान की ओर दृष्टिपात किया। मैं सोचने लगी—"मेरे ही सहधर्मियों के कारण पवित्र भारतबर्ष में रक्त की नदियाँ बही थीं!"

राखी बन्धु की ओर देखकर मैंने कहा—"यदि सम्राज्य के लिए यही युद्ध अन्तिम होता और मेरे भाई दारा फतेहपुर-सीकरी में आकर उत्सव मनाते......!"

मेरी कही हुई बात के प्रति अवहेलना करके राखीबंधु ने कहा—"चित्तौर के लुण्ठन के पश्चात् फतेहपुर-सीकारी का निर्माण हुआ था। रक्त देखकर साम्राज्य की रचना की गयी थी और प्राणों के बलिदान पर ही साम्राज्य की एकता का संरक्षण होता है। उन्होंने स्वप्न देखा था कि एक नया विश्वास देकर एकता की रक्षा की जा सकती है। तैमूर बेग की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य की विशालता के लिए साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गये। सम्राट अकबर का स्वप्न भी इतना विराट और भीषण था कि लाखों और करोड़ों साधारण उस स्वप्न को सफल नहीं बना सकते थे। फिर भी हम लोग उस स्वप्न के छिन-भिन्न भाग में शेष रह गये हैं।"

मुझे अपना मस्तक भाराक्रान्त अनुभव हुआ। ऐसा जान पड़ा, जैसे हमारे लिए सुदृढ़ आधार की आवश्कता है, जहाँ पर हम दोनों अपने अस्तित्व को निरापद समझ सकें, यह सोचकर मैं कह उठी—

"सम्राट अकबर हिन्दुओं से प्रेम करते थे और राजस्थान की स्त्रियों के साथ उन्होंने अपना विवाह किया था।"

राखीबंधु ने कुछ उग्र होकर उत्तर दिया—"सम्राट अकबर

ने अपने जीवन काल में सदा हिन्दुओं का सम्मान नहीं किया। किसी समय सम्राट अकबर ने राजा पृथ्वीराज की रानी को प्रलुब्ध करने की चेष्टा की थी। इन्हीं पृथ्वीराज ने राणा प्रताप को लिखा था—'एक हिन्दू को हिन्दू का ही भरोसा हो सकता है।' नवरोजा के दिनों में सम्राट अकबर ने पृथ्वीराज की स्त्री को उसके पति के निकट अविश्वासी बनाने की चेष्टा की थी। उस अपमान के कारण रानी ने अपनी आत्म हत्या करने का निश्चय किया था।"

यह सुनकर मैंने कहा—"यदि कोई मनुष्य ऐसा हो सकता है, जिसके सम्मुख मैं श्रद्धापूर्वक अपना मस्तक अवनत कर सकूं तो इस योग्य मैं भारत-सम्राट अकबर को मानती हूँ।

क्षण-भर रुक कर मैंने फिर कहा—"उनके जीवन का किञ्चित संतोष प्राप्त करने के लिए मैं अपना सर्वस्व त्याग कर सकती हूँ।"

राखीबंधु के मुख-मण्डल पर खिन्नता की रेखाये अंकुरित हो उठीं। उनके सम्पूर्ण शरीर का रक्त चञ्चल और उष्ण जान पड़ा। मेरे शब्दों ने कठोरता के साथ राखीबंधु के आत्मा का दंशन किया।

मैंने सावधानी के साथ राखीबन्धु की ओर देखा। उनके मुख के सम्पूर्ण भाव अपूर्व और अनोखे दिखायी पड़े। उनकी उग्रता और कठोरता को देखते ही मेरा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। अपने दाहिने हाथ की एक उंगली को अपनी दाँतों से काटती हुई उनकी ओर देख कर मैंने धीरे-धीरे कहा—

"पृथ्वीराज की स्त्री की भाँति यदि मैं किसी हिन्दू राज-कुमार के साथ अपना विवाह कर लेती!"

बादलों के एक साधारण टुकड़े ने आकर सूर्य के प्रकाश

को आवृत कर लिया था—राखीबंधु का उद्भासित मुख-मण्डल मेरी एक छोटी-सी बात से ज्योतिहीन और म्लान हो गया था। परन्तु क्षण-भर में मेघावरण तिरोहित हो गया—प्रियतम के मुख मण्डल की रेखायें फिर परिवर्तन के रूप में मुझे दिखायी देने लगीं! मैं चुप थी किन्तु 'यदि मैं किसी हिन्दू राजकुमार के साथ अपना विवाह कर लेती।' की प्रतिध्वनि अब भी कानों में हो रही थी। प्रियतम निर्निमेष नेत्रों से मेरी ओर देख रहे थे। कदाचित् उनके तीव्र नेत्रों से अप्रकट न रही थी, आवरण के भीतर मेरी मुस्कुराहट!!

मैं चुप थी। राखीबंधु ने गम्भीर होकर कहा—"राजकुमारी, मुझे क्षमा करना। मेरे अन्तरतर में जागारित हो उठी थी, क्षात्रोचित सैनिक वृत्ति। यद्यपि मैं आपका आदेशानुवर्ती हूँ। मैं सम्राट अकबर का एक सामन्त हूँ।"

कह कर प्रियतम ने कलाई में बाँधे हुए मेरे बंधन का अपने अधरों से चुम्बन लिया। मैं एकाएक अस्थिर और चञ्चल हो उठी। मेरे नेत्र प्रियतम के मुख पर थे। उनके उस चुम्बन के लेते ही मेरे कोमल शरीर में जैसे विद्युत का स्पर्श हुआ! मैं अवाक् थी और अपने अचञ्चल नेत्रों से उनकी ओर देख रही थी!

दूसरे दिन प्रातःकाल तक मैं फतेहपुर-सीकरी में अवस्थान करूंगी—यह निर्णय प्रियतम को वाञ्छित न था। इसलिए कि पार्श्ववर्ती परिस्थितियाँ भीषण थीं। इसलिए उन्होंने स्वीकार किया कि प्रभात होने के कुछ समय पूर्व तक हम दोनों यहाँ विश्राम करेंगे। उस अवस्था में प्रियतम की सेना को प्रासाद के नीचे रात व्यतीत करनी थी और एक प्रकोष्ठ में उनको मेरे निकट!

प्रियतम के साथ प्रासाद में मेरा यह अद्वितीय सम्मिलन था! ख्वाजा मेरा एक अनुचर था। उसने हम दोनों के लिए एक सुन्दर स्थान में भोजन का आयोजन किया था; युगों और शताब्दियों के संयोचित समाज-नियन्त्रण का संरक्षण हम दोनों न कर सके। प्राचीन व्यवस्था का अतिक्रमण हुआ। अपने हाथों से प्रियतम को भोजन परोसने की मेरी अभिलाषा भी थी।

जहाँ पर हम दोनों भोजन करने बैठे थे, उसके बाहर, दीवार के निकटवर्ती स्थान पर सेविका कोयल एक पात्र में कुछ पुष्पों को लिए खड़ी थी। दीपक-स्थलों पर दो मोम-बत्तियाँ रखी थीं और उस स्थान के दोनों ओर प्रदीप जल रहे थे। एक शुभ्र पात्र में परिष्कृत तरबूज के कुछ टुकड़े और एक दूसरे पात्र में अंगूर रखे थे। इन अंगूरों के पेड़ को बाबर ने काबुल से मंगाकर अपने यहाँ उनको व्यवस्था दी थी। अमरूद, आम आड़ू, सूखे खजूर, खूबानी और बादाम ईरान तथा उसके निकटवर्ती देशों से भारतवर्ष में लाये गये थे। सुवर्ण-पात्रों में मूल्यवान मदिरा रखी थ। प्रथम रात्रि में प्रवेश करने वाली नवयौवना बधू की भाँति अपने लज्जापूर्ण साथों से दोनों कानों को मैंने पुष्पों से अलंकृत किया। दूसरे अंगों को बिविध पुष्पालंकारों से विभूषित करके मैंने एक बार संतोष का अनुभव किया!

इसी समय मैंने अपने प्रकोष्ठ के द्वार पर प्रियतम को देखा! उनका मुख, अन्य दिनों की अपेक्षा, आज मुझे और भी अधिक सुन्दर जान पड़ा। उनकी मुखाकृति भीषण संग्राम, अदम्य उत्साह और अद्भुत शक्ति का परिचय दे रही थी। उनका हंसता हुआ मुख-मण्डल देखकर मैं प्रसन्न हो उठती। किन्तु अधिकांश अवसरों पर उनकी तीव्र दृष्टि और गम्भीर मुख-मुद्रा को देख मैं भयभीत हो उठती।'

मेरे समीप आकर प्रियतम एक आसन पर बैठ गये। उनके नेत्रों का प्रताप मुझे एक बार दृष्टिगोचर हुआ। हम दोनों का उपदेशन, एक दूसरे के विपरीत दिशाओं की ओर था। जहाँ पर हम दोनों बैठे थे, उसके ऊपरी भाग पर, एक छोटी-सी अर्द्ध-गोलाकार दीवार थी। वह बहुत दिनों तक सूर्य वंशीय नरेशों के प्रताप से आलोकित और उद्भासित रह चुकी है। उनके वंशज, वीर पुरुषों को सदा मैंने श्रीरामचन्द्र की महानता दी है।

हम दोनों ही एक, दूसरे के अत्यन्त निकट बैठे थे। फिर भी मुझे अनुभव होता था, मानो एक अदृश्य अतलस्पर्शी गम्भीरता, हम दोनों के बीच एक विराट व्यवधान की सृष्टि करती है! गम्भीर होकर मेरे नेत्र प्रियतम को बार-बार देखने लगते थे।

अकस्मात मैं एक प्रश्न कर बैठी—"संग्राम में जब एक वीर पुरुष दूसरों की हत्या करता है, उस समय उसके मनोभावों में किस प्रकार की अनुभूति होती है?"

इसी समय मैंने अपना बहुमूल्य पान-दान प्रियतम के हाथों के निकट रख दिया। उसको अपने हाथों से स्पर्श न करके भाव पूर्ण नेत्रों से उन्होंने उसकी ओर देखा। मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—

"राजपूतों में यदि अस्त्र धारण करने की क्षमता न होती तो आज राजस्थान का अस्तित्व न होता और मुगल-साम्राज्य भी अब तक शेष न रहता। राजकुमारी, हन्ता और निहत—दोनों के हृदयों में एक स्रोत प्रवाहित होता है। राजपूतों की परिभाषा में उसी को जीवन कहते हैं!"

मेरा सम्पूर्ण शरीर पाषाणवत् था और स्थिर नेत्रों से प्रिय-

तम की ओर देखकर उनके मुख से निकले हुए शब्दों को मैं सुन रही थी। उन्होंने फिर कहा—

"नदी गम्भीर सागर की गवेषणा करती है। मनुष्य का जीवन समस्त सीमाओं को अतिक्रम करके, सृष्टि के विशाल और विराट जीवन की ओर अग्रसर होता है। एक वीर सैनिक जब अपने सम्राट के लिए युद्ध करता है तो वह दूसरों की हत्या करता है! उस समय मनुष्यत्व के स्वत्वाधिकार से ही उसे प्रेरणा मिलती है। जिस दिन एक राजपूत की युद्ध मे मृत्यु होती है, उस दिन वह समझता है कि मैंने क्षत्रिय-धर्म का पालन किया!"

मैं अवाक् थी और मेरे अचचंल नेत्र प्रियतम की ओर देख रहे थे। सहसा मेरे हृदय की गति तीव्र हो उठी। मुझे जान पड़ने लगा—मैं अपने प्रियबन्धु दारा को खो बैठूंगी!' मैं अस्थिर हो कर कल्पनायें करने लगी—"हम लोगों में ऐसा कौन है जो चिरंतन परिर्तन की अभिलाषा रखता है? मैंने अपने अदृष्ट के विरुद्ध विद्रोह किया है! मनुष्य अदृष्ट के प्रवाह में ही तो प्रवाहित होता है! उसके विरुद्ध उसका अस्तित्व ही कितना होता है!!

इसी समय राखीबन्धु के मुख पर मैंने मधुर और कोमल रेखाओं से संदर्शन किये। उन्होंने कहा—

"जगत के महापुरुषों और सत्य के अन्वेषकों ने इस जीवन को ओस के बिन्दुओं के समान अस्थायी और क्षणभंगुर स्वीकार किया है, राजकुमारी, हम जीवन के जिस स्वर्गीय सुखों का उपभोग करते हैं, क्या उसका अर्थ यह नहीं है कि हमारा जीवन-स्रोत जीवन के अनन्त सागर की ओर निरंतर प्रवाहित होता है।

मेरे दिये हुए पान-दान पर प्रियतम ने अपने हाथ की उंगलियों को रखा। उनके तीव्र और तेजस्वी नेत्रों ने एक बार मेरी ओर देखा मेरा हृदय उल्लास से परिपूर्ण हो उठा। नीरव भाषा में उनके नेत्रों ने मुझसे कुछ कहा। लज्जातिशय्य के कारण मैं कोई उत्तर न दे सकी। इसके उपरान्त, दूसरी ओर दृष्टि निक्षेप करते हुए प्रियतम ने मेरे प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—

"प्राचीन काल की बात है। भारत में एक जन सम्राट थे। उनका नाम था अशोक। उनके शासन-काल में किसी जीव की हत्या करने में कठोर नियंत्रण था। महाराज अशोक का विश्वास था कि हम इस जीवन में जो कुछ करते हैं, उसका फल दूसरे जन्म में हमें मिलता है। शीशे के एक निर्मल खण्ड के समान उनका अन्तःकरण उज्वल और पवित्र था!"

क्षण-भर रुक कर और मेरी ओर देखकर राखीबन्धु ने फिर कहा—"महाराज अशोक अहिंसावादी थे। उनके शासन-काल में हिंसा न हो सकती थी। किन्तु उन्होंने शत्रुओं के लिए इस भारतवर्ष का द्वार खोल दिया था। उत्तर की ओर से इस देश में शत्रुओं का जो आक्रमण हुआ, उसमें भयानक हिंसावादी और हत्याकारी थे!"

मैंने राखी बन्धु के प्रत्येक शब्द को अत्यन्त मनःसंयोग के साथ सुना था। परन्तु उनकी बातों का तात्पर्य कई दिनों के पश्चात् मेरी समझ में आया। उस समय मुझे अकथनीय सुख और सन्तोष प्राप्त हुआ।

उस समय वे मेरे सम्मुख बैठे थे। उनकी उज्वल पगड़ी, राजपूती वेश और वर्ण-विन्यास, मेरे प्रलोभन का प्रमुख कारण था। उनकी कमर में उज्वल कीनखाब की कमरबन्द थी। उनके

चरणों के नीचे सुवर्ण रेखाङ्कित कमल-दल अद्भुत सौन्दर्य का प्रदर्शन कर रहा था।

विस्तृत आकाश में अनन्त ताराओं का समागम था। उनमें से एक भी तारा हमको आलोक देने में दरिद्रता और कृपणता का परिचय न देता था। जो तारा हम दोनों के अत्यन्त निकट जान पड़ता था, वह अन्तःपुर की वाटिका के पार्श्ववर्ती दो वृक्षों की आड़ में अन्तर्हित हो गया। मैं उस तारा के अस्तित्व का बार-बार स्मरण करने लगी—मैं सोचने लगी, यदि मैं उसको, उसके स्थान पर रोक सकती! मेरे इस रोकने का कारण था। और वह यह कि अत्यन्त निकटवर्ती होने के कारण उसके प्रकाश और विकास के साथ मेरी कुछ आत्मीयता हो गयी थी। समीप होने के कारण उसने आज प्रियतम के साथ मेरी अनेक बातें देखी थीं—मैंने उसका अविश्वास न किया था! मेरा यह भी विश्वास न था कि वह इतनी शीघ्रता के साथ मेरा सम्पर्क और सम्बन्ध विच्छेद करेगा! इसीलिए यदि मैं उसको—उसके स्थान पर रोक सकती!

हम दोनों एक, दूसरे के समीप बैठ कर—अनेक क्षण पर्यन्त शाहजादा दारा और सम्राट की अलोचनायें करते रहे। उसके पश्चात् मैं उठकर खड़ी हो गयी। उनके आहार का समय हो चुका था। प्रियतम ने सम्राट अकबर की प्रथा का अनुसरण कर के, बिदा के समय मेरे साथ सम्भाषण किया। भूमि-स्पर्श करके उन्होंने सिजदा की।* उनके सम्भाषण में कितना माधुर्य था—

---

* एक अल्लाह को छोड़कर मुसलमान किसी दूसरे को मस्तक अवनत नहीं करना चाहते थे। सम्राट अकबर ने इसका विरोध किया और इसके स्थान पर 'सिजदा' करने का प्रचार किया 'सिजदा' का अर्थ होता

कितनी कोमलता थी! कितना स्नेह था और कितनी गम्भीर ममता थी। उनके जीवन में एक ओर पराक्रम और शौर्य की सीमा थी, एवम दूसरी ओर सौन्दर्य और माधुर्य की पराकाष्ठा थी!!

सम्भाषण करते हुए प्रियतम ने कहा—"राजकुमारी, आप का कोई समाचार न मिलने पर, मुझे भय होने लगा था, आपने मुझे विस्मरण कर दिया है। दिन में मैं आपके जीवन के प्रति विभिन्न कल्पनायें करता और रात में उन्हीं कल्पनाओं के स्वप्न देखता। निद्रा-भंग होने पर एक भीषण अभाव की पीड़ा को अनुभव करता। निस्सन्देह, अपने जीवन में यह छवि और यह सौन्दर्य अन्यत्र देखने को नहीं मिला। भविष्य में भी न मिलेगा! जितने दिन व्यतीत हो रहे थे, मैं उतना ही दूर हो रहा था। कल्पनायें जीवन को आश्रय देती थीं। इतने दिनों तक श्रद्धापूर्वक जिसका स्मरण किया था, इतने निकट बैठकर आज उसको अपने नेत्रों से देखता हूँ!"

क्षण-भर नीरव रहकर प्रियतम ने फिर कहा—आज आपसे मिलकर और आपकी स्नेहमयी बातों को सुनकर हृदय से सम्पूर्ण अविश्वास तिरोहित हो गया है। भाग्य के अतिरिक्त अब अन्य कोई शक्ति हमारे पथ का अवरोध नहीं कर सकती।"

स्थिर नेत्रों से प्रियतम की ओर देखकर मैं उनकी बातों को सुन रही थी। उनकी बात कब समाप्त हुई, मुझे इसका कुछ

है भूमि-चुम्बन। 'सिजदा' का प्रचार करने के कारण-सम्राट अकबर की अनेक मुसलमानों ने कठोर आलोचनायें की थीं। छत्रसाल ने जहानारा के साथ उसी 'सिजदा' को महत्व दिया।

ज्ञान न रहा। अकस्मात् मैंने देखा, अपने स्थान से वे शीघ्रता के साथ बाहर चले गये। एक दूसरी दिशा की ओर मैं धीरे-धीरे पद-संचालन करने लगी।

गुम्बज के नीचे पहुँच कर मैं रुकी। उस समय किञ्चित वायु का सञ्चालन हो रहा था। अपने हाथों से मैंने कुछ सुन्दर और सुगन्धित पुष्पों को तोड़ा। अपने मुखावरण से उज्वल डोरा निकाल कर उन पुष्पों की एक माला बना डाली। दिल्ली के राजप्रासाद में किसी एक रात में और भी मैंने इसी प्रकार की माला बनायी थी! किन्तु आज जान पड़ता था, आकाश अन्य दिनों की अपेक्षा और भी अधिक दूर हो गया है—आज आकाश के नक्षत्रों की स्वर्णाभा समुद्र की नीलिमा मिश्रित दिखायी दे रही है।

मेरे सामने एक प्रश्न है—जीवन की एक समस्या है। वह समस्या है गुलाब की। गुलाब के सम्बन्ध में क्या होगा?* मैंने अपने जीवन में एक स्वप्न देखा है—उस स्वप्न के साथ मेरा अभिनय चल रहा है। उसके कारण मैंने एक अद्भुत जगत की यात्रा की है। उस यात्रा की समस्त वस्तुओं को मैंने आश्चर्य के नेत्रों से देखा है। उस यात्रा के स्थान-स्थान पर मेरी सत्ता एक गम्भीर जलाशय का रूप लिये हुये, रहस्यमय झरने के रूप में परिवर्तित हुई है!

---

* गुलाब का प्रश्न—जहानारा के निकट राखीबन्धु छत्रसाल का प्रश्न है। यही चिन्तना उसके जीवन में एक गम्भीर समस्या बन गयी है। उस समस्या को सुलझाने में उसके सामने कितनी कठिनाइयाँ हैं—कितने भीषण काँटे हैं और रहे हैं, उन्हीं का चिन्तन और मनन जहानारा के इन शब्दों में हैं।

मुखवारणच्युत सुन्दरी नवबधू के मुख के समान सुभ्र चन्द्रमा सुदूरवर्ती भूमि-खण्ड के दूसरे पार्श्व में विलीयमान कुहासा को अतिक्रम करके निर्मल नीलाकाश में अग्रसर हो रहा है, रजनी दिन की भाँति समुज्वल है। जलाशय का शेष भाग सुनहले सेतु के रूप में पुण्यतीर्थ-स्थल की ओर चला गया है और स्रोत का रूप धारण करके कुहासा-फतेहपुर-सीकरी की ओर अग्रसर होता हुआ दिखायी दे रहा है।

उसके पश्चात् तैमूर के शासन-काल में वही कुहासा, निहत राजपूत सेना के रूप में परिणत हुआ! वह राजपूत सेना सम्राट अकबर और जहाँगीर के शासन-काल में उज्जैन और दूसरे प्रान्तों की ओर से आयी थी। उन राजपूतों के शरीर में रक्त की लालिम न थी, उनके शरीर पर पीत वर्ण वस्त्रों का अभाव था। उनके श्वेत और उज्वल वस्त्र इस बात का प्रमण दे रहे थे कि वे अपने साथ कोई गोपनीय कथा लेकर आये हैं। उन्हीं की उज्वल आभा आज आकाश की नीलिमा श्वेत और शुभ्र हो उठी है!

बिना किसी भावना के मैंने पूर्व की ओर दृष्टिपात किया। उन्मुक्त खिड़की के मार्ग से राखीबन्धु के प्रासाद की छत दिखायी पड़ी। उसके नीचे के भाग में राखीबन्धु खड़े थे। प्रस्तर निर्मित दीवार की आड़ में होकर मैंने छिपने की चेष्टा की। अपनी श्वास-प्रश्वास को रोककर मैंने राखीबन्धु से अपने-आपको छिपाने का पूर्णः प्रयत्न किया। मेरे आकुल प्राण उच्छ्वासित हो रहे थे—कदाचित् राखीबन्धु मेरी ओर दृष्टि निक्षेप करेंगे!

परन्तु राखीबन्धु निश्चल और अटल अपने स्थान पर खड़े थे। किसी दूरवर्ती शून्य स्थल की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखकर

मानो वे कल्पना-जगत में किसी निगूढ़ रहस्य का अनुसन्धान कर रहे थे। उनके नेत्रों में प्रज्वलित अग्नि की ज्योति को मैं देख रही थी। उनकी ओर एक वशाल सेना बढ़ती हुई चली आ रही थी। यह सैन्यदल राखीबन्धु के चतुर्दिक प्रदिष्ठित होकर आसन्न संग्राम में हमारी सहायता करेगी।

इसी समय राखीबन्धु अदृश्य हो गये। वायु के एक क्षीण आवेग से दीपक बुझ गया। मैं वेदना विभूति हो उठी। अपने शरीर के सभी अङ्ग और प्रत्यङ्ग काँपते हुए मुझे जान पड़ने लगे। उसी समय मुझे दिखायी पड़ने लगे, धैर्यहीन हठी दारा शक्तिसाली किन्तु स्थूल बुद्धि मुराद और मेरे अस्वस्थ पिता-सम्राट! उस स्थान पर मैं एक निर्बल नारी के रूप में दृष्टिगोचर हो रही थी।

मैंने अपने विश्राम-स्थल की ओर प्रत्यावर्तन किया। मेरे शयनागार के सम्मुख—द्वार के सन्निकट दासी कोयल सोयी हुई थी। दूसरे द्वार से प्रियतम के प्रकोष्ठ में प्रवेश करने का मार्ग था। अकस्मात् मैं कल्पना-जगत में विचरण करने लगी—

"क्या मैं अपने जीवन में फिर उनके दर्शन न करूंगी? युद्ध में जाने के पूर्व प्रत्येक सैनिक और सेनाध्यक्ष, अपने प्रिय-जनों और प्रियतमा से साक्षात् करने के लिए समय की सुविधा करता है। प्रियतम क्या मुझे क्षण-भर देखने का अवसर न देंगे? अभी तक मैं उनसे अपने हृदय की सञ्चित और चिर रक्षित बात कर नहीं सकी—अभी तक मैंने उनको अंधकार में रखा है और मैं स्वयं उज्जल प्रकाश का प्रश्रय प्राप्त नहीं कर सकी!"

मैं लगातार गम्भीर होती जा रही थी। उनके द्वार के निकट जा कर मैं खड़ी हो गयी। धैर्य पूर्वक प्रियतम के द्वार पर मैंने

अपने कोमल कर का सञ्चालन किया ! मेरा हृदय शान्त और स्थिर था। कभी-कभी अपने हृदय की तीव्र गति को मैं अनुभव करने लगती थी।

मै नहीं जानती—आज भी मैं जान नहीं सकी, किस प्रकार द्वार खुल गया। अर्ध निद्राभिभूत अवस्था में मैंने द्वार के भीतर प्रवेश किया। उस द्वार के भीतर व्याघ्र-चर्म के ऊपर प्रियतम सो रहे थे। उनके मस्तक पर पगड़ी न थी उनका मुख मण्डल, चन्द्र-किरण के समान समुद्भासित हो रहा था। मैंने पहले कभी उनको इतना सुन्दर नहीं देखा था। उनके होठों पर हास्य की रेखायें न देखकर मैं सोचने लगी—'प्रियतम प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे हैं!' मेरी वाहु वेष्टित माला के पुष्पों की सुगन्धि से वह स्थान सुवासित हो उठा !

शुभचन्द्रालोक में जिस प्रकार प्रकृति अपना आवरण तिरोहित करती है, उसी प्रकार मैंने अपने हृदय का दुर्बल आवरण परिवर्तन किया और रहस्यमयी रजनी का आश्रय लिया। धीरे-धीरे आगे बढ़कर मैं प्रियतम के समीप पहुँची और उनके पार्श्व में बैठ गयी।

मेरा सम्पूर्ण शरीर पाषाण हो रहा था। मैंने अपने मुख को प्रियतम के वक्षों में छिपा लिया। मेरे उपवेशन की परिस्थिति धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही थी। क्षण-भर के पश्चात् मैं प्रियतम के सन्निकट पहुँच गयी। उस समय मैं अनुभव करती थी मानो मैं गम्भीर जलाशय में डूबी जा रही हूँ! मेरा सम्पूर्ण शरीर मुझे अस्थिर और अशान्त जान पड़ता था। इस समय मेरी अवस्था ठीक वैसी ही हो रही थी, जिस प्रकार जल में डूबने के समय किसी की होती है। मेरे प्राण काँप रहे थे !

मैं जीवन की एक अज्ञेय परिस्थिति में प्रवेश कर रही थी।

मेरे निर्बल प्राण विकम्पित हो रहे थे। उस परिस्थिति की चिर तृप्ति और चिर शांति प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति मेरी ओर बढ़ रही थी! शांति की नहीं—ज्वाला की मुझे अनुभूति हो रही थी—प्रियतम के पास में बैठी मैं क्या अनुभव कर रही थी—मैं नहीं जानती थी। मैं आज भी उसे नहीं जान सकी!!

इसी समय अपने शयनागार—विश्राम-स्थल के एक निकट-वर्ती भाग में मुझे पद-ध्वनि सुनायी पड़ी। अपने कातर प्राणों के साथ मैं उठ बैठी। प्रियतम ने मस्तक संचालन किया और अर्द्ध निद्रित अवस्था में उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली। मेरे नेत्र उनकी ओर देख रहे थे।

तत्परता के साथ मैं उठ कर खड़ी हो गयी। एक क्षीण पद-निक्षेप के साथ स्वर्ग से मेरा विच्छेद हुआ! आकुल और भय-भीत हृदय के साथ प्रियतम का सन्निकट त्याग कर मैं अपने स्थान की ओर लौटी। इस समय मुझे ज्ञान हुआ, मेरी पुष्प-माल वहीं पर छूट गयी है।

"विराट स्थल को अतिक्रम करके किस निशाचर ने यहाँ आकर पद-निक्षेप किया? वह किसके पैरों की ध्वनि थी?" मेरे आकुल प्राण रह-रह कर प्रश्न करने लगे।

मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति खो चुकी थी। परिस्थिति के स्पर्श से मुझे किसी प्रकार की अनुभूति न होती। मेरी अवस्था ठीक उस मनुष्य की भाँति हो रही थी, जिसको विद्युत ने स्पर्श किया हो! अपने स्थल पर आकर एक दरी के ऊपर लेट गयी और बायें हाथ पर माथा रख कर मैंने सोने का प्रयत्न किया। क्षण भर में निद्रा की गम्भीरता के कारण मैं चेतनाहीन हो गयी।

प्रभात होते ही मैंने एक तीव्र चीत्कार सुना। मेरी निद्रा

भंग हुई। मेरी बढ़ती हुई उत्सुकता के समय कोयल ने आकर मुझे बताया—"रात को प्रहरी ने एक जन की हत्या कर डाली है। वह प्रासाद में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहा था।"

मेरी आँखें तन्द्रा से प्रभावित थीं। मैं कुछ समझ न सकी। ऐसा जान पड़ा, मानो रात्रि में जो मैंने पद-ध्वनि सुनी थी, यह चीत्कार और यह दुर्घटना कदाचित उसी के दुष्परिणाम स्वरूप हुई। मैंने साधारण रूप से प्रश्न किया—

"कोयल, राखीबन्धु कहाँ हैं?"

कोयल ने मेरी ओर देखकर उत्तर दिया—"प्रभातबेला वे अपनी सेना के साथ प्रासाद छोड़कर गये हैं।"

इसी समय मुझे अपनी पुष्प-माला की फिर याद आयी और उसकी स्मृति ने निशाकालीन अनेक चित्रों को मेरे नेत्रों के सम्मुख मूर्तिमान कर दिया। आकुल आत्मा के साथ, मैं अपने अन्तःकरण में सोचने लगी—

यह पुष्प-माला क्या मेरे जीवन में किसी नवीन घटना का सूत्रपात करेगी? मैं उनके साथ फिर किस प्रकार साक्षात् करूंगी!

नौबतखाने से आगे बढ़कर मैंने मार्ग में एक शव-यात्रा देखी। मुझे स्पष्ट जान पड़ा, एक दीन-दरिद्र हिन्दू की मृत देह को लेकर अनेक जन नदी की ओर दाह करने के अभिप्राय से जा रहे हैं। साथ में मैंने एक अधिकारी को देखा। मैंने उससे उत्सुकतापूर्वक पूछा—"यह किसका शव है?"

अधिकारी ने तत्परता के साथ उत्तर दिया—"रात को मारा गया व्यक्ति।"

मैं कुछ सोचने लगी। इसी समय मुझे फिर सुनने को मिला—यह निहत व्यक्ति स्थूल बुद्धि रखता था किन्तु उसका स्वर

अत्यन्त मधुर था। बेगम साहिबा को प्रासाद में प्रभात होने के पूर्व अपना संगीत सुनाने जा रहा था। यही उसका अपराध था। उसके साथ एक बहुमूल्य कंकण था। प्रहरी का विश्वास था कि यह कंकण चोरी का है। यद्यपि उसकी माता ने कहा कि मेरे पुत्र ने जीवन में कभी भी चोरी नहीं की।

घटना को सुनकर मैंने अधिकारी से कहा—"यह कंकण, निहत व्यक्ति को मैंने दिया था। उसके संगीत से मैं बहुत प्रसन्न हुई थी। इस कङ्कण की अब उसकी माता अधिकारिणी है।"

यह कह मैंने एक, दूसरा कङ्कण उतार कर दिया और साथ ही मैंने कहा—"मेरा यह उपहार उसकी माता के लिए है। संगीत के इस गुणी व्यक्ति की मृत्यु ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया है। उसकी मृत्यु का मुझे दुख है।"

ग्रीष्म काल के जलते हुए दिनों में जिस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी अशान्त चञ्चल हो उठती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण आगरा-निवासियों को मैंने चञ्चल और विक्षिप्त अवस्था में देखा। कितने ही प्रसन्न थे और भविष्य का निरीक्षण करके आकाश-कुसुम की कल्पनायें कर रहे थे। कितने ही विप्लव की कल्पनाओं से अधीर और आकुल हो रहे थे।

आगरा-निवासी स्त्री-पुरुषों में अनेक प्रकार की जन श्रुति का विस्तार हो रहा था। मैंने सुना—"सम्राट के विरुद्ध, औरङ्गजेब और मुराद ने अपनी निश्चित बिजय की घोषणा की है। उनके वीर सैनिक उज्जैन के युद्ध को जीत कर गर्वोक्ति कर रहे हैं। उन लोगों ने यह भी घोषणा की है कि साम्राज्य में विजयी होकर पर्सिया और तुर्किस्तान पर हम आक्रमण करेंगे।

औरंगजेब ने प्रचार कर रखा था कि सम्राट की सेनाओं में सहस्रों विश्वासघातक ।"

अपने बंधु दारा से भेंट करने के लिए मैं प्रस्तुत होने लगी। इसी समय मुझे राणा छत्रसाल का एक पत्र मिला। पत्र को देख कर मुझे इस बात के समझने में देर न लगी कि पत्र शीघ्रता में लिखा गया है। उसमें लिखा था—

"शाहजादा दारा को यदि अपनी सेनाओं पर सम्पूर्ण अधिकार न दिये जायंगे तो दारा, सम्राट के सम्मुख अपनी अत्म-हत्या करेंगे। कदाचित् सम्राट के विचारों में परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं है और वे दारा के प्रस्ताव का समर्थन भी न करेंगे।"

अपने पत्र के अंत में राणा छत्रछाल ने एक बात का अनुरोध किया था। मेरा लिखा हुआ वे अपने लिए एक पत्र चाहते थे। उस पत्र को वे स्मारक के रूप में अपने साथ रखना चाहते थे। उनका यह अनुरोध मेरे जीवन का चिर-सम्मान था! आनन्दोच्छ्वास से मेरा अन्तःकरण उद्वेलित हो उठा।

अपने प्रासाद के एक प्रकोष्ठ में मैं बैठी थी। वहाँ से उठकर मैं उस स्थान के लिए चली, जहाँ पिता उपस्थित थे। मध्यभाग में कई स्थलों को मैंने पार किया और उतावली के साथ अग्रसर हुई। अन्तःपुरी के निकट पहुँचकर गौराङ्गिनी-भवन को अतिक्रम किया।* अन्तःपुरी का यह भाग अनेक बहुमूल्य रत्नों की

---

* मुगल बादशाहों के अन्तःपुर में योरप की गोरी, महिलाओं के रहने की व्यवस्था थी। अकबर जहाँगीर, शाहजहाँ और औरङ्गजेब की अन्तःपुरी में योरप की गोरी महिलायें बेगमों के रूप में रहती थीं। उनके रहने का 'फ़िरङ्ग-महल' के नाम से प्रसिद्ध था।

शिल्पकला के साथ निर्माण किया गया था। इस स्थान की प्रत्येक वस्तु अत्यन्त सुन्दर, उज्वल और आकर्षक थी। फतेहपुर-सीकरी की स्वप्नपुरी का स्मरण करके मैंने एक दीर्घ निःश्वास ली।

मैं पिता के समीप पहुँच गयी, यमुना के ऊपरी भाग पर बने हुए एक क्षुद्र, प्रकोष्ठ में वे विश्राम कर रहे थे। सम्मुख पहुँचते ही मैंने उनके मुख-मण्डल पर निरीह और एकाकी भावना के दर्शन किये। उनके मुख के इस भाव का समझना एक साधारण आदमी के लिए सम्भव नहीं था। उनकी यह भावना पहले भी—उनके यौवन काल में किसी समय मैंने देखी थी।

साक्षात् होते ही मैंने फतेहपुर-सीकरी का एक पुष्प पिता को उपहार में दिया। कृतज्ञता से उनका मुख-मण्डल उद्भासित हो उठा। एक साधारण उपहार भी उनको प्रसन्न करने के लिए बहुत-कुछ काम करता था। उनके समीप बैठकर श्रद्धापूर्वक मैंने उनकी ओर देखा। उनके साथ ही अनेक कल्पनायें मेरे हृदय में उठने लगी!

पिता ने स्नेह पूर्वक मुझसे कहा—"शाहजादा दारा के हाथों में शासन का सम्पूर्ण भार मैंने सौंप दिया है। मेरा विश्वास है कि वे इसके अधिकारी हैं और उनमें इतनी क्षमता और योग्यता है कि वे अपने पिता के राज्य की रक्षा कर सकेंगे और औरङ्गजेब के बंदीघर से अपने पिता को मुक्त कर सकेंगे।"

इस आलोचना के साथ-साथ पिता का शीर्ण मुख-मण्डल रक्त आवेग से उद्वेलित हो उठा। सुलेमान शुको का अभाव पिता को भयभीत कर रहा था। उनका विश्वास था कि सुलेमान के साथ जो सेना है, वह शिक्षित और शक्तिशाली है। राजा

जयसिंह ने सुलेमान से अनुरोध किया था, फिर भी अपनी सेना लेकर सुलेमान आगरे नहीं आये और शाहशुजा का साथ देने के लिए वे गये हैं !

मैं कोई भी उत्तर न देकर चिंतित हो उठी। मैं सोचने लगी—अम्बराधिपति राजा जयसिंह साम्राज्य के विश्वासी सामन्त है। किन्तु अदूरदर्शी दारा ने एक बार उनको गायक कहकर अपमानित किया था। जयसिंह के हृदय में उस उपहास के प्रतिशोध की क्या भावना नहीं हो सकती ?

मैंने पिता की हथेली में अपना मस्तक रख दिया ! उसी समय पिता के हाथों में मुझे सेव की एक अद्भुत गन्ध की अनुभूति हुई। मैं पिता की बात का कोई उत्तर न दे सकी। चिन्तातुर अवस्था में मैंने उस स्थान को छोड़ दिया।

वहाँ से हटते ही प्रासाद के एक उच्च भाग से अपनी विशाल सेना को मैंने देखा। सैनिक अत्यन्त तत्परता के साथ एकत्रित हो रहे थे। अश्वारोही सैनिक अपने वस्त्रों से और अस्त्रों से सुसज्जित थे।

इसी समय मैंने और भी अनेक सैनिक दलों को आते हुए देखा। उनको देखकर मेरे अन्तःकरण में विभिन्न कल्पनायें उठने लगीं। मैं सोचने लगीं—युद्ध में हमारी विजय निश्चित है। दूसरे दिन, सन्ध्या होने के पूर्व, चन्द्रमा के उदय होने पर अपने राखीबन्धु के साथ ताजमहल के निकट साक्षात् करने जाऊंगी। परन्तु उसके पश्चात् मुझे सुनने को मिला की औरंगजेब और मुराद की सेनायें आक्रमण करने के उद्देश्य से चल पड़ी हैं। सम्राट के रोकने पर भी शाहजादा दारा ने सुलेमान की प्रतीक्षा नहीं की। चतुर्दिक युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं।

दारा के साथ भेंट करने का समय हो रहा था। उद्यान के

मार्ग में कुछ सशस्त्र प्रहरी जनों को संरक्षण के उद्देश्य से उपस्थित होने के लिए मैंने आदेश दिया। कोयल और हाजी को भी मैंने इसी प्रकार के आदेश दिये।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे मैंने अपने स्थान से चलना आरम्भ किया और मैं समाधि की ओर अग्रसर हुई। सूर्यास्त कालीन रश्मियाँ अपनी अंतिम आभा का प्रदर्शन कर रही थीं। पता नहीं यह रक्तिम आभा किस प्रकार के भविष्य की सूचना दे रही है! संध्याकालीन आकाश शीतल वायु के प्रवाह से आमोदित हो उठा है। पृथ्वी की दूसरी ओर अर्ध नीलाकाश में चन्द्रमा का उदय हुआ है। आज से पूर्व इन मार्गों में इतनी सुन्दरता का प्रदर्शन कभी न हुआ था, पथ के वृक्षों की पक्तियाँ इतनी अच्छी कभी न हो सकी थीं और न कभी ताज महल के सौन्दर्य ने इतनी गम्भीरता धारण की थी, सम्पूर्ण प्रासाद-अप्सरा पुरी के प्रासाद के रूप में दिखायी दे रहा है। पृथ्वी पर कभी भी वायु इतनी शीतल और मधुर नहीं हो सकी और न कभी पक्षियों ने ही इतने मधुर स्वर में गीत गाये। वृक्षों के समस्त पत्ते उत्साह और उल्लास का परिचय देते हुए आमोदित हो उठे हैं!

मैं निश्चल थी—मेरा अन्तरात्मा निष्पन्द हो रहा था। मैं अनुभव करती थी, मेरी माता अपने अपूर्व सौन्दर्य और प्रताप को लिए हुए मेरी ओर आ रही हैं। अतीत काल की अपेक्षा उनके मुख पर आज अधिक स्नेह का प्रस्फुरण हो रहा है!

मैं अपने बन्धु दारा से मिलने जा रही थी। सम्पूर्ण मार्ग शान्त और अवसन्न था। उसी समय मुझे सुनायी पड़ा—'तुम सब मेरी सन्तान हो फिर यह विडम्बना कैसी!' मैं विस्मित हो कर इधर-उधर देखने लगी। कहीं कोई दिखाई न पड़ा। मेरे

हृदय की गति तीव्र हो रही थी। उसी समय मुझे फिर सुनायी पड़ा—'तुम्हारे सब के जीवन में मेरा ही रक्त है—मेरे ही प्राण हैं! फिर यह एक, दूसरे के सर्वनाश की प्रस्तुति कैसी !!' मैं आश्चर्य चकित हो उठी। यह किसने कहा है?

अगरे के राजप्रासाद के पीछे चन्द्रमा की एक क्षीण ज्योति विकीर्ण हो रही थी ऐश्वर्यशालिनी पुण्यवती माता की स्मृति बार-बार मेरे नेत्रों के सम्मुख मूर्त्तिमान होने लगी। मैं सोचने लगी—मा, तुम्हारे जीवन-काल में जिस ऐश्वर्य और प्रताप का प्रकाश सम्पूर्ण साम्राज्य में फैला हुआ था, क्या उसे साम्राज्य सुरक्षित न रख सकेगा? नहीं तो वह निष्प्रभ क्यों हो रहा है? तुम जिस दिन साम्राज्य से अन्तर्हित हुई, थीं, उसके पश्चात् श्वेत पाषाण, बहुमूल्य काञ्चन और मणिमुक्ता लाकर एकचित्र किये गये और उनके सहयोग, संगठन और सम्मेलन से ताजमहल का निर्माण हुआ। उसके पश्चात् सम्राट ने रक्त का आवरण देकर अपनी समाधि की रचना की।* पिता सम्राट को तुमने शक्ति प्रदान की थी। परन्तु उसके पश्चात् उनके अन्तःपुर में

---

* ताजमहल की दूसरी ओर यमुना-तट ऊपरी भाग में रक्त वर्ण के प्रस्तरों से सम्राट शाहजहाँ ने अपनी समाधि का निर्माण कार्य आरम्भ किया था। वह रक्तवर्ण समाधि सम्राट शाहजहाँ की शूरता, वीरता और गौरव प्रतीक होगी। ताज बीबी की समाधि श्वेत और शुभ्र संगमरमर के द्वारा निर्मित पवित्रता और सुन्दरता की प्रतीक होगी। इन दोनों उद्देश्यों का प्रदर्शन करने वाली समाधि को संयुक्त करने का कार्य करेगा कृष्ण प्रस्तर निर्मित सेतु। कृष्ण वर्ण प्रस्तर मृत्यु का प्रतीक होता है। अपनी समाधि को पूरा करने के पहले ही सम्राट शाहजहाँ बंदी हो गये थे। औरङ्गजेब ने स्पष्ट कहा था—बन्दी जन की समाधि का कोई अर्थ नहीं

अन्यान्य स्त्रियों का आगमन हुआ। उन्होंने उस शक्ति का अपव्यय किया।*

विराट प्राङ्गण के द्वार को कभी मैंने खुलते और कभी बन्द होते हुए सुना और सुनी अपने पीछे—मरमर प्रस्तर के ऊपर किसी के पैरों की आहट। उस पदक्षेप की ध्वनि से मैं अपरिचित न थी। सतर्क और सावधान होते ही मैंने अनुभव किया मानो एक संगीत मुझे अज्ञेय अवस्था में आकर्षित करने का कार्य कर रहा है।

मैंने घूम कर देखा। आज राखीबन्धु के शरीर पर शुभ्र वस्त्रों की शोभा थी। उनकी भुजा में पीले रंग का बाजूबन्द था, उनके अभिवादन के समय मैंने उनकी पगड़ी में मुक्ताहार को देखा। कदाचित् हार की इस योजना का कोई विशेष उद्देश्य था।

एक छोटे-से जलाशय के निकटवर्ती उच्चासन पर मैंने उपवेशन किया। द्वार पर खड़े हुए युद्ध के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कल्पना करना, मेरी शक्ति के बाहर था। मैं इस बात को भली भाँति जानती थी कि राखीबन्धु ने कभी किसी हिन्दू सेनापति का आज्ञापालन नहीं किया। साम्राज्य के सेनापति दारा की क्षमता के सम्बन्ध में उनकी एक निश्चित् धारणा थी। वे जानते थे, तीस सहस्र सम्राट की अश्वारोही सेना, शत्रु-पक्ष से अधिक सन्तुष्ट है। उसके अतिरिक्त सेना में अन्तःपुर के नौकर

होता? किन्तु शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् औरङ्गजेब ने ताज बीबी के पार्श्व में समाधिस्थ करने की आज्ञा दी थी।

* सम्राट शाहजहाँ के अन्यान्य मुगल बादशाहों की भाँति विवाहित और अविवाहित अनेक स्त्रियाँ थीं परन्तु जहानारा ने उनकी एक ही पत्नी ताज बीबी को महत्व दिया है उसी का यहाँ पर संकेत है।

जीर्ण कर्मचारी, निर्बल-नीच और धोबी-धानुक थे ।* उन्होंने कभी युद्ध के अस्त्रों का स्पर्श नहीं किया । मृत्यु का आलिंगन करना उनकी शक्ति के सर्वथा बाहर है । इसी अवस्था में कल प्रभात काल युद्ध के लिए अग्रसर होना है ।'

चम्बल नदी के निकट विरोधी सेना के साथ युद्ध करना निर्धारित किया गया है। इस नदी के समस्त सेतु सुरक्षित हैं । किन्तु उसका एक पुल, राजा चम्पतराव के राज्य में जो पड़ता है, वही एक अरक्षित है। उसका कारण यह है कि राजा चम्पतराव ने स्वीकार किया है कि वे अपने राज्य के भीतर से शत्रु-सेना को निकलने की आज्ञा न देंगे।

मेरी इस बात का उत्तर देते हुए राखीबन्धु ने कहा था—

"यदि राजा चम्पतराव अपनी स्वीकृति की रक्षा कर सकें।"

खलीलुल्ला खाँ की भाँति घातक मनुष्य कदाचित् कोई मिले। राखीबन्धु स्वयं उस पर विश्वास न करते थे। उसी खलीलुल्ला खाँ को तीस सहस्र अश्वारोही सेना का सम्राट की ओर से अध्यक्ष बनाया गया है। राखीबन्धु ने अपने अवरुद्ध गले से कहा था।—"शाहजादा दारा यदि खलीलुल्ला की मीठी बातों में आकर भूल न करेंगे तो औरंगजेब का सेना के सम्मुख आगे बढ़ना कठिन न होगा।"

---

* मुगल काल में साम्राज्य की रक्षा के लिए एक स्थायी सेना रहा करती थी और जब युद्ध आरम्भ होता था उस समय भर्ती करके एक नयी सेना खड़ी कर ली जाती थी। इस व्यवस्था के अनुसार सम्राट के पास तीस सहस्र अश्वारोहियों की एक स्थायी सेना थी। उसके सिवा जो नयी सेना खड़ी की गयी थी उसके सिपाही लड़ने की अपेक्षा युद्ध से भागने में अधिक अभ्यासी थे।

औरङ्गजेब के साथ होने वाले इस युद्ध की राखीबन्धु को जितनी चिन्तना थी, उसे मैं भलीभाँति जानती थी। सम्राट की व्यवस्था दुर्बल थी और शाहजादा दारा अदूरदर्शी थे। राखी-बन्धु ने कई बार मुझे सतर्क किया था और अस्पष्ट मुझसे कहा था कि मैं दारा को सावधान कर दूं।

मैंने अपना कुछ समय नीरव चिन्तना में अतिवाहित किया। उसके पश्चात् चिंतित और शोकित अवस्था में मैंने अपने राखी-बन्धु से पूछा—"क्या होगा ? आपकी प्रसिद्ध अश्वारोही सेना और राजा रामसिंह का सैनिक दल क्या करेगा ?"

कुछ देर तक राखीबन्धु ने उत्तर न दिया।

मैं राखीबन्धु की ओर देख रही थी। वे निस्तब्ध और चिंताकुल थे। मेरे अस्थिर नेत्रों की ओर देखकर उन्होंने कहा—

राजकुमारी, ताजमहल के जलते हुए दीपक की ओर देखो। अपनी श्रद्धा का अर्ध्य देते हुए वह ज्योति निरंतर जल रही है।"

अपने अचञ्चल नेत्रों से राखीबन्धु के मुंह की ओर देखकर मैं उनकी बातों को सुन रही थी। उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात किया। उत्तेजना के कारण उनका मुख-मण्डल रक्तिम आभा में परिणत हो उठा। उन्होंने कहा—

"राजकुमारी, आप जानती हैं कि आप के पिता सम्राट के सम्मान में उदयपुर के देव-मन्दिरों में निरंतर दीपक जलते हैं। राजस्थान की सेनायें अपनी पूरी शक्ति के साथ युद्ध-क्षेत्र में सम्राट की पताका के नीचे एकत्रित होंगी।"

राखीबन्धु के साथ मैं राज-प्रासाद की ओर अग्रसर हुई उन्होंने समाधि के दर्शन किये और मेरे नेत्र उनके मुख पर थे।

अत्यन्त गम्भीर होकर राखीबन्धु ने कहा—"इस पृथ्वी पर पुरुष शासन करते हैं। पुरुष की शक्ति ही सृष्टि करती है और पुरुष की शक्ति ही उस सृष्टि का विध्वंस करती है। अपनी ही शक्ति अपना विनाश करती है। परन्तु पुरुष की इस शक्ति को नियंत्रण करने वाली भी एक शक्ति होती है, उसे नारी की शक्ति कहते हैं।"

राखीबन्धु मेरी ओर देख रहे थे और मैं उनके मुख का निरीक्षण कर रही थी।"

अकस्मात् पुष्पों की सुगन्ध से उस स्थल की सम्पूर्ण वायु आमोद पूर्ण हो उठी। मैंने क्षण-भर में सोचा 'क्या यह सुगन्ध समाधि मन्दिर की वाटिका से आ रही है?' उसी समय एक अव्यक्त भावना और अदम्य चिन्तना-शक्ति, आकाश की ओर मुझे आकर्षित करने लगी। प्रासाद के इस गम्भीर गुम्बज में दो हृदयों को शान्ति उपलब्ध करने के लिए आश्रय मिलेगा! राखी बन्धु अपनी पगड़ी को श्वेत प्रस्तर पर बिछा दिया। उस पर बैठ कर जीवन की एक अज्ञेय कल्पना में मैं प्रवाहित होने लगी! मैं प्रियतम के साथ आज अपने अन्तःकरण की बात करूंगी—जीवन के चिर संचित संताप को मिटाकर शान्ति और सुषमा प्राप्त करुंगी! मैं अपने प्रियतम...........!! मेरी शक्ति लगातार दुर्बल होती जा रही थी! मुझे ऐसा जान पड़ता था, जैसे मेरे सम्पूर्ण अंग में......!!

इसी सयम एक अवाञ्छनीय घटना का उद्रेक हुआ। नजवतखाँ के जीवन की कुछ बातें उठ खड़ी हुई। कभी भी उसका स्मरण नहीं किया था! मेरे जीवन के साथ उसका कोई सम्पर्क न था। प्रियतम के नेत्रों में क्रोध का आवेश अप्रकट न रहा। मैंने उनके मुख से सुना—

"औरंगजेब की सेना में सब से पहले मैं नजवत खाँ का अंत करना चाहता हूँ।"

मैं कुछ समझ न सकी। अकस्मात् मेरे मुख से निकल गया—'क्यों ?'

मैं प्रियतम की ओर देख रही थी। उनके नेत्र खुले थे! उनका कण्ठ शुष्क हो रहा था। उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—

"इसलिए कि मैं उससे घृणा करता हूँ।"

मैं अवाक् रह गयी।

अपने मन में मैं अनेक कल्पनायें करने लगी। उसी समय मुझे याद आया। फतेहपुर में जब मैंने एक बार नजवत खाँ का नाम लिया था, उस समय प्रियतम चञ्चल हो उठे थे। उसके बाद उन्होंने नजवत खाँ के सम्बन्ध में क्या-क्या सुना, मैं कुछ नहीं जानती। इस बात पर विश्वास करती हूँ कि नजवत खाँ की छाया भी मेरे जीवन में कभी नहीं पड़ी और न भविष्य में ही पड़ सकती है!

मैंने अपना मुख का परदा हटा दिया। इसलिए कि प्रियतम मेरे सम्पूर्ण मुख को देख सकें और इस बात का निर्णय कर सकें कि मैं कभी भी नजवत खाँ की तरह के मनुष्य के साथ अपने जीवन का नियोग नहीं कर सकती।

प्रियतम को अधिक गम्भीर देखकर, साहस पूर्वक मैंने उनसे प्रश्न किया—"आपको मेरे पत्र की उस बात का क्या स्मरण है? जिसे मैंने सोच-समझकर अपने जीवन में स्थान दिया था और अपने प्राणों से मैं जिसे कभी दूर न कर सकूंगी।"

मैं चुप हो गयी। प्रियतम के मुख-मण्डल में अनेक परिवर्तन मेरे देखने में आये। मैंने फिर कहा—

"आपको कुछ स्मरण है ?"

अपने शरीर की सम्पूर्ण शक्ति जैसे मैंने खो दी हो। मैं उन की ओर देखने लगी।

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा—"अनेक वर्ष पहले मैंने एक स्वप्न देखा था।"

उन्होंने अपनी आँखें खोलकर मेरी ओर देखा। उस समय की उनकी भावपूर्ण दृष्टि अपने जीवन में मैं कभी भूल न सकूंगी।

उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहना आरम्भ किया—"वास्तव में मैंने किसी समय एक स्वप्न देखा था। उस समय मैं युवा था और स्वप्नों पर विश्वास करता था। राजकुमारी जहानारा, भारतवर्ष के सम्राट की आत्मजा जहानारा और मेरे जीवन की प्राणेश्वरी —प्रियतमे जहानारा, मैं जानता हूँ कि दिन के सूर्यालोक में निशा कालीन स्वप्न का कोई अस्तित्व नहीं रहता ! स्वप्न तो निद्रित अवस्था की अस्थायी छाया है।"

जीवन, पहेलियों का एक विशाल पात्र है। मैं नीरव अवस्था में बैठी थी और प्रियतम की ओर देखकर कुछ सोच रही थी। मैंने अनुभव किया, जीवन में आत्म त्याग का ही महत्व अधिक है। धैयपूर्वक मैंने पूछा—"ताजमहल में क्या प्रवेश करेंगे ?"

प्रासाद के प्रवेश-मार्ग में एक मुल्ला साहब कुरान का पाठ कर रहे थे। हाजी मुल्ला को बुलाकर लाल मसजिद में ले आया। समाधि-मन्दिर में उस समय प्रकाश हो रहा था। शुक्र-वार का दिन था।

प्रत्येक शुक्रवार की रात को मेरी माता की समाधि के ऊपर बहुमूल्य वस्त्र वितरण किये जाते थे। मैंने अपने राखीबन्धु से

कहा—"आप अपने मुख से कोई ऐसी प्रिय बात कहें, जिसका उत्तर इस मन्दिर की प्रतिध्वनि के द्वारा मिले।"

उन्होंने कहा—"पृथ्वी के दूसरे भाग में जहानारा का नाम, श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाय।"

उसी समय मैंने सुना, मन्दिर के भीतरी भाग में सहस्त्र देवदूतों के कण्ठ से मेरा नाम एक साथ घोतिष हुआ।

अपनी लेखनी की मैं अब असमर्थता अनुभव करती हूँ। मैं अनेक विषयों पर विस्तृत कथायें लिखने की शक्ति रखती हूँ। किन्तु उस गुम्बज के नीचे प्रियतम के साथ होने वाले विचार विनिमय को लिखने में अपने को मैं सर्वथा असमर्थ पाती हूँ! प्रियतम के जिस आश्रय और प्रश्रय को मैं प्राप्त कर सकी, वह विवाह की किसी भी प्रणाली के द्वारा कभी सम्भव न था!

यदि दारा युद्ध में विजयी हुए और प्रियतम विजयी होकर लौटे तो हिमालय के पार्वत्य प्रदेशीय मन्दिरों की मैं यात्रा करूंगी। प्रियतम ने निश्चय किया—

"चम्बल नदी का युद्ध, मेरे जीवन का अन्तिम युद्ध होगा!"

बिदा होने के समय मैंने पूछा—"क्या मैं उस पवित्र पर्वत की तीथ-यात्रा कर सकूंगी?"

अपने नेत्रों की स्नेहमयी ज्योति का प्रस्फुरण करते हुए प्रियतम ने गम्भीर होकर मेरी ओर देखा और उत्तर देते हुए कहा—

"मैं निराश नहीं होना चाहता। जहानारा, यदि हम दोनों की यात्रा सफल न हो सकी तो अमरलोक में मैं अपनी प्रियतमे की प्रतीक्षा करूंगा!"

---

[१०]

पराजय, बन्दी और बलिदान

दूसरे दिन प्रभातकाल मैं अपने प्रासाद में थी। वहीं से मैंने मैदानों को पार करती हुई एक विराट सेना को देखा। उस विस्तृत राजपूत सवारों की सेना में युवराज दारा की राजहस्ती दिखायी पड़ी! पर्वत के समान ऊंचा मस्तक देख कर मेरा सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा। निस्सन्देह, वह एक अद्‌भुत दृश्य था!

बूंदी-राज्य की अश्वारोही सेना युद्ध-क्षेत्र की ओर चली जा रही थी। युवराज दारा की विशाल सेना अनेक टुकड़ों में बंटी थी। प्रत्येक समूह एक दूसरे के पीछे चला जा रहा था। सैनिकों के उज्वल वस्त्र, उन्नत ललाट और उद्वलित स्वाभिमान को देख कर, मुझे सहसा विश्वास होने लगा, मानो वे सभी लोग युद्ध में विजय प्राप्त किये बिना लौटेंगे नहीं। मेरे शरीर में जैसे विजली का स्पर्श हो रहा हो।

उस विराट सेना में छत्रसाल के वीरत्व का प्रदर्शन मेरे नेत्रों से छिपा न था। जितनी दूर तक सम्भव हो सका, मेरे नेत्र अपने राखीबन्धु को देखते रहे। उनके पीछे यावद्वीप नामक उनका अश्व था। चौहान वंश के विख्यात प्रतिष्ठाता गर्गा के घोड़े का नाम भी यही था। रक्तवर्ण के एक प्रस्तर के समान घोड़े का उन्नत मस्तक देखने में अन्यन्त सुन्दर मालूम होता था।

शाहजादा दारा की विस्तृत सेना जितना ही आगे बढ़ती जाती थी, नगाड़ों की ध्वनि उतनी ही निर्बल होती जाती थी। वीर-संगीत अब निस्तब्ध-सा मालूम होता था। थोड़ी ही देर में ऊंट, नेत्रों से ओझल हो गये। मैं अब अपने स्थान पर खड़ी न रह सकी। वहाँ से चल कर अपने पिता के पास पहुँची। उत्पन्न होने वाली परिस्थिति से पिता कितने अशान्त हो चुके थे, यह बात मुझसे छिपी न थी। साथ ही मैं इस बात को भी जानती थी कि उनको धैर्य देने का कार्य एक साधरण कार्य नहीं है।

पिता अपनी अशान्त भावनाओं के साथ केवल अशुभ लक्षणों को ही देख रहे। उनकी दुश्चिन्ता को मिटाने के लिए मैंने सम्राट बाबर के चारों पुत्रों का इतिहास वर्णन करना आरम्भ किया। सम्राट बाबर के चार पुत्र थे—हुमायूं, कामरान, अश्करी और हिन्दाल। कामरान की अनेक बातें औरङ्गजेब के साथ मिलती थीं। उन्होंने हुमायूं को राजगद्दी से उतारने के प्रयत्न किया था। सम्राट बाबर हुमायूं को ही सिंहासन पर बिठाना चाहते थे। कामरान को यह सहन न था। परन्तु अन्तिम दिनों तक उनको सफलता न मिली।

मेरी बातों को सुनकर पिता विक्षिप्त दृष्टि से इधर-उधर देखने लगे। मैंने गम्भीरता के साथ उनको देखा। मुझे जान पड़ा, जैसे वे किसी दूरवर्ती घटना को खींचकर निकट लाने की चेष्टा कर रहे हों इसी समय उन्होंने मेरी ओर देखा। उनके दृष्टि निक्षेप करते ही मैं सावधान हो उठी। मेरी बात का उत्तर देते हुए पिता ने कहा—

"कामरान अपने ही वंश के विध्वंसकारी थे। इसीलिए हुमायूं ने उनके नेत्रोन्मीलन का प्रयत्न किया था और यही कारण था कि कामरान को अपने नाशकारी प्रयासों में सफलता मिली

थी। मिर्जा अशकरी का अकबर के साथ व्यवहार अपराधपूर्ण होने पर भी, सज्जनता मिश्रित था। मिर्जा हिन्दाल ने सम्राट हुमायूं के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग किया था। तैमूर वंश ने क्या यह सोचा था कि उनके वंश का अंत हो जायगा?"

मुझे अपने अपराध का ज्ञान हुआ। मुझे अनुभव हुआ कि आज मेरे ही अपराधों का दण्ड मिल रहा है! कदाचित् मेरे ही अपराधों के कारण साम्राज्य के अस्तित्व में शैथिल्य आ गया है! नीरव रहकर मैंने अपना मस्तक नीचा कर लिया। लज्जातिशय्य में मैं सोचने लगी—सम्राट के सामने उपस्थित होने में शाइस्ता खाँ की स्त्री की मैंने ही सहायता की थी। आज उसमें नारीत्व का पूर्ण अभाव मिलता है! कौन जानता था, उसमें शाइस्ता खाँ के प्रतिशोध की इतनी कलुषित भावना विद्यमान है! ओफ!!

कई दिन बीत गये। जीवन घटनाओं का स्रोत हो रहा है, इसी बीच में एक दिन मैंने एक नक्षत्र की तीव्र गति का अध्ययन किया। वह भाग्य की रेखाओं को अंकित करता हुआ एक ओर चला गया उसके पश्चात् होने वाली प्रत्येक घटना को मैंने उसी का अनुकरण करते हुए देखा।

पिता शाहजहाँ ने दारा को सुलेमान शिकोह की प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया था। किन्तु दारा ऐसा कर न सके। तरुण सेनापति शाहशुजा का उन्होंने अनुसरण किया और धीरे-धीरे वे दूर निकल गये। दूसरी ओर से शत्रु-दल समीप आ चुका था। शाहजादा दारा के साथ जो सेना थी। वह युद्ध के कार्य में शिक्षित न थी, पिता ने इसी अभिप्राय से दारा को सुलेमान की प्रतीक्षा के लिए बहुमूल्य सम्पति दी थी। यदि सुलेमान यथा समय अपनी सेना के साथ आ जाते तो खलीलुल्ला खाँ

तथा उनकी अयोग्य और अविश्वसनीय सेना की आवश्यकता न रहती।

सूर्य की उत्ताप दैनिक वृद्धि कर रही थी।

दोनों ओर से सैनिक समारोह बढ़ता जा रहा था और युद्ध के बाजे बज रहे थे। भीषण आक्रमण आरम्भ होने के लिए समय की प्रतीक्षा हो रही थी। युद्ध-क्षेत्र से जो सम्वाद आ रहे थे, उनमें सत्य और असत्य का निर्णय करना कठिन हो रहा था।

युद्ध की विक्षिप्त अवस्था में भी मुझे कुछ सम्वाद यथार्थ रूप में मिले। इसलिए उनका विवरण देना यहाँ पर आवश्यक है!

चम्बल नदी के समीप शाहजादा दारा ने अपना शिविर स्थापित किया था। वह शिविर दूर से एक कोलाहल पूर्ण नगर जान पड़ता था उस शिविर में सैकड़ों और सहस्रों उपशिविर संस्थापित थे और बहुवर्ण रञ्जित पताकायें सैनिकों के उत्साह की वृद्धि कर रही थीं। भीतर से लेकर बाहर तक शिविर में सर्वत्र एक अपूर्व जन-स्रोत दिखाई देता था। शत्रु पर आक्रमण करने के लिए दारा के सेनापति ने दारा को प्रोत्साहित किया! परन्तु शाहजादा दारा सुलेमान शिकोह के आगमान की प्रतीक्षा करना चाहते थे। अभी सुलेमान आये नहीं थे।

यह मैं जानती थी कि नदी के समस्त सेतु सुरक्षित थे। यदि कोई सेतु नदी का अरक्षित था तो केवल चम्पतराय के राज्यान्तर्गत। राजा चम्पतराय की प्रतिश्रुति थी कि वे शत्रु को उनके अधिकृत सेतु के प्रतिक्रम करने की आज्ञा न देंगे। दारा के शिविर के अनेक सेतु अरक्षित थे, इसके सम्वाद औरङ्गजेब को मिल चुके थे। साथ ही औरंगजेब इस बात को भी समझ चुके थे कि राजा चम्पतराय को उत्कोच-द्वारा अनुगृहीत किया जा

सकता है। अपनी एक निश्चित और निर्धारित योजना के अनुसार, आठ सहस्र अश्वारोही सेना को लेकर औरंगजेब ने प्रस्थान किया और नदी की दूसरी ओर जाकर वे उपस्थित हुए।

इस समय औरंगजेब के साथ अधिक सेना न थी और जो सैनिक थे वे परिश्रान्त और पथ श्रान्त होने के कारण एक विक्षिप्त परिस्थिति में थे। इस अवस्था में औरंगजेब पर आक्रमण करने का एक सुन्दर सुयोग था। शाहजादा दारा के सेनाध्यक्ष ने कहा कि "औरंगजेब पर इस समय आक्रमण करने के लिए बारह सौ अश्वारोही सैनिक पर्याप्त हैं।" परन्तु खलीलुल्ला खाँ ने कहा--"यदि इस समय आक्रमण के लिए सेना भेजी जाती है तो यह विजय सेनापति की होगी। इससे दारा का अपमान होगा। इसलिए उनकी प्रतीक्षा करना अत्यंत आवश्यक है।"

जिस समय यह सुयोग एक दुर्घटना और दुर्भाग्य के रूप में परिणत हो रहा, मैं सम्राट के, शाहजादा दारा के और अपने भाग्य की गति का अध्ययन कर रही थी।

उन दिनों में रमजान मास का आरम्भ था। शाहजादा दारा ने शत्रु-सेना पर आक्रमण करने के लिए सामूगढ़ की ओर ससैन्य प्रस्थान किया। इस यात्रा की पहली रात को बहुत बड़ी सेना औरंगजेब के पास आ चुकी थी और विलम्ब हो जाने के कारण सम्पूर्ण संयोग और सुयोग असामयिक हो रहा था। फिर भी दारा अपने आक्रमण को रोकना नहीं चाहते थे। उनका विश्वास था कि आयी हुई औरंगजेब की सेना का एक बड़ा भाग पथश्रान्त है। इसलिए आक्रमण किया जा सकता है। औरंगजेब के पास अभी तक गोलन्दाज सैनिक नहीं पहुँचे थे और उनकी प्रतीक्षा करने के लिए औरंगजेब विवश थे। युवराज

दारा युद्ध के बाजे बजने और भीषण आक्रमण करने का जिस समय अपने सैनिकों को आदेश देना चाहते थे उनके विश्वास-घातक सेनापति ने उसी समय ज्योतिष का आश्रय लिया और उसने कहा—

"शाहजादा दारा के भाग्य का नक्षत्र इस समय अनुकूल नहीं है। इसलिए अनुकूल नक्षत्र की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगा।"

सेनापति की इस मन्त्रणा ने युवराज दारा को विक्षुब्ध बना दिया। पराक्रमी राजपूत सैनिकों का उत्साह भंग हो गया। दारा को आक्रमण करने का आदेश स्थगित कर देना पड़ा। दूसरे दिन दारा को सम्राट का एक पत्र मिला। उस पत्र में दारा को आगरा लौटकर सुलेमान शिकोह की प्रतीक्षा करने के लिए लिखा था। उस पत्र का उत्तर देते हुए दारा ने लिखा—औरंगजेब और मुराद को तीन दिनों के भीतर सम्राट के सम्मुख उपस्थित करना होगा!

दूसरे दिन शाहजादा दारा ने फिर आक्रमण करने का निश्चय किया। उस दिन शनिवार था। दारा की सेना में विश्वासघातियों का एक समूह था और वे सब-के-सब औरंगजेब के प्रति बचन वद्ध थे। दारा के आक्रमण का निर्णय जानकर उन विश्वासघातियों ने कहा—

"समय अनुकूल नहीं है। मेघावृत आकाश अशुभ लक्षणों का प्रदर्शन कर रहा है। आज का दिन आक्रमण करने के लिए किसी प्रकार शुभ नहीं है।"

दूसरे दिन रविवार का दिन था। उस दिन आक्रमण का विरोध करते हुए विश्वासघाती सेना के अधिकारियों ने कहा—अल्लाह ने आज के दिन आलोक की सृष्टि की है। इसलिए

आज का दिन आक्रमण के लिए अत्यन्त अशुभ है। शुभ अवसर की प्रतीक्षा अनिवार्य है।

शाहज़ादा दारा के विश्वासघातक एक ओर दारा के अवसरों को व्यर्थ बना रहे थे और दूसरी ओर औरंगजेब अपनी प्रस्तुति में संलग्न थे। शनिवार को अर्धरात्रि के समय औरंगजेब के शिविर में तीन बार तोपों का भीषण नाद सुनायी पड़ा। यह नाद दारा के विश्वासघातकों को औरङ्गजेब के प्रस्तुत होने की सूचना दे रहा था। सम्राट के प्रतारक महारथी, औरंगजेब के वशीभूत थे। वे औरंगजेब को युद्ध में सफल बनाने के सभी प्रयत्नों का उपयोग कर रहे थे। तोपों का नाद सुनकर उन्हें प्रकट हो गया कि औरङ्गजेब के पास तोपों की अधिक संख्या पहुँच चुकी है और वे भीषण गोलों की वृष्टि करने के लिए प्रस्तुत हैं। दारा के शिविर में भी तीन तोपों को दाग कर प्रत्युत्तर दिया गया परन्तु आगामी दिन के प्रभात काल तक दोनों सेनाओं की ओर से आक्रमणात्मक कोई कार्य नहीं किया गया।

अकस्मात् दारा की तोपों ने अविराम गोलों की वर्षा आरम्भ की। बारूद के धूम्रातिशय्य से सम्पूर्ण आकाश कृष्ण वर्ण में परिणत हो उठा। परन्तु दारा के इस आक्रमण को विफल करने के लिए औरङ्गजेब ने अपनी सेना को दूर ले जाकर रोका।

कुछ समय के लिए गोलों की वर्षा करने पर औरंगजेब की ओर से तीन बार साधारण गोलों का स्वर सुनायी पड़ा। औरङ्गजेब की ओर से यह कोई आक्रमणकारी प्रयत्न न था। दारा के विश्वासघातकों के लिए यह दूसरा संकेत था।

एक ओर युद्ध के आकमण चल रहे थे और दूसरी ओर सम्राट के विश्वासघात जनों की राजनीति अपना काम कर रही थीं। खलीलुल्ला खाँ का कहना था—"युवराज दारा ने अपनी

तोपों से शत्रु-सेना का एक विशाल भाग विध्वंस कर दिया है। इसलिए इस अवसर पर शत्रु के विरुद्ध आक्रमण करके उसे सदा के लिए पराजित करना चाहिए।"

परन्तु शाहजादा दारा के विश्वस्त सेनापति रुस्तम खाँ का कहना था—"शत्रु को ही आक्रमण करने देना चाहिए। हमारे साथ सैनिक शक्ति का प्राबल्य है। इसलिए शत्रु की विफलता निश्चित है।"

शत्रु के साथ संघर्ष के समय युद्ध-क्षेत्र में अपने सेना-नायकों का यह मतभेद और संकल्प-विकल्प केवल औरङ्गजेब को सफल बनाने के लिए था।

रुस्तमखाँ के परामर्श को ठुकरा दिया गया। उसकी सम्मति की कठोर आलोचनायें की गयीं और पराक्रमी राजपूतों ने उसे कायर, भीरू और कापुरुष कहकर संबोधन किया। खलीलुल्ला खाँ के परामर्श अनुसार युवराज दारा के शिविर में आक्रमण-कारी तैयारी होने लगी।

सम्राट की सेना को आगे बढ़ने के लिए आदेश दिया गया। जिसके कारण अशिक्षित सेना के पैर काँप उठे। धोबी, धानुक, नाई, कहार और दूसरे नौकर-चाकर जो युद्ध के लिए सैनिक बनकर आये थे, अकस्मात् अपने शिविर से शत्रु के भागने पर, उन्होंने लूट का कार्य आरम्भ किया। शत्रु का पीछा करने और मार-काट करने के स्थान पर वे शत्रुओं की छोड़ी हुई वस्तुओं को लूटने और आपस में लड़ने-झगड़ने का कार्य करने लगे। सम्राट की सेना के अधिकाँश भाग पर न तो किसी का प्रभावशाली प्रभुत्व था और न सैनिकों में अनुशासन था। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने परस्पर युद्ध आरम्भ कर दिया।

इसी समय दारा ने अपने सैनिकों को आगे बढ़ने के लिए

संकेत किया। उनकी सेना में फिर प्रोत्साहन की वृद्धि हुई। तोपों का घोर निनाद समाप्त हो चुका था। युद्ध के नगाड़े बजने लगे। इसी अवसर पर तोपों के भीषण स्वर फिर सुनायी पड़े। उनकी कड़कड़हाट और गर्जना से दारा की सेना विपर्यस्त हो उठी। उस समय भी युवराज दारा अपना हाथ उठाकर आगे बढ़ने का आदेश दे रहे थे।

औरंङ्जेब की सेना गोले बरसाती हुई दारा की सेना की ओर अग्रसर हुई। युवराज दारा अपने सैनिकों को शत्रु की ओर बढ़ने का लगातार आदेश दे रहे थे। रक्त की प्यासी दोनों ओर की सेनायें, एक दूसरे की ओर क्रमशः बढ़ रही थीं। इस भीषण परिस्थिति में छत्रसाल और रुस्तमखाँ, युवराज दारा की रक्षा करने के लिए दोनों सेनाओं के बीच में पहुँच गये थे। छत्रसाल ने राजपूत सेना को शत्रुओं पर टूट पड़ने और युद्ध-क्षेत्र से शत्रुओं को मारकर भगाने के लिए उत्तेजित किया।

औरङ्गजेब ने युद्ध की परिस्थति का अध्ययन करते हुए अपनी एक नयी सेना, शेखमीर के संरक्षण में युद्ध के लिए भेजी। यही मियाँ शेखमीर थे। जिन्होंने औरङ्गजेब को अपना बहुमूल्य परामर्श देकर मूल्यवान मुक्ता खरीदने के स्थान पर, सैनिक शक्ति-संग्रह करने के लिए वाध्य किया था। युद्ध हो रहा था। दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे पर भीषण प्रहार कर रहे थे। संग्राम की इस भयानक परिस्थित में शाहजादा दारा ने राजोचित गम्भीरता-पूर्वक अपनी हस्तिनी को शत्रुओं की ओर मोड़ते हुए अपने सैनिकों को आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। शत्रुओं की सेना छिन्न-भिन्न होने लगी।

युद्ध आरम्भ हो जाने पर आगरा की अवस्था अधिक उत्तेजित हो उठी। नगर का कोई भी निवासी संग्राम से अपरिचित

न रहा । युद्ध आरम्भ होने के दिन सायंकाल एक सैनिक युद्ध-क्षेत्र से लौटकर आगरा पहुँचा । इस सैनिक ने दारा के शिविर में जाकर रसद की लूट की थी । वहाँ से लौटने पर उसके घोड़े की मृत्यु हो गयी । उसने नगर में जाकर इस बात का प्रचार किया कि युद्ध में सम्राट की सेना पराजित हो रही है । इस संवाद को सुनते ही मेरा सम्पूर्ण शरीर अवसन्न हो उठा । हृदय की गति स्थिर-सी जान पड़ने लगी । मेरे मन का धैर्य विकम्पित हो उठा । मेरे सम्पूर्ण मनोभाव चञ्चल और असन्तोष पूर्ण हो उठे । इसी अवस्था में मैंने सुना कि युद्ध-क्षेत्र से कोई नया सम्वाद आया है । सामूगढ़ का युद्ध जब चरम सीमा में चल रहा था, एक सम्वाद-वाहक वहाँ से लौटकर आया और उसने सम्राट को शाहबुलन्द इकबाल* की विजय का सन्देश देने की अभिलाषा प्रकट की ।

मुझे किसी जनश्रुति पर विश्वास न होता था । विगत कई दिनों से पिता कि आयु में कुछ वृद्धि हो रही थी । पिता को सान्त्वना और धैर्य देने के लिए मुझे किसी भाषा का आश्रय न मिलता था । अपने प्रासाद में बैठकर दिन के प्रकाश प्रत्येक क्षण चतुर्दिक मैदानों का मैं निरीक्षण करने लगी । सूर्य के प्रखर उत्ताप में मुझे कष्ट न होता । रात्रि की शीतल बातास में मैंने एक कृष्ण वर्ण मेघ को उड़कर जाते हुए देखा । मुझे एक अशुभ छाया का-सा अनुभव हुआ ।

रात्रि के अन्धकार में मैं अधिक कुछ समझ न सकी । किन्तु उसके पश्चात् मुझे सभी कुछ देखने और सुनने को मिला । मुझे

---

* बुलन्द इकबाल का अर्थ होता है सौभाग्यवान । शाहबुलन्द इकबाल दारा की एक सम्मानित उपाधि थी ।

घोड़ों की पद-ध्वनि क्रमशः क्षीण होती हुई सुनाई पड़ी। प्रासाद के समीप कुछ सुनाई पड़ता था। कोई प्रासाद की ओर आता हुआ दिखायी भी न देता था।

रात्रि धीरे-धीरे गम्भीर होती जा रही थी एक पहर रात्रि के व्यतीत हो जाने पर मुझे सुनायी पड़ने लगा, मानों तीव्र और भीषण आँधी के समान, एक अश्वारोही सेना चली आ रही है!

आगन्तुक सेना के आगमन की ध्वनि क्रमशः समीपवर्ती होती जाती थी। असंलग्न अश्व-पद-ध्वनि सुनकर मुझे जान पड़ने लगा, जैसे आगन्तुक अश्व क्षत-विक्षत अवस्था में आहत होकर लौट रहे हैं। किन्तु साथ में किसी प्रकार का कोई प्रकाश न था। थोड़ी ही देर में जान पड़ा, मानों कितने ही अश्वारोही सैनिक दुर्ग के द्वार पर आकर रुक गये!

युद्ध से लौट कर शाहजादा दारा आये, परन्तु उन्होंने द्वार के भीतर प्रवेश नहीं किया। दुर्ग के बाहर ही वे रुक गये। दुर्ग के भीतर न जाने का उनके सामने एक कारण था। उनकी दूर-दर्शिता ने उनको सावधान किया था कि शत्रु आकर उनको दुर्ग के भीतर बन्दी बना कर रख सकता है। उस अवस्था में मेरे अथवा पिता के सम्मुख प्रवेश करने का उनमें साहस न था। परन्तु अपने प्रासाद में प्रवेश करने के पहले उन्होंने मेरे पास एक सम्वाद भेजा था।

युवराज दारा का दूत जब वह सम्वाद लेकर आया, उस समय मैं अपने पिता के पास उपस्थित थी। अपने सम्वाद में दारा ने यह स्वीकार किया कि भविष्यवाणी हुई है! सम्राट सेना के आगे उपस्थित हैं। दारा का यह भयानक आक्षेप था! ओफ! सम्राट यदि एक बार भी युद्ध-क्षेत्र में

उपस्थित होते तो शत्रुओं की सेना को भी इस बात का ज्ञान होता कि सम्राट अभी तक जीवित हैं ! यदि ऐसा हो सकता तो इस युद्ध का परिणाम कुछ दूसरा ही होता।

मैंने सम्राट के निकट, उनके विश्वस्त अनुचर ख्वाजा को भेज दिया था उनकी सान्त्वना के लिए। इसी समय युद्ध सम्पूर्ण परिस्थिति का अनुभव हुआ। औरङ्गजेब की सेना, जिस समय भागने के लिए प्रस्तुत हुई और जिस समय औरङ्ग-जेब को यह मालूम हुआ कि मैं बन्दी हो जाऊंगा, उसी समय औरङ्गजेब ने अपनी सबसे शक्तिशाली अश्वारोही सेना दारा के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए भेज दी। अपने साथ एक छोटी-सी सेना, अपनी रक्षा के लिए रख छोड़ी और अपनी हस्तिनी को भूमि के साथ उन्होंने शृङ्खलावद्ध कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी हस्तिनी की पीठ पर बैठकर देखा, उस समय औरङ्गजेब ने असीमित साहस का आश्रय लिया था। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ हो रहे थे। उनकी विपर्यस्त सेना का यदि दारा ने पीछा किया होता तो यह निश्चित था कि औरङ्गजेब और मुराद—दोनों ही बन्दी करके आगरे लाये गये होते ! किन्तु असमतल भूमि होने के कारण दारा की अग्रगति में रुकावट पड़ी। उसी समय उनको विश्राम भी लेना पड़ा।

मेरे नेत्र उस रक्ताक्त दूत को अपने सम्मुख देख रहे थे। कुछ क्षणों के लिए वह चुप हो गया। उस समय की उसकी एकाग्रता और संलग्नता से स्पष्ट प्रकट होता था, मानो जिस दुःसम्वाद को वह मुझे बताना चाहता है उसको सुनकर धैर्य और साहसपूर्वक मुझे परिस्थिति का अवलोकन करना चाहिए। इसके लिए मुझे वह सावधान होने का अवकाश दे रहा है। मैं

प्रस्तर होकर सब-कुछ सुनने के लिए प्रस्तुत थी। इसके पश्चात् उसने फिर कहना आरम्भ किया :

"जिस समय युवराज युद्ध से विरत हो कर कुछ देर के लिए विश्राम ले रहे थे, सुल्तान मोहम्मद से युद्ध करते हुए रुस्तम खाँ; और नजवत खाँ से युद्ध करते हुए राव छत्रसाल निहत हुए।"

मेरे दोनों नेत्र उसके मुख पर थे और मैं सावधानी के साथ उसकी बातों को सुन रही थी। एकाएक मेरे हृदय की गति तीव्र हो उठी और मेरी श्वास-प्रश्वास······! मेरे चक्षु पाषाणवत् हो उठे। 'अब क्या होगा ?' मेरे राखीबन्धु ! प्रियतम !! मेरी सम्पूर्ण आशायें समाप्त हो गयीं ! मैंने एक बार गम्भीरतापूर्वक स्वाँस ली। मेरे मुख से कुछ न निकला। नेत्रों अश्रु-बिन्दु निकल कर छाती पर गिर पड़े ! और कुछ नहीं जाना !

इसी समय पिता ने उससे कई एक प्रश्न किये। उन प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसने कहा—"रुस्तम खाँ और राव छत्रसाल की मृत्यु पर यदि खलीलुल्ला खाँ ने युवराज दारा की सहायता प्रकायास किया होता तो परिणाम कुछ और ही होता !"

मेरी श्वास और प्रश्वास की गति अब भी तीव्र थी। युद्ध के दुःसम्वाद को सुनकर भी मेरे लज्जाहीन प्राणों का अन्त नहीं हुआ। उसके मुख से मैं फिर सुनने लगी।

युद्ध की गति भीषण रूप धारण करती जा रही थी। रुस्तम खाँ और राव छत्रसाल के निहत होने पर जयसिंह के पुत्र, साहसी राजकुमार रामसिंह ने जीवन की ममता छोड़कर युद्ध किया। उस युद्ध में रामसिंह के बहुत-से सैनिक मारे गये और उसके साथ ही रामसिंह ने भी अपने प्राण दे दिया। इस समय राजपूत सेना बिना किसी संचालक के हो रही थी। यह देख कर

युवराज दारा ने उसका नेतृत्व किया। अभी अधिक समय नहीं बीता था, युवराज दारा अपनी हस्तिनी की पीठ से नीचे उतरे हुए दिखायी पड़े। सम्राट की सम्पूर्ण सेना को भ्रम हुआ कि युवराज आहत अवस्था में हस्तिनी की पीठ से नीचे पहुँचे हैं। इस भ्रम ने एक भीषण दुर्घटना की सृष्टि की। सम्राट की सेना का साहस टूटने लगा। रुस्तम खाँ और राव छत्रसाल पहले ही निहत हो चुके थे। रामसिंह की भी मृत्यु हो चुकी थी। युवराज दारा का यह परिणाम हुआ। फलस्वरूप, सम्राट की सेना युद्ध में ठीक उसी प्रकार विपर्यस्त होने लगी जिस प्रकार तीव्र वायु के कारण एकत्रित और संगठित मेघ अनेक टुकड़े में विभाजित होकर इधर-उधर भागने लगते हैं।

युद्ध के इस प्रकार सम्वाद मिले। यह सम्वाद भी मिला कि खलीलुल्ला खाँ ने पाँच सहस्र सैनिकों के साथ युद्ध-क्षेत्र छोड़कर औरङ्गजेब के शिविर की ओर प्रस्थान किया है। यह प्रस्थान और प्रयास युद्ध करने के लिए न था। यह भी स्पष्ट रूप में मैंने सुना। उस समय औरङ्गजेब अपनी हस्तिनी की पीठ पर बैठे हुए इस प्रकार समराङ्गण में घूम रहे थे मानो वे आज सम्पूर्ण पृथ्वी के विजेता हैं!

उसके उपरान्त मुझे और कोई सम्वाद सुनने को नहीं मिला। पिता का सामीप्य त्याग कर मैं अपने प्रासाद में चली आयी।

यमुना की ओर सम्मुखीन स्तम्भ, के पास में मैं खड़ी थी, एकाएक किसी ने नृशंस कर का मेरे शरीर पर आघात हुआ। मैंने घूमकर देखा। उसी समय कोयल ने मुझसे कहा :

बूंदी-राज्य के एक अश्वारोही जन ने आपसे साक्षात् करने की प्रार्थना की है। वह अपनी बात किसी दूसरे से नहीं करना

चाहता। मैंने फतेहपुर-सीकरी में उसे पहले एक बार देखा था।

मैंने कोयल की ओर देखा। उसके अवरुद्ध कण्ठ प्रसूत निर्बल और भयभीत वाक्यों को सुनकर क्षण भर के लिए मैं कुछ सोचने लगी। अपने प्रकोष्ठ के समस्त दीपकों को जलते रहने के लिए मैंने आदेश दिया।

अश्वारोही सैनिक प्रासाद के मध्य से होकर अंधकार में अग्रसर हुआ। उत्सुकता के साथ मैं उसकी ओर देख रही थी। उसके शरीर के रक्तोत्सारित अनेक घाव मुझे दिखाई पड़े। निकट आकर वह सैनिक घुटने टेककर मेरे सम्मुख बैठ गया।

मैंने सैनिक के जखमी स्थानों को समानुभूति और पीड़ा के साथ देखा। उस समय मेरी आत्मीयता, उनके प्रति बन्धुत्व का परिचय दे रही थी। इसी समय मैंने उसके हाथ में शुभ्र और किञ्चित रक्ताभ एक मुक्ताहार देखा।

उस सैनिक के मुख से मैंने कुछ बातें सुनी। उन बातों को किस प्रकार मैं भाषा में व्यक्त कर सकूंगी! उसके वाक्यों में स्वयं क्रम और संलग्नता का अभाव था। सैनिक के वेदनाभिभूत कण्ठ से निकले हुए शब्दों का मैं यहाँ पर सारांश लिखने की चेष्टा करूंगी। उसने कहा :

शत्रु ने जिस समय भीषण रूप से अग्नि-वर्षा आरम्भ की थी और युवराज दारा की सम्पूर्ण सेना को भागने के अतिरिक्त और कुछ न सूझता था, बून्दीराज छत्रसाल ने अपनी सेना को आगे बढ़ाकर नजवत खाँ पर आक्रमण किया और वे मुराद के सम्मुख पहुँच गये। उसी समय ऊंचे स्वर में ललकार कर छत्र-साल ने अपने सैनिकों से कहा :

"युद्ध-क्षेत्र में शत्रु को मारने से इस लोक में कीर्ति मिलती है और युद्ध-क्षेत्र में स्वयं मारे जाने से स्वर्ग मिलता है। युद्ध से भागने वाले सैनिकों को मारने पर भीषण नरक-यातना का भोग करना पड़ता है और जीवन-भर निर्बलता एवम् भीरुता की अपयशी आलोचनायें सुननी पड़ती हैं। युद्ध से भागना, जीवन का भीषण अभिशाप होता है! विजय प्राप्त किये बिना मैं युद्ध-क्षेत्र से लौटकर न जाऊंगा।"

राव छत्रसाल ने नजवत खाँ और मुराद पर एक साथ आक्रमण करके अनेक बार अपने राजपूत सैनिकों को ललकारा और आकाश-व्यापी शब्दों में बार-बार उन्होंने कहा—"शत्रु को पराजित करो अथवा युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राणों को दे दो। पराजित होकर लौटने से मृत्यु श्रेयस्कर होती है।"

'युद्ध-क्षेत्र ही क्षत्रियों की परीक्षा का स्थान है', गरजते हुए शेर के समान छत्रसाल ने शत्रु की सेना में प्रवेश किया। कुछ ही देर में शत्रु की तोप के एक गोले से छत्रसाल का हाथी आहत हुआ। चीत्कारपूर्वक हाथी पीछे की ओर भागा। छत्रसाल ने अपने हाथी को सम्हाने की चेष्टा की, परन्तु वह भीषण रूप से आहत हो चुका था। हाथी के भागते ही छत्रसाल हौदे से भूमि पर कूद पड़े। सैकड़ों और सहस्रों सैनिकों ने उस समय उनके मुंह से निकले हुए शब्दों को सुना—

"मेरा हाथी पीछे की ओर भाग सकता है, परन्तु मेरा एक भी पग पीछे की ओर नहीं पड़ सकता।"

राव छत्रसाल ने शत्रु की सेना के भीतर जाकर अपने भीषण अस्त्र का मुराद पर प्रहार किया। इसी समय शत्रु की गोली से वे आहत हुए!

उस सैनिक की बातों को मैं पाषाणवत् बैठी हुई सुन रही थी। मैं अवाक हो रही थी। सम्पूर्ण शरीर निस्पन्द और अचैतन्य था! उसके चुप होने पर भी मैं अपने स्थान पर प्रस्तर-समान बनी रही। मेरे अचञ्चल नेत्र एक ओर देख कर रह गये थे।

सैनिक के शरीर में अनेक क्षत स्थानों से रक्त प्रवाहित हो रहा था। मुझे भय था कि अचानक अधिक रक्त-स्राव के कारण सैनिक के शिथल हो जाने पर मैं प्रियतम की इन बातों को फिर किससे सुन सकूँगी! सैनिक के चुप हो जाने पर अपनी नीरव और निस्पन्द अवस्था में मुझे युद्ध-क्षेत्र में प्रियतम दुलेरा की चमकती हुई तलवार दिखायी देने लगी!

क्षण-भर के उपरान्त मैंने अपने नेत्रों को उठाकर सैनिक की ओर देखा, अभी तक उसके शीर्ण मुख-मण्डल से नेत्रों की उज्वल आभा विकीर्ण हो रही थी। उसी समय मैंने सैनिक के नेत्रों से गिरते हुए आसुओं को देखा और उसके मुँह से निकलते हुए। शब्दों को सुना—

"राव छत्रसाल के युद्ध में गिरते ही कनिष्ठ पुत्र ने आगे बढ़कर शत्रु का सामना किया और भीषण प्रहार करता हुआ, शत्रु-सेना के बीच में पड़ जाने के कारण वह मारा गया! सम्राट के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए राजकुमार ने अपने प्राणों का बलिदान दिया है तदुपरान्त युवराज दारा के अरक्षित शिविर को औरंगजेब ने अतिक्रम किया। दारा अपने शिविर को छोड़ चुके थे।"

अपने हाथ में मुक्ताहार को लिए हुए उस सैनिक ने अपनी पगड़ी के एक अञ्चल द्वारा आहत स्थानों से निकलते हुए रक्त को पोंछा और फिर कहा:—

"अकस्मात बन्दूक के पश्चात् भाग का किसी ने मेरे ऊपर आघात किया। मैं अचेत होकर वहीं पर गिर गया। शत्रुओं के वहाँ से चले जाने पर अपने स्वामी छत्रसाल की ओर धीरे-धीरे चला।

शत्रुओं ने मेरे स्वामी को अभी तक देखा न था। उनके पवित्र शरीर का संस्कार करने के लिए राजपूत सैनिक उनको ढोलपुर-नदी के तट पर ले गये थे। मैंने यह मुक्ताहार उनके साथ देखा। मैंने विश्वास किया कि सम्राटकुमारी अपने पिता के सर्वश्रेष्ठ विश्वस्त सामन्त की स्मृति के रूप में इस मुक्ताहार को स्वीकार करेंगी।"

मैंने अपने दोनों हाथों को फैला करके उसको ले लिया और प्रियतम के पास से प्रत्यावर्तित उस मुक्ताहार को मैंने अपने छाती के साथ स्पर्श किया। उस सैनिक से मैंने प्रश्न किया—

"किसके अस्त्र से तुम्हारे स्वामी की मृत्यु हुई है?"

मैं जिस प्रकोष्ट में बैठी थी, उसमें सैनिक ने चतुर्दिक अपनी दृष्टि-निक्षेप की। क्षण-भर रुक कर मधुर कण्ठ से उसने उत्तर देते हुए कहा—

"विश्वस्त रूप से इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। किन्तु अनेक जनों की धारणा है कि मुराद की गोली से उनकी मृत्यु हुई है। परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ, उनकी मृत्यु नजवत खाँ की गोली से हुई है।"

यह कह कर सैनिक मेरे अत्यन्त निकट आया और कहने लगा—"सम्राट कुमारी, मैं कल तक जीवित रहूँगा। आपसे मैं एक गुप्त बात कहना चाहता हूँ। जिस समय औरङ्गजेब के साथ हम लोग युद्ध कर रहे थे, स्वामी ने एक सम्वाद देकर मुझे

औरङ्गजेब के शिविर में भेजा था। प्रहरी की आज्ञा से मुझे शिविर के समीप रुकना पड़ा। वहाँ पर मैंने औरङ्गजेब के साथ नजवत खाँ को खूब बातें करते हुए देखा था××मैं नहीं कह सकता कि उनमें जो बातें हो रही थीं, उनका अर्थ क्या होता है? परन्तु मैंने इतना अवश्य सुना था, औरङ्गजेब से नजवत खाँ कह रहे थे, 'सम्राट अपनी लड़की जहानारा का विवाह बल्क-राजवंश में नहीं करना चाहते। परन्तु क्या जहानारा स्वयं बून्दी राज के साथ विवाह करना स्वीकार करेगी?' नजवत खाँ की इस बात का उत्तर देते हुए औरङ्गजेब ने कहा, 'यदि ऐसा हुआ तो इस्लाम का विद्रोही दिल्ली के राज-सिंहासन का अधीश्वर होगा। अल्लाह निश्चय ही इस अधर्म का प्रतिकार करेंगे!' मैंने यह अलोचना अपने स्वामी को लौट कर बतायी थी। इसे जानने के पश्चात् स्वामी ने नजतवत खाँ के साथ सम्भाषण-शिष्टाचार बन्द कर दिया था।"

दुलेरा प्रियतम के प्रति मेरी आत्मीयता की वृद्धि हो रही थी। मेरे हृदय का सम्पूर्ण स्नेह समुद्र के ज्वार की भांति प्रफुल्लित और उत्तेजित हो रहा था। उनके जीवन के प्रत्येक रोम का स्नेहालिङ्गन करने के लिए मैं आकुल-व्याकुल हो उठी थी! उस आकुलता की तीव्र अनुभूति और स्मृति मैं भूल नहीं सकी—भविष्य में भी कभी न भूलूंगी। प्रारम्भ से ही—जब से उनको मैंने देखा था, मेरा विश्वास था कि मेरे साथ उनके हृदय में जो स्नेह की गम्भीरता है, वह कभी क्षीण न हो सकेगी! इसीलिए मैंने उनको प्रियतम के रूप में स्वीकार किया था! उनके इस सम्पर्क और सम्बन्ध को अङ्गीकार करने के लिए मैं एक क्षण के लिए भी दुविधा का अनुभव न किया था! मेरे अन्तःकरण में मेरे आत्मा की प्रेरणा थी! यह प्रेरणा

आज भी मुझे उद्वेलित और उच्छ्‌वसित बनाने का कार्य करती है !!

सैनिक से मैंने उस दिन दुर्ग में अवस्थान करने के लिए अनुरोध किया। प्रियतम के साथ उसकी सद्‌भावना को देखकर मैंने उसके क्षत्-स्थानों की चिकित्सा कराने का निर्णय किया। परन्तु उसको स्वीकार न हुआ। प्रभु-भक्त सैनिक ने उत्तर देते हुए मुझसे कहा—"मैं अपने स्वामी का अनुसरण करूंगा।" यह कह कर उसने प्रत्यावर्तन किया। उस समय उसके अधरों पर मैंने क्षीण किन्तु स्पष्ट सस्मित हास्यरेखा को दृष्टिगोचर किया। जाने के पूर्व उसने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर गम्भीर होकर उसने कहा—

"सम्राट नन्दिनी, आपके सद्‌व्यवहारों के लिए, मैं अत्यधिक आभारी हूँ। किन्तु अपनी एक बात मैं भविष्यवाणी के रूप में कहना चाहता हूँ। भविष्य में कभी भी राजस्थान की सन्तान, मुगल वंशीय पताका के नीचे युद्ध-क्षेत्र में एकत्रित और उपस्थित न होगी!"

सैनिक के अन्तर्ध्यान होने के साथ-साथ, कोयल ने आकर मुझसे कहा—"खलीलुल्ला खाँ की स्त्री द्वार पर आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

मैं कांप उठी। भगवान ही इस स्त्री के कार्यों का रहस्य जान सकते हैं मुगल-सम्राट के विनाश में कदाचित इस नारी के आगमन का भी कारण है! इतना समझने पर भी उसके साथ मैंने सादर सम्भाषण किया। इसका कारण था, मेरे हृदय का कोमल स्वभाव! उसने अकस्मात् क्रन्दन आरम्भ किया। औरङ्गजेब के शिविर से अपने स्वामी खलीलुल्ला खाँ के शीघ्र प्रत्यावर्तन का उसने विश्वास दिलाया। उसी समय उसने शत्रु

की पराजय के लिए भगवान से अभ्यर्थना की। तदुपरान्त अपने मधुर कण्ठ से उसने कहा—

"दारा के हस्तिनी की पीठ से अवतरण करने पर सम्राट की सेना में विश्रान्ति उत्पन्न हुई थी। उसके परिणाम-स्वरूप शाह-जादा की सेना में अनेक प्रकार की कल्पनायें की गयीं।"

इसके साथ उस स्त्री ने अपने स्वामी खलीलुल्ला खाँ के व्यवहारों और कार्यों की कटु आलोचना भी की। स्थिरतापूर्व मैं उसकी बातों को सुनती रही। उसके प्रति मैं अन्त तक अवाक बनी रही।

एकाकिनी मैं यमुना के निकटवर्ती प्रकोष्ठ में चली गयी। वहाँ जाकर एक स्तम्भ का आश्रय लेकर मैं खड़ी हुई। मुझे एकाएक ऐसा जान पड़ा, मानो इस स्तम्भ का आश्रय मेरे जीवन का अन्तिम आश्रय है। उस समय भी मेरे हृदय पर किसी के कठोर हाथ का असह्यभार था। किन्तु यहाँ पर मैं साधारण तौर पर निःश्वास ले सकती थी।

पीड़ा-घृणा और प्रतिशोध की भावना से मेरे समस्त शरीर का रक्त उत्तप्त हो रहा था। एकाएक हृदय की पीड़ा में मुझे किञ्चित् स्वास्थ्य का अनुभव हुआ। सूक्ष्म बुद्धि का विकास हुआ! मेरे नेत्र बहुदूरवर्त्ती बातों को अवलोकन करने लगे। मेरा अस्तित्व जैसे प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों में मिश्रित हो रहा हो। मैं स्पष्ट देखने लगी, मानो मेरे प्राणों ने इस स्थूल शरीर का परि-त्याग कर दिया है। भूमि से लेकर आकाश तक विस्तृत वायु में मैं जैसे विचरण करने लगी। मुझे इसकी अनुभूति बार-बार होने लगी। दूरवर्त्ती नदी की जल-धारा को नेत्र दृष्टिगोचर कर रहे थे। यमुना की शान्त और मधुर प्रवाह-गति मेरे कानों में प्रवेश कर रही थी। उसका सुन्दर स्वर अपने क्रम के साथ,

अत्यधिक प्रिय होता जा रहा था। यमुना का वह मधुर और मोहन स्वर एक प्रिय सङ्गीत के रूप में परिणत हो गया। इसी प्रकार का स्वर मैंने कभी दिल्ली के नौबतखाने में सुना था। उस ध्वनि में किसी एक मनुष्य का प्रलाप और बहुसंख्यक—नहीं-नहीं—अनन्तजनों का भीषण क्रन्दन सुनायी पड़ने लगा!

मुझे जान पड़ा, मेरे दोनों नेत्र बन्द हैं और मैं यमुना के नीले जल में प्रवाहित हो रही हूँ। वह अगाध शीतल, शान्त और पवित्र जल मुझे एक ओर अपने साथ लिए जा रहा है। मैं अपने प्रासाद से दूर-अत्यन्त दूर होती जा रही हूँ। अपनी जीवन-सरिता से भी मैं अत्यधिक दूर पहुँच चुकी हूँ! यमुना की इस पवित्र जल-धारा ने पृथ्वी के परिष्कार का कार्य किया है। पीड़ित, घृणित और उद्वेलित जनों को गोद का आश्रय देकर उसने सदा अपनी करुणा और उदारता का परिचय दिया है। उसके निर्मल नीर ने निर्मलता की ही सदा सृष्टि की है! इस पृथ्वी के सैकड़ों, सहस्रों और लक्षों उत्तापित नर-नारियों ने अपने लज्जावरण को सुरक्षित रखने के लिए इसी यमुना के निर्मल नीर का अवगाहन किया है! उनके अतिरिक्त आज मुझे भी अन्यत्र कहीं आश्रय नहीं है! अपनी अन्तर्दृष्टि में मुझे सम्पूर्ण जगत आलोकमय दिखायी पड़ने लगा। मैंने स्पष्ट देखा, उस प्रकाशपूर्ण विश्व में मेरा कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। मैं उससे अत्यधिक दूरी पर अपने अस्तित्व का प्रतिबिम्ब देखती हूँ! उसी निराकार जगत में—आलोकपूर्ण शीतल आकाश की निशा में मेरे स्वयंबर की रचना होगी—वहीं पर मैं अपने प्रियतम से साक्षात् करूंगी और अन्तरात्मा के चिर संचित और सुरक्षित प्यार को मैं अपने प्रियतम के साथ सफल बना सकूंगी!!

मैं इस विश्व की एक अपूर्व और आश्चर्यमयी अभागिनी हूँ। मेरे अदृष्ट ने जीवन के उस स्थान पर मुझे पहुँचा दिया था, जहाँ पर मैं जीवन की अन्तिम श्वास और प्रश्वास तक एकाकिनी और हतभागिनी थी। वहाँ पर जीवन की भीषण पीड़ाओं के अतिरिक्त कोई मेरा न था। कोई न था, जिसके निकट बैठकर मैं अपने जीवन की कथाओं को सुनाती। इस भीषण अभाव में—जीवन की निर्जनता और नीरवता में अपनी विपदाओं की कथा, अपने आपको सुनाने के लिए मैंने लिखना प्रारम्भ किया था! उस कथा का अन्त हो रहा है परन्तु मेरी वेदना का—मेरे अन्तरात्मा की पीड़ा का अन्त नहीं हो रहा!

अपनी यह आत्म-कथा अपनी विस्मृति को मैं समर्पण करूँगी। स्मृति ही आज के जीवन का मेरा सुख है। मेरी ये स्मृतियाँ विस्मृति के रूप में परिणत न हों, इसीलिए मैं अपनी आत्मकथा को उत्सर्ग करके, विस्मृति को स्मृति के ही रूप में रखने का प्रयास कर रही हूँ! स्मृति-पीड़ा ही आज मेरे जीवन की महती प्रियता बन गयी है। इसीलिए तो मैंने उसको ही अपनी ये पीड़ायें उत्सर्ग की हैं!!

सामूगढ़ के युद्ध के दूसरे दिन कोयल ने रात को मुझे अपने प्रकोष्ठ में देखा था। वहाँ पर स्तम्भ के निकट मैं गम्भीर निन्द्रा में सो रही थी। उसने मुझे जगाने का प्रयास नहीं किया। मेरे चतुर्दिक उसने एक चद्दर का आवरण ढंक दिया। प्रातःकाल निद्रा भंग होने पर मुझे अनुभव हुआ जैसे मेरा सम्पूर्ण शरीर रूपान्तरित हो गया है। रात के तीसरे भाग में मैंने एक स्वप्न देखा था। उस स्वप्न की सुषमा मुझे भूल नहीं सकी और आज भी पीड़ाओं का भार वहन करने में जीवन के सुखों का वह सपना मेरे हृदय में सामर्थ्य उत्पन्न करता है।

आज मैं इस बात को अनुभव कर रही थी कि मुगलों का चगताई वंश भारत में प्रेतों का अवतरण था। प्रतिहिंसा को जाग्रत करने के लिऐ पृथ्वी पर उसका आगमन हुआ था। उस फकीर का कहना आज सत्य हुआ! उसने स्पष्ट कहा था कि औरङ्गजेब तैमूर वंश का क्षय करेगा। इस युद्ध के साथ-साथ वह भविष्यवाणी सत्य और सफल हुई।

अपनी सेना के साथ दारा ने युद्ध-क्षेत्र का परित्याग किया! औरङ्गजेब की विजय के नगाड़े बजने लगे। विश्वासघातक खलीलुल्ला खाँ मृत मनुष्यों के शरीरों पर अपने नृशंस पदाघातों के साथ युद्ध-क्षेत्र से औरङ्गजेब के शिविर की ओर अग्रसर हुआ। विजय-वाद्य की घोषणाओं के साथ औरङ्गजेब की ओर से उसका स्वागत किया गया। भारतवर्ष के अधीश्वर के रूप में औरङ्गजेब ने मुराद के नाम को अनेक बार घोषित किया। इसके पश्चात् दोनों विजेता बन्धु—औरङ्गजेब और मुराद ने दारा के शिविर में प्रवेश किया।

भारतवर्ष का सम्राट कह कर औरङ्गजेब ने मुराद का बार बार अभिवादन किया और अत्यन्त प्रोत्साहित कण्ठ से कहा —"सम्राट के रूप में भारतीय शासन का आज तुम्हारा प्रथम दिन है। इस युद्ध का प्रारम्भ करने के पहले ही औरङ्गजेब ने मुराद को भारतवर्ष का सम्राट बनने के लिए कुरान का स्पर्श करके शपथ उठायी थी। यद्यपि वहाँ के अनेक दूरदर्शियों के अन्तरात्मा में औरंगजेब की इस शपथ का अधिक मूल्य न था। अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिए औरंगजेब दिन रात अथक और अविश्राम परिश्रम कर रहे थे।

सम्राट शाहजहाँ के अमीरों में शाइस्ता खाँ का सम्मानपूर्ण स्थान था। सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने में औरंगजेब ने

शाइस्ता खाँ से भी बहुत बड़ी सहायता पायी थी। शाइस्ता खाँ से आवश्यक सहायता और उपयोगी परामर्श लेने के लिए औरङ्गजेब के सम्मुख कारण था। शाइस्ता खाँ के हृदय में सम्राट के प्रति ईर्ष्या और घृणा थी। सम्पूर्ण साम्राज्य पर अपना अधिपत्य स्थापित करने के लिए औरङ्गजेब ने समस्त कलुषित राजनीतिज्ञों का, बिना किसी भय के उपयोग का था। शाइस्ता खाँ की सहायता और उसके समर्थन से उनमें और भी सामर्थ्य उत्पन्न हो गयी थी!

साम्राज्य के समस्त सामन्तों, अमीरों, जागीरदारों और प्रमुख राजनीतिज्ञों को वशीभूत करने लिए घृणित कूटनीति से काम लिया गया था। प्रशंसा करके, पुरस्कार देकर भय-प्रदर्शन करके एवम् सर्वनाश की धमकी देकर सभी को अपनी मुट्ठी में किया गया था। बाहर से लेकर भीतर—अन्तःपुर तक, सम्राट के सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर औरङ्गजेब की ओर से गुप्तचर बनाया गया था। एक ओर से सभी को विश्वास दिलाया गया था कि इस विद्रोह और युद्ध के पश्चात औरङ्गजेब का ही साम्राज्य पर शासन और आधिपत्य होगा। भय के साथ, सभी के सम्मुख अनेक प्रकार के प्रलोभन भी थे; जिनके आधार पर सभी को औरङ्गजेब के अनुसरण और साहाय्य के लिए आदेश दिया गया था! पराजित अवस्था में युद्ध-क्षेत्र छोड़कर दारा ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सुलेमान शिकोह को एक पत्र लिखा गया कि उसे औरङ्गजेब के निकट आत्म-समर्पण कर देना चाहिए।

युद्ध समाप्त हो चुका था। कई दिनों के पश्चात् आगरा से कुछ दूरी पर उद्यान में, सम्राट के विश्वातघातक सेना नायक एकत्रित हुए। उसी स्थान से औरङ्गजेब ने सम्राट के पास अपना

एक दूत भेजा और उसके द्वारा सम्राट के लिए जो पत्र भेजा, उसमें लिखा :

मैं आपका विश्वस्त पुत्र हूँ। आपके विरुद्ध युवराज दारा ने जिस षड़यन्त्र की रचना की है, उसे मैं भली प्रकार जानता हूँ। अपने पिता के विरुद्ध मैं इस षड़यन्त्र को कभी भी सहन न कर सकता था। इसीलिए दारा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए मुझे जो कुछ करना पड़ा है, उसका एक मात्र उद्देश्य है, अपने पिता को दारा के षड़यन्त्र से मुक्त कराना।"

दारा की पराजय से सम्राट के अन्तःकरण में जो असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई थी, उससे भी अधिक घातक वेदना उनके हृदय में औरंगज़ेब के इस उपहासपूर्ण पत्र से उत्पन्न हुई। उन्होंने उस पत्र का उत्तर देते हुए औरंगजेब को लिखा :

'निस्सन्देह औरंगजेब के साथ प्रतारणा ही करना दारा का उद्देश्य था। परिणाम स्वरूप, मेरे सामने जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है; उससे मुक्ति की सम्भावना नहीं है। अपने प्रबल पयत्नों के द्वारा औरङ्गजेब ने साम्राज्य के समस्त अमीरों, सामन्तों और सेनाअध्यक्षों को अपना सहायक बना लिया है। जिससे ःजा के सामने एक भीषण विवशता उत्पन्न हो गयी है! तृनेत्व विहीन प्रजा मेरी कोई सहायता नहीं कर सकती! इस भीषण चिन्तना के अतिरिक्त मेरे सामने और कुछ नहीं है!!"

औरंगजेब की कूटनीति का अभी अन्त नहीं हुआ था, उन्होंने साक्षात् करने के लिए एक पत्र पिता के पास भेजा। अपने उस पत्र में अरंगजेब ने और भी घृणित नीति का आश्रय लिया। इस पत्र में औरंगजेब ने कुछ इस प्रकार की पंक्तियाँ भी लिखीं, जिनसे पुत्र के प्रति सम्राट के कोमल अन्तःकरण में किञ्चित सद्भावना का उद्रेक हुआ। पिता से साक्षात् करने

और कुछ वाक्यालाप के लिए औरङ्गजेब ने अपनी अभिलाषा प्रकट की । सम्राट ने जो कुछ भी उसकी कल्पना की हो । उन्होंने औरङ्गजेब से साक्षात करने की प्रतिश्रुति दे दी । परन्तु निर्धारित समय पर औरंगजेब का: आगमन हुआ । सम्राट के निकट आने और साक्षात् करने की घोषणायें औरङ्गजेब की ओर से लगातार नित्य होती रहीं । परन्तु उनके आगमन का मुहूर्त न आया । इन दिनों में औरङ्गजेब के हृदय में किस प्रकार की भावनायें कार्य कर रही थीं, उनको किसी में समझने की समर्थ्य न थी ।

औरङ्गजेब के साक्षात् करने की अभिलाषा को जानकर सम्राट के दयार्द्र अन्तरात्मा में किस प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हुईं; उन्हें एक पिता के अतिरिक्त और कौन अनुभव कर सकता है ! पिता नित्य ही औरङ्गजेब के आगमन की प्रतीक्षा करते । वे सोचते, कौन जानता है औरङ्गजेब के आने पर ही किसी कल्याण का आविर्भाव हो ! प्रतीक्षा के कई दिनों के उपरान्त औरंगजेब के आगमन का शुभ मुहूर्त उपस्थित हुआ । अकस्मात् सुनने को मिला औरङ्गजेब ने अपनी विराट सेना को लेकर ताज-महल के पास में शिविर की स्थापना की है । यह भी सुना कि अमीन खाँ के नेतृत्व में शहर के समस्त विश्वासघातक, औरङ्गजेब का अभिनन्दन करने के लिए उपस्थित हुए । उनके मुख में मधुर शब्द थे और उनके हाथों में औरङ्गजेब को देने के लिए बहुसंख्यक सम्पत्ति थी !

इस प्रकार के सम्वाद को सुनकर पिता सम्राट का अन्त-रात्मा विक्षुब्ध हो उठा । साक्षात्कार की प्रार्थना पर उन्होंने जो अनुकूल कल्पनायें की थीं, वे निराधार निकलीं । पिता अपने हृदय की उत्तेजना को सम्वरण करने में असमर्थ हो उठे ! उन्होंने

अपने एक विश्वासी अमीर को साथ लेकर दुर्ग में प्रवेश किया और तोपों के मुंह में आग लगा देने का उन्होंने आदेश दिया। पिता औरङ्गजेब की सेना को शहर की ओर अग्रसर नहीं होने देना चाहते थे। परन्तु उनको अपने इस प्रयत्न में सफलता न मिली। औरङ्गजेब ने सम्राट के समस्त गोलन्दाजों को उत्कोच देकर अपने अनुकूल बना लिया था। परिणाम यह हुआ कि गोलन्दाज को आदेश देने के साथ ही सम्राट को ज्ञात हुआ कि औरङ्गजेब ने सम्पूर्ण शहर में अपना अधिकार और आधिपत्य स्थापित करके दारा शिकोह के भवन में प्रवेश किया है। गुप्तरूप से प्रासाद में पत्र भेजे गये। उसके उपरान्त सुदृढ़ रज्जु की सहायता से प्रासाद की ऊंची दीवारों को पार करके सैनिक दुर्ग में प्रवेश करने लगे। एक साथ बहुसंख्यक सैनिकों के पहुँच जाने पर दुर्ग में स्थित सम्राट के सम्पूर्ण सैनिकों ने औरङ्गजेब की अधीनता स्वीकार कर ली। अपने सैनिकों के आत्म-समर्पण करते ही हमारी अवस्थायें विच्छिन्न हो उठीं।

प्रासाद से लेकर दुर्ग तक औरङ्गजेब के पुत्र सुल्तान मोहम्मद का आधिपत्य कार्य करने लगा। बिना आज्ञा के खाने-पीने का कोई भी पदार्थ मुझे और पिता सम्राट को मिलना असम्भव हो गया। क्षुधा और तृष्णा से पीड़ित प्रहरी जन हम दोनों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने में अक्षम होगये। जल और भोजन के अभाव में छटपटाकर प्राण देने की अपेक्षा सम्राट आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य हुए। दुर्ग के समस्त तालों की कुञ्जियाँ सुल्तान मोहम्मद के अधिकार में थीं। मेरे नेत्रों को आज भी ख्वाजा जैसे अनुचर कुञ्जियों का गुच्छा लिए हुए दिखाई दे रहे हैं! उस गुच्छे में बड़ी-बड़ी कुञ्जियों के परस्पर टकराने से होने वाली झनझनाहट आज भी मेरे कानों में सुनायी पड़ती है!

पिता के पास प्राण-रक्षा का कोई भी साधन न था। विवश अवस्था में उन्होंने औरङ्गजेब से स्वयं साक्षात करने का निश्चय किया। उन्होंने औरङ्गजेब के पास सन्देश भेजा और उस सन्देश में स्पष्ट कहा कि मेरी इस अभ्यर्थना को वे स्वीकार करें। सम्राट ने अपना यह निवेदन, पत्र में लिखकर भेजा था। औरङ्गजेब ने सम्राट को बन्दी बना कर उस निवेदन का उत्तर दिया। सम्राट बन्दी करके अन्तःपुर में अपनी पत्नियों के निकट रखे गये। इसी समय औरङ्गजेब का लिखा हुआ पत्र मुझे प्राप्त हुआ। पिता को बन्दी बनाकर अन्तःपुर में उनको बन्दी के रूप में रख कर औरङ्गजेब ने मेरे ऊपर एक बज्रपात किया था। दूसरा बज्रपात उनके द्वारा भेजे गये पत्र के रूप में मुझ पर हुआ। उस पत्र का उत्तर देते हुए मैंने लिखा—

"बन्दी होकर पिता के चरणों के समीप प्राण विसर्जन करना मैं स्वीकार करूंगी, परन्तु साम्राज्य के प्रेतात्मा के गौरव की एक अधिकारिणी बन कर जीवित रहना मैं स्वीकार न करूंगी।"

मेरी बहन रोशनआरा दुर्ग से निकल कर बन्धु औरङ्गजेब से समीप उपस्थित हुईं। आज रोशनआरा की विजय का दिन था। एक दिन था जब रोशनआरा ने शाइस्ताखाँ और अमीन खाँ को मुक्त कराने के लिए दारा से अनुरोध किया था और एक दिन आज है, जब दारा को स्वयं पराजित होकर दिल्ली की ओर भागना पड़ा है! सम्राट स्वयं अन्तःपुर में बन्दी हैं और मैं अपने जीवन के निर्णय की प्रतीक्षा में हूँ!!

अपिरिमित शक्ति पर अधिकार पाने पर भी औरङ्गजेब की कूटनीति निःशेष न हुई थी। साम्राज्य के उच्च वर्गीय जनों का आनुगत्य प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक नवीन कूटनीति का निर्माण किया। सम्राज का लिखा हुआ एक कल्पित पत्र राज-

मन्त्रियों के द्वारा राज-दरबार में पढ़ा गया। यह प्रतारणा अधिक सफल हुई। दरबार में सम्राट का लिखा हुआ, इस प्रकार का पत्र पढ़े जाने पर, सर्वसाधारण को विश्वास हुआ कि दारा के षड़यन्त्र से सम्राट को सुरक्षित और जीवित रखने के लिए औरंगजेब को इस तिलस्म की रचना करनी पड़ी है। स्वयं सम्राट इसके लिये औरंगजेब के अत्यन्त आभारी हैं!

मेरे मन की अवस्था अत्यन्त विक्षुब्ध होती जा रही थी। प्रारम्भ से ही मैंने अपने प्रारब्ध को समझने की चेष्टा की थी। धर्म के परिष्कृत रूप पर विश्वास रखा था। अमानुषिकता से घृणा की थी और सत्य पर सदा जीवन उत्सर्ग करने का निश्चय किया था! उसका परिणाम? उसका भीषण परिणाम आज नेत्रों के सामने है! धर्म के नाम पर जिसने आडम्बर को महानता दी थी, मनुष्यत्व का जिसने अनादर किया था और कूटनीति का जिसने सदा आश्रय लिया था, वह अपने जीवन में आज विजयी है। भगवान! तुम्हारे इस रहस्य को समझने में मेरा परिमित ज्ञान अक्षम और असमर्थ है!!

दारा का पराजित जीवन मैंने नेत्रों से देखा है, पिता सम्राट के करुणापूर्ण बन्दी जीवन का मैंने अवलोकन किया है और प्रियतम का पवित्र बलिदान मेरे सम्मुख हुआ है। जीवित रहने की मेरी अभिलाषा अब निःशेष हो चुकी है! मैं सब-कुछ देख चुकी हूँ। मेरे विक्षुब्ध और उद्विग्न अन्तःकरण में केवल उस लोक में जाने की आकांक्षा है, जहाँ प्रियतम मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे! वहीं पहुँच कर मैं अब सुखी और सन्तुष्ट हो सकूंगी!!

पूर्व की भाँति, क्या मैं फिर एक बार जीवन के सन्तोष के साथ साक्षात कर सकूंगी? मैं कितनी बड़ी अभागिनी हूँ! मेरा

अन्तरात्मा मुझसे बहुत दूर पर चला गया है! इस लोक में मैं अब उसके साथ साक्षात न कर सकूँगी! इस लोक की अमर साधना, अमरलोक में ही सफल होती है!! शास्त्रों का—विश्व के समस्त धर्मग्रन्थों का यह विधान है। फिर मैं अधीर क्यों होती हूँ? युद्ध के लिए प्रयाण करने के पूर्व उन्होंने कहा भी तो था, 'यदि इस लोक में तुमसे न मिल सकूँगा तो उस लोक में—अमरलोक में मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।' निस्सन्देह, उस प्रतीक्षा की पूर्ति होगी!!

बन्धुवर दारा और पिता की स्मृति से मैं फिर विह्वल हो उठी। सोचा कुछ और था—अदृष्ट में कुछ और था! अन्तरतर की ज्वाला से नेत्रों का सूक्ष्म वारि, जल गया है। अपने निष्पाप जीवन पर सदा मैंने विश्वास किया है। यदि उसकी सत्ता आज कुछ भी मेरे जीवन में शेष रह गयी है तो मेरे वृद्ध पिता और हतभाग्य बन्धु दारा के निमित्त वह नियोजित हो! उन्हीं के अर्थ मैं अभी तक जीवित हूँ! इसी समय मुझे कुर्रम देवी का स्मरण हुआ। जीवन की उत्तेजना का फिर मेरे हृदय में एक बार जागरण हुआ। विवेक के प्रदुर्भाव में मैं फिर निःश्वास लेने लगी।

अपनी योजना के अनुसार, आगरा की सम्पूर्ण व्यवस्था का निर्माण करके औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को वहाँ का शासक नियुक्त किया। उसके पश्चात् राजकोष से आवश्यकतानुसार, द्रव्य लेकर दारा पर आक्रमण करने के लिए मुराद के साथ वे दिल्ली की ओर अग्रसर हुए। उस समय दारा लाहौर में सैन्य संग्रह कर रहे थे।

आगरा से दिल्ली के मार्ग में चल कर औरंगजेब ने एक नवीन योजना की रचना की। अभी तक मुराद का राज्याभिषेक

नहीं हुआ था। मुराद को अपने साहस और शौर्य का अहंकार था। साथ ही, इस बात का विश्वास भी था कि औरंगजेब ने कुरान स्पर्श करके शपथ उठायी है। उस शपथ की रेखायें अभी तक निष्प्रभ नहीं हुई!

मथुरा के निकट सेना ने विश्राम किया। इस यात्रा का दूसरा दिन मुराद के लिए अत्यन्त आनन्ददायक रहा। सुगन्धिक पुष्पों, मधुर फलों और तीव्र सुरा के द्वारा मुराद की निरन्तर तृप्ति होती रही। मुराद इस सम्वाद से अपरिचित न थे कि औरंगजेब के शिविर में राज्याभिषेक के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बातें न होंगी। चतुर्दिक घोड़ों और हाथियों की नवीन झालरें तैयार की जाने लगीं। अनेक नवीन शिविरों की स्थापना की गयी। राज्याभिषेक के उत्सव के निमित्त नवीन वस्त्रों, आभूषणों और अन्यान्य पदार्थों के निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। पाकशाला में बड़ी तत्परता के साथ कार्य होने लगे। सैकड़ों और सहस्रों प्रकार के मिष्ठान्न प्रस्तुत होने लगे। सुगन्धित पुष्प एकत्रित किये जा रहे थे। नर्तकी और गायिका के उन्मादपूर्ण नृत्य और गीतों से प्रत्येक समय मादकता की वृष्टि हो रही थी।

मुराद के शिविर में दूसरा ही दृश्य था। मद्यपान और उच्छृङ्खलता की सीमा उल्लंघन की जा रही थी। ख्वाजा शाहबाज मुराद का विश्वस्त बन्धु था। वह मुराद की अशुभचिंतना किसी प्रकार चाहता न था। इसीलिए··उसने अनेक बार मुराद को सचेत और सावधान करने का प्रयास किया था। परन्तु अपने प्रयत्नों में उसे असफल होना पड़ा।

औरंगजेब ने नदी के पास ही अत्यन्त रमणीक स्थान में उत्सव का आयोजन किया था। ज्योतिषियों के द्वारा राज्या-

भिषेक का दिन निर्धारित हुआ था । विराट योजना के साथ अभिषेक दिवस उपस्थित हुआ । सामूगढ़ में युवराज दारा को इब्राहीम खाँ ने एक बार उपदेश दिया था। आज मुराद के नेत्रोन्मीलन की उसने चेष्टा की। इब्राहीम का विश्वास था कि मुराद सतर्क और सावधान हो सकेंगे। परन्तु उसकी चेष्टा पूर्ण रूप से निष्फल और परिणामहीन निकली । दाम्भिक मुराद के अवरुद्ध नेत्रों का कोई प्रतिकार न हुआ।

शेखमीर, अमीन खाँ एवम् अन्य कई एक जन विश्वासी अनुचर अभिषेकोत्सव में औरंगजेब की सहायता कर रहे थे। अभिषेक का समय उपस्थित होने पर उत्सव की वेश-भूषा में अलंकृत मुराद से उत्सव-स्थल में चलने के लिए अनुरोध किया गया। औरंगजेब ने मुराद का अभिनन्दन किया। भ्रातृ-स्नेह की अनेक बातें उनके मुख से उसी समय सुनी गयीं; इसके उपरान्त मुराद को सिंहासन पर आरूढ़ करने के लिए ले गये । उत्सव-स्थल के बाहर स्वागत-वाद्य आरम्भ हो गये। नृत्य होने लगा। मण्डप में अनेक संयोजित कार्यों का अनुष्ठान हुआ। सुगन्धित तीव्र मादकता से सम्पूर्ण वायु आमोदित हो उठी।

औरंगजेब ने मुराद के समस्त सेनाध्यक्षों को उत्सव में आमन्त्रित किया था। अभिषेक के उल्लास में मुराद के सेनानायक और सैनिक आमोद-प्रमोद के लिए विक्षिप्त अवस्था में घूम रहे थे।

सब से पूर्व, प्रीति-भोज का कार्य आरम्भ हुआ। सुमधुर खाद्य पदार्थों और तीव्र सुरा की भरमार थी। संयोजित कार्यों का यथोचित सम्पादन करने के लिए अपने विश्वस्त अनुचरों और कार्यकर्ताओं के साथ औरंगजेब स्वयं संलग्न हो रहे थे। औरंगजेब का जो जितना ही विश्वासपात्र था वह उतना ही इन कार्यों में व्यस्त हो रहा था।

प्रीति-भोज समाप्त होने पर औरंगजेब ने नम्रतापूर्वक स्नेह के साथ मुराद से कहा—"प्रिय बन्धु, तुम अब विश्राम करो। अभिषेक के सम्पूर्ण आयोजन का मैं स्वयं सम्पादन करूंगा।"

पार्श्ववर्ती एक दूसरे शिविर में मुराद ने उल्लास, उत्साह और उन्माद के साथ प्रवेश किया। शाहवाज साथ में था। उस शिविर में एक अपरूप सुन्दरी युवती मुराद की प्रतीक्षा कर रही थी। शाहवाज ने संशकित नेत्रों से उस नारी की ओर देखा। उस शिविर में पहुँच कर मुराद को फिर तीव्र सुरापान कराया गया। मद्योन्माद में मुराद अत्ययधिक विभोर हो उठे। विक्षुब्ध और विक्षिप्त अवस्था में वे लेट गये और अचेत हो गये।

अपने एक विश्वस्त अनुचर के द्वारा, मैंने इन समस्त घटनाओं को सुना। इस दृश्य को सुनकर और जान कर मेरे हृदय में वेदना और समवेदना का एक साथ आविर्भाव हुआ। सम्पूर्ण रात मुझे नींद नहीं आयी। अनिद्रित रह कर मैं प्रार्थना करती रही—या अल्लाह !!

शाहवाज मुराद का अनुचर था और उसके हृदय में मुराद के लिए शुभ कामना थी। अपनी पवित्र भावना के साथ वह मुराद के चरणों के निकट बैठकर पद-सेवा करता रहा। अकस्मात् उन्मुक्त द्वार से औरंगजेब ने उस शिविर में प्रवेश किया। उनके वस्त्र श्वेत थे और सिर नग्न था। उनके शरीर पर अभिषेक के अनुसार कोई भी वस्त्र न था। वहाँ पहुँच कर औरंगजेब ने शिविर में चतुर्दिक अपनी दृष्टि-निक्षेप की।

ख्वाजा शाहवाज की ओर देखकर औरंगजेब ने कुछ संकेत किया। वह मुराद के समीप से उठ कर चला आया। हठात चार आदमियों ने ख्वाजा को गिरा दिया और उसके मुख में इतनी तीव्रता के साथ कपड़ों को ठूंस दिया कि वह कुछ बोल

नहीं सका। शाहबाज की हत्या कर डाली गयी और वहीं पर उसको भूमि के भीतर गाड़ दिया गया।

शाहबाज को समाप्त करने पर औरंगजेब ने एक बार मुराद की ओर देखा। कितने ही दिनों की निर्धारित और नियोजित औरंगजेब की योजना को कृतकार्य होने का पवित्र समय उपस्थित हुआ। मुराद के एक पञ्चवर्षीय बालक था। वह उसका कनिष्ट पुत्र था और उस बालक का नाम था अजीम। औरङ्गजेब ने अजीम को बुलाकर उसके हाथ में एक उज्वल और मूल्यवान मुक्ता देकर कहा—

"यदि तुम अपने सोते हुए पिता के निकट से उनकी तलवार इस प्रकार ले आओ कि जिससे वे जान न सकें तो यह मुक्ता तुमको पारितोषिक में दिया जायगा।"

औरङ्गजेब का अभिप्राय यह था कि यदि मुराद की निद्रा भंग हो जायगी तो यही समझा जायगा कि एक छोटा-सा बालक तलवार के साथ खेल रहा था। बालोचित उल्लास के साथ अजीम अपने पिता की तलवार उठा लाया। उस तलवार को हाथ में लेकर औरङ्गजेब ने एक बार सन्तोष की साँस ली।

निद्रा-भंग होने पर मुराद ने देखा, दोनों पैर दृढ़ता पूर्वक शृङ्खलावद्ध हैं। दृष्टि-निक्षेप करते ही उसने देखा, तलवार अपने स्थान पर नहीं है। प्रतिशोध का कोई साधन मुराद को दिखाई न पड़ा। एक दीर्घ श्वास लेकर अवनत मस्तक हो मुराद ने कहा—

कुरान-स्पर्श करके जो शपथ उठायी थी, उसका यही अभिप्राय था? अल्लाह तू मालिक है! इतनी भीषण प्रतारणा!!

उत्सव-वाद्य एक नवीन स्वर में आरम्भ हुआ शिविर और

मण्डप के बाहर एकत्रित समुदाय को ज्ञात हुआ कि अभिषेक का कार्य अभी तक समाप्त नहीं हुआ। सन्ध्या होने के साथ-साथ शिविर के समीप से दो हाथी आगे बढ़े। एक हाथी आगरा की ओर, दूसरी दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ। दोनों ही हाथी सशस्त्र प्रहरी जनों के संरक्षण में थे। दिल्ली के मार्ग पर जो हाथी चला जा रहा था, उसकी पीठ पर हतभाग्य मुराद बैठे थे।

इस दृश्य को देखकर मुराद के समस्त अनुचर और सैनिक उत्तेजित होने लगे। परन्तु औरङ्गजेब ने पहले से ही अपने सेनापति को आदेश रखा था कि मुराद के सेनाध्यक्ष और सैनिक जन शिविर से हटकर कहीं जा न सकेंगे। औरंगजेब का षड़यन्त्र अब किसी से अप्रकट न रहा।

रात्रि में अकस्मात् औरंगजेब की सेना में जयघोष के साथ उच्च स्वर में घोषणायें की गयीं—शाहजहाँ और मुराद की अधीनस्थ सेनाओं का वेतन दूना किया गया!

इस भीषण अवस्था में मुराद के सेनाध्यक्षों ने शिविर से भागने का प्रयत्न किया और उनके समस्त सैनिक भयभीत हो उठे। परन्तु दूसरे ही दिन मुराद के समस्त सैनिक और सेनाध्यक्ष औरंगजेब की सेना में सम्मिलित हो चुके थे।

बन्दी अवस्था में मुराद ने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। उसके पीछे हाथी के पीठ पर बधिक चल रहे थे। भागने की चेष्टा करते ही मुराद के प्राणों का अन्त था। औरंगजेब की शपथ का इतना मूल्य था और उसका वास्तविक क्या अभिप्राय था, इसका पूरा अर्थ मुराद की समझ में अब आ चुका था। बन्दी मुराद को कारागार में ले जाकर विषाक्त शरबत पिलाया गया! भारतवर्ष के राजसिंहासन को औरंगजेब ने सुशोभित किया!!

बन्धु दारा के जीवन का इतिहास लिखते-लिखते मैं आत्म-सम्वरण न कर सकी। हठात् मेरे नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। लिखे हुए पन्नों पर मैं अपना कपोल रखकर रो उठी! नेत्रों से निकले हुए अश्रु, अक्षरों पर गिर कर काले हो गये!!

अभी तक दारा का साहस पराजित नहीं हुआ था। अपने पौरुष और बल पर विश्वास करके दारा ने तीस सहस्र सैनिकों को एकत्रित किया। लाहौर के पार्श्ववर्ती एक नरेश ने दारा की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। दारा को उसकी प्रतिश्रुति पर अधिक विश्वास हुआ। किसी के हृदय पर अधिकार करने की दारा में अद्भुत क्षमता थी। उसके सरल हास्य और मधुर स्वर का अत्यधिक प्रभाव पड़ता था! उस हिन्दू नरेश के साथ मैत्री स्थापित करने में दारा ने अनेक प्रयत्न किये। निदर्शन स्वरूप, दारा को यथेष्ठ सम्पत्ति भी उपहार में देनी पड़ी। परन्तु औरंगजेब के गुप्त पत्र-व्यवहारों ने इन प्रयत्नों को निष्फल बना दिया। हिन्दू नरेश ने दारा का परित्याग किया। परन्तु वह औरंगजेब के प्रलोभनों का परित्याग न कर सका।

औरंगजेब इस बात से अपरिचित थे कि विख्यात सेनापति दारा का पक्षपाती है। दारा के साथ उसके अनेक अटूट सम्बन्ध हैं। दारा के इस प्रकार के विश्वास पात्रों में दायूद खाँ भी एक हैं। इन पक्षपातियों को तोड़ने के लिए औरंगजेब ने अपने प्रयत्न आरम्भ किये। दारा को दायूद खाँ का भी बहुत विश्वास था।

औरंगजेब ने बिना किसी कारण और उद्देश्य के दायूद खाँ के साथ पत्र व्यवहार आरम्भ कर दिया। औरंगजेब के पत्रों में कोई सार न था। व्यर्थ का वितण्डावाद था। इस पत्र-व्यवहार का सम्वाद मिलते ही दारा का चित्त खिन्न हो उठा। परिणाम स्वरूप, अत्यन्त विश्वस्त दायूद खाँ पर दारा को सन्देह उत्पन्न

हो गया। सम्राट के अनेक सेनाध्यक्षों में दायूद खाँ भी एक था और वह दारा से प्रेम करता था। दारा उसके स्नेह से अपरिचित न थे। परन्तु औरङ्गजेब के पत्र-व्यवहार ने उस गम्भीर विश्वाश के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

औरङ्गजेब के साथ युद्ध करने की दारा में अभिलाषा थी। इसी अभिप्राय से वे अपने विश्वस्त जनों को लेकर शक्ति-सङ्गठित कर रहे थे। दारा के मित्रों और सहायकों में एक दायूद खाँ भी थे। औरङ्गजेब के पत्रों से सन्देह उत्पन्न होने के कारण दारा नें दायूद खाँ को आदेश दिया—"तुम मुझे छोड़ कर तुरन्त चले जाओ। तुमको अपनी सेना में मैं देखना नहीं चाहता।"

दारा के इस कठोर और अपमानपूर्ण आदेश को सुनकर पराक्रमी सेनाध्यक्ष दायूद खाँ एक शिशु की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे। हतभाग्य दारा ने परिस्थिति को समझने की चेष्टा नहीं की। औरङ्गजेब का षड़यन्त्र भी सफल हुआ। दारा का सम्पर्क परित्याग करने के समय दायूद खाँ ने अपने आँसुओं को पोंछ कर कहा—"दुर्भाग्य दारा को मृत्यु के मार्ग पर ले जा रहा है!"

लाहौर का आश्रय छोड़कर दारा को अन्यत्र चला जाना पड़ा। पंजाब में एक छोटा-सा राज्य भक्खर है। उसके दुर्ग की परिस्थिति का दारा ने अध्ययन किया और अन्त में वे गुजरात में जाकर उपस्थित हुए। वहाँ पर उन्होंने एक सेना का संगठन किया।

इन्हीं दिनों में औरङ्गजेब को सम्वाद मिला कि शाहशुजा एक बड़ी सेना के साथ बंगाल से रवाना हो गया है। दारा को अनुसरण न करके शाहशुजा ने अपनी समस्त सेना के साथ दक्षिण की ओर आक्रमण किया।

शाहशुजा के आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए औरङ्गजेब ने अपनी तैयारी की। अपनी विशाल सेना के साथ वे आगे बढ़े। एक निर्धारित स्थान पर अपनी सेना को छोड़ कर औरङ्गजेब बहुत दूर आगे निकल गये। वे कभी किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते और कभी अपने ढाल के ऊपर अपना मस्तक रख कर वे नींद लेने लगते।

जङ्गली मार्ग में एक दिन अचानक औरंगजेब का राजा जयसिंह के साथ साक्षात्कार हो गया। जयसिंह सुलेमान शिकोह के प्रधान सेना-नायक थे। वे दारा से घृणा करते थे। एक दिन दारा ने जयसिंह को गायक कह कर उपहास किया था। परन्तु वे सम्राट शाहजहाँ के विश्वास पात्र थे। औरंगजेब को देखते ही जयसिंह के सैनिकों में उत्तेजना उत्पन्न हुई। उन्होंने औरंगजेब की हत्या-करके सम्राट शाहजहाँ के उद्धार का एक मार्ग सोच डाला। यदि जयसिंह ने अपने सैनिकों के अनुरोध पर ऐसा किया होता तो इस पृथ्वी पर जयसिंह की अक्षय कीर्ति कितने ही युगों तक गायी जाती।

उस समय औरंगजेब के सम्मुख एक भयानक विपद उत्पन्न हो गयी। उनको स्वयं जयसिंह से इसी प्रकार की आशा थी। वे एक साथ भयभीत हो उठे। अपने प्राणों की रक्षा के लिए औरंगजेब के सामने कोई उपाय न था।

साक्षात्कार होते ही औरंगजेब ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। राजपूतों के नेत्रों में प्रशंसा ही बहुमूल्य उपहार है। औरंगजेब ने राजा जयसिंह की प्रशंसा करना आरम्भ किया। समीप पहुँच कर अपने गले का हार मूल्यवान मुक्ताहार उतारकर औरंगजेब ने राजा जयसिंह के गले में पहना दिया और कहा—

"मैं आपको दिल्ली का शासक नियुक्त करता हूँ। साम्राज्य

को आपकी आवश्यकता है। इसी समय आप दिल्ली की यात्रा करें।"

भाग्य और दुर्भाग्य—दोनों ही अपने पथ की स्वयं रचना करते हैं। वहाँ पर सत्य और असत्य का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता। उसमें किसी का अधिकार भी नहीं रहता। मनुष्य सर्वथा उसके निकट निर्बल और निरुपाय सिद्ध होता है।

औरंगजेब की बात को स्वीकार करके रजा जयसिंह तुरन्त दिल्ली की ओर चल पड़े।

नवीन सम्राट औरंगजेब के साथ, शाहशुजा का युद्ध आरम्भ हो गया। उस भीषण संग्राम में विजयी होने के लिए औरंगजेब ने अपनी कूटनीति का आश्रय खोजना आरम्भ किया। युद्ध कौशल की अपेक्षा, राजनीतिक कौशल पर उन्हें अधिक विश्वास था।

औरंगजेब के हाथी पर तीरों की वृष्टि होने लगी। यह अवस्था अधिक भयावह हो उठी। किन्तु वहाँ पर भी विश्वास-घातकों का पूर्ण अभाव न था। भीषण प्रहार के कारण औरंग-जेब को अपने हाथी के पीठ से नीचे उतर जाने के लिए विवश हो जाना पड़ा। उसी समय मीर जुमला ने अपने संकेत के द्वारा औरंगजेब की सहायता की।

शाहशुजा के अनेक जन औरंगजेब के प्रति वचन बद्ध हो चुके थे। उन्हीं विश्वासघातकों ने शाहशुजा को हाथी की पीठ से नीचे उतरने का परामर्श किया। उस परामर्श के अनुसार कार्य करने में शाहशुजा ने देर नहीं की, इसलिए कि कोई भीषण आपत्ति आने वाली है। परन्तु उस परामर्श का परिणाम भया-नक निकला। हाथी की पीठ से शाहशुजा के नीचे आते ही उसके सेना-नायकों और अध्यक्षों को अपनी पराजय का भय पैदा

हो गया। प्राण सभी को प्रिय होते हैं। शाहशुजा की सेना में भगदड़ आरम्भ हो गयी। युद्ध के अंत होने में फिर देर नहीं लगी। शाहशुजा की युद्ध के पराजय हुई।

शाहशुजा के पतन के साथ मेरी लेखनी श्रान्त हो उठी। सम्राट शाहजहाँ ने अपने पुत्रों पर विश्वास किया था। शुजा की पराजय ने उनके विश्वास को निर्बल बना दिया। पिता के साम्राज्य की दीवारें अब पूर्व रूप से शिथिल दिखायी देने लगीं। युद्ध के दिनों में 'सिंहासन अथवा समाधि' की घोषणा की गयी थी। मृत्यु हो जाने पर शाहशुजा को समाधि भी प्राप्त न हुई।

पराजित होने पर आश्रय प्राप्त करने के लिए शाहशुजा ब्रह्मदेश में जाकर उपस्थित हुआ। परन्तु शुजा को वहाँ पर आश्रय न मिला। ब्रह्म देश के राजा की आज्ञा से शाहशुजा की निर्जन बन में हत्या की गयी। उसकी देह बन-पशुओं का आहार बनी। मुराद के पश्चात् शाहशुजा का भी अन्त हुआ।

---

[११]

औरङ्गजेब का अर्थ जाल

शाहशुजा का पतन हो चुका था और ब्रह्मदेश में जाकर उनकी मृत्यु भी हो चुकी थी। औरङ्गजेब पर आक्रमण करने के लिए दारा अभी तक अपनी शक्तियाँ संग्रह कर रहे थे। एक हजार छः सौ उनसठवाँ वर्ष ईसा की शताब्दी का था। राजा यशवंतसिंह के साथ दारा का गठबन्धन हो चुका था। निश्चय यह हुआ था कि यशवंतसिंह और दारा—दोनों ही अपनी सेनाओं के साथ आगरा की ओर प्रस्थान करेंगे और मार्ग में दोनों ही एक दूसरे से मिलेंगे।

अपनी नवीन सेना के साथ दारा ने गुजरात से आगरा की ओर युद्ध-यात्रा की। राज्य-सिंहासन पर आरोहण करने के उपरान्त औरङ्गजेब की शक्तियाँ विराट और विशाल हो चुकी थीं। साम्राज्य की सत्ता अब उनके हाथों में थी। इस अवस्था में दारा के लिए औरंगजेब को पराजित करना एक दुस्साध्य कार्य था। नवीन संगठित और एकत्रित सेना औरंगजेब की सेनाओं के साथ युद्ध करने के लिए किसी प्रकार पर्याप्त न थी। इसीलिए दारा ने यशवंतसिंह से सहायता की अर्चना की थी। राजा यशवंतसिंह स्वयं मेरे पिता सम्राट के विश्वस्त सामन्तों में से एक थे और सदा उन्होंने अपने कर्तव्यों का पालन किया था। किन्तु आज उनकी सहायता कहाँ तक काम करेगी, इसकी

कल्पना इसलिए निराधार थी कि आज सम्राट की शक्तियाँ लुप्तप्राय हो चुकीं थीं और दारा को अपने प्राणों की रक्षा के लिए स्थान-स्थान का याचक बनना पड़ा था। अपनी शक्तियों के निर्बल हो जाने पर, दूसरों की सहायता की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

औरङ्गजेब को अपने असाधारण फैलाये हुए जाल पर अटूट विश्वास था। यही विश्वास उनकी आज तक की सम्पूर्ण सफलता का कारण था। समस्त साम्राज्य में उन्होंने जो जाल फैला रखा था, वह तीन भागों में विभाजित था। इन्द्रजाल, अर्थजाल और चक्रजाल। इन्हीं तीनों जालों के द्वारा औरङ्गजेब की सम्पूर्ण सफलता सम्पादित हुई थी और भविष्य में भी इन्हीं तीनों पर उनको विश्वास था।

औरंगजेब अपनी शपथों और स्वीकृतियों के द्वारा लोगों को वशीभूत करने के लिए इन्द्रजाल की रचना करते थे। साथ ही साम्पत्तिक प्रलोभनों के द्वारा उन्होंने अपना भीषण अर्थजाल बिछा रखा था। इन दोनों से निष्कृति प्राप्त करना ही लोगों के लिए सम्भव न होता था। इसीलिए तीसरे जाल—चक्रजाल की औरंगजेब को आवश्यकता न पड़ती थी। चक्रजाल का अर्थ होता था, युद्ध से भयभीत कराना।

दारा की सहायता करने के लिए यशवन्यसिंह ने बहुत सावधानी से स्वक्रति दी थी। परन्तु औरंगजेब के पत्र-व्यवहार करते ही राजा यशवन्तसिंह की अवस्था और निर्धारित व्यवस्था सहज ही सन्दिग्ध हो उठी। समय आने पर, राजा यशवन्तसिंह ने युद्ध में जाने और दारा की सहायता करने का साहस न किया।

जिस से[illegible] को लेकर दारा ने गुजरात से युद्ध की यात्रा की

थी, उसी के बल और साहाय्य पर उन्होंने नगाड़े बजवा दिये। अजमेर से थोड़ी दूर पर, एक पार्वतीय स्थान में दारा ने अपना शिविर संस्थापित किया। साथ ही अपने शिविर के चारों ओर कितनी ही खाइयों की व्यवस्था करायी।* दारा की इस योजना का सम्वाद मिलते ही औरंगजेब ने दिलवर खाँ को बुलाकर दारा के साथ षड़यन्त्र रचने के लिए प्रस्तुत किया।

दिलवर खाँ औरंगजेब के धार्मिक विचारों का सहयोगी था। धार्मिकता की आड़ में अनेक अवसरों पर औरंगजेब ने उससे सहायता पायी थी। दिलवर खाँ ने दारा के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार किया और अपने प्रथम पत्र में ही उन्होंने लिखा :

औरंगजेब ने सम्राट और बन्धु मुराद के साथ जैसा व्यवहार किया है, उससे मैं घृणा करता हूँ। आपके साथ युद्ध करने की जो आक्रमण नीति काम में लायी जाने वाली है, उसमें कदाचित् मुझे भी—अपनी इच्छा और अभिलाषा के विरुद्ध आना पड़ेगा। यदि मैं चाहूँ तो बिना आये भी मैं रह सकता हूँ। परन्तु एक पापात्मा को पुरस्कार देने के लिए मेरा आना ही अच्छा है। आप किञ्चित सन्देह न पैदा करें। मेरी सेना आपके सैनिकों पर आक्रमण न करेगी और समय तथा सुविधा के प्राप्त होने पर......! कुरान का स्पर्श करके मैं आपको इसका विश्वास दिलाता हूँ।

आपका विश्वस्त—दिलवर खाँ

युद्ध आरम्भ होने के एक दिन पूर्व ज्योतिषियों ने भविष्य-

---

* शत्रु के आक्रमण से सुरक्षित रहने के लिए प्राचीन काल में दुर्ग के चारो ओर खाई खोदी जाती थी। यह खाई साधारण तौर पर एक सौ हाथ चौड़ी और पन्द्रह हाथ गहरी होती थी।

वाणी की। उसमें कहा गया कि वृद्ध सम्राट को विध्वंस करने वाले नक्षत्र का उदय हुआ है। इस भविष्य-वाणी को सुनकर शेखमीर ने सम्राट के हाथी पर आरोहण करके औरङ्गजेब से साक्षातकार किया।

औरङ्गजेब की ओर से दारा से युद्ध करने के लिए शेखमीर के संरक्षण में एक विशाल सेना रवाना हुई। युद्ध में जाने के समय शेखमीर औरङ्गजेब के हाथी पर समासीन हुआ। औरंगजेब के आभूषणों से अलंकृत होकर उन्होंने युद्ध की यात्रा की।

दिलवर खाँ का पत्र पाकर दारा ने पढ़ा और उस पर विश्वास किया। उसने सेना के नायकों और अध्यक्षों को बुला कर समझा दिया कि दिलवर खाँ और उसकी सेना पर हमारी ओर से आक्रमण न किया जायगा।

दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध आरम्भ हो गया और धीरे-धीरे वह गम्भीर होने लगा। युद्ध से पीड़ित और पराजित विक्षुब्ध दारा ने शत्रु की सेनाओं के साथ घोर युद्ध आरम्भ किया। युद्धक्षेत्र में वीर सैनिक कीड़ों और पतिंगों की भाँति, मृत्यु के मुख में पतित होने लगे। दारा के गोलों की मार से शत्रु की सेना विक्षिप्त हो उठी। तीव्र गोली के आघात से शेख-मीर की मृत्यु हो गयी। परन्तु शेखमीर के अंग-रक्षक नायकों ने अपनी सेना को मीर की मृत्यु से अज्ञात रखा और उन्होंने शत्रु पर आक्रमण करने के लिए सेना को उत्साहित किया।

युद्ध-क्षेत्र में औरंगजेब उपस्थित थे। उन्होंने दिलवर खाँ को संकेत किया। उसी समय उस संकेत से सावधान होकर दिलवर खाँ ने अपनी सेना को दारा की सेना की ओर मोड़ा और दारा के निकट पहुँच कर औरंगजेब की सेना पर आक्रमण करने की सूचना दी।

दारा ने यही किया। दिलवर खाँ का विश्वास करके दारा की सेना शत्रु की ओर आगे बढ़ी और दिलवर खाँ ने अपनी सेना को लेकर दारा की सेना पर आक्रमण किया। इस छल से अज्ञात दारा की सेना क्षत-विक्षत होने लगी। दिलवर खाँ की सेना पर उसे आक्रमण करने का आदेश न था। दारा की सेना पर बाहर से औरंगजेब की सेना आक्रमण कर ही थी और भीतर प्रवेश करके दिलवर खाँ के सैनिकों ने दारा की सेना पर आक्रमण किया। निरुपाय और कातर अवस्था में दारा के साथ आये हुए सैनिक युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे। थोड़ी देर में औरंगजेब और दिलवर खाँ के सैनिक ही वहाँ पर रह गये। दारा की युद्ध में यह दूसरी पराजय थी।

युद्ध-क्षेत्र परित्याग कर दारा ने किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा की। अन्त में वे गुजरात के उसी स्थान में लौट कर चले गये, जहाँ से उन्होंने द्वितीय युद्ध के लिए-यात्रा की थी। परन्तु क्षुधा से पीड़ित, तृषित और युद्ध से पराजित दारा का उस नगर में प्रवेश सम्भव न हो सका। उस नगर में दारा ने अपना एक शिविर बना रखा था। उसके भीतर से उठता हुआ नारी-कण्ठ का आर्त्तनाद और हृदय-विदारक विलाप सुदूरवर्ती विस्तृत आकाश को शोकाकुल बना रहा था।

किसी मनुष्य के अस्तित्व को अवनत करने में भगवान का अभिप्राय क्या है ? इस पृथ्वी से क्या न्याय और निर्णय तिरोहित हो गया है ? एक दिन था जब दारा के अगणित मित्र और सहायक थे। किन्तु एक दिन आज है, जब उन्हीं दारा से कोई साक्षात्कार करना नहीं चाहता। एक ही मनुष्य के जीवन में इतना भीषण परिवर्तन! सहस्रों और लाखों सैनिक जिसके संकेत पर प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहते थे,

आज उसकी प्रार्थना सुनने के लिए भी कोई दिखाई नहीं देता! सौभाग्य और दुर्भाग्य में इतना भयानक अन्तर! जिसकी सहायता से पृथ्वी पर भीषण परिवर्तन हो सकते थे, आज वह स्वयं पथ का भिखारी है! जीवन का यह कितना भयानक और आश्चर्यपूर्ण रहस्य है!!

औरंगजेब के सैनिकों का भय उत्पन्न होने पर दारा ने पर्शिया की ओर अनुगमन किया। उनके साथ, उनकी तीन बेगमें थीं—नादिरा बेगम, उदयपुरी बेगम और राणा दिल बेगम! बेगमों के साथ दारा की लड़की और छोटा लड़का भी था। देश-परित्याग करने के समय भी दो सहस्र सैनिक और अनुचर दारा के साथ थे।

अपने सैनिकों, अनुचरों और बेगमों के साथ दारा ने मार्ग अतिक्रम करने में अत्यधिक परिश्रम से काम लिया। भारतवर्ष की सीमा पार करने के पश्चात् धूण नामक एक छोटा-सा राज्य मिला। तीन बार उसको मृत्यु के मुख से बचाया था। दारा का विश्वास था कि वहाँ पहुँचने पर बिना किसी सन्देह के सम्मान प्राप्त होगा।

दारा का विश्वास पूर्ण रूप से प्रतिकूल निकला। दुर्दिनों में मित्र, शत्रु हो जाते हैं और अपने, पराये बन जाते हैं। इसमें किसी का अपराध नहीं है। दुर्भाग्य और दुर्दिनों का यह प्रकोप अत्यन्त स्वाभाविक और साधारण है। अफगान-नरेश ने सहायता देने के स्थान पर दारा को सपरिवार बन्दी बनाकर कारागार में रखने का आदेश दिया और साथ के सैनिकों तथा अनुचरों को भगा दिया।

दारा के साथ जो लोग थे, उनमें ख्वाजा नामक एक अनुचर भी था। वह दारा का अत्यन्त भक्त और विश्वासपात्र था। दारा

के साथ अफगान-राजा का जो व्यवहार हुआ, उसे ख्वाजा सहन न कर सका। उसने उस नरेश की हत्या करके अपने स्वामी के उद्धार का संकल्प किया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ख्वाजा ने प्रयत्न किया। परन्तु वह सफल न हो सका। ख्वाजा ने उसको गोली से मारने की चेष्टा की। परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल गया। अफगान नरेश गोली से बच गया। परिणाम स्वरूप, दारा के समस्त सैनिक बन्दी करके करागार में रखे गये।

इन्हीं दिनों में अफगान-नरेश की प्रजा में यह जनश्रुति फैल रही थी कि औरंगजेब की सेना शीघ्र ही यहाँ आ रही है। इस जनश्रुति को सुनकर दारा की बड़ी बेगम भयभीत हो उठीं। अपने स्वामी पर उनका अधिक प्रेम था। उनके अन्तरतर में अनेक प्रकार की भावनायें उठने लगीं। दुर्भाग्य के प्रकोप से दारा के सम्मुख जो विपदायें आयीं, उनको सहन करने में बड़ी बेगम असमर्थ हो रही थीं। चीत्कार के साथ वे कह उठीं—

"वंश के विनाशक, अत्याचारी औरंगजेब, मेरे स्वामी और पुत्र के रक्तपान से तेरी पिपासा शान्त न हो सकेगी।"

भयार्त बेगम नादिरा ने अपने हाथ की एक उंगली में विष लेकर उसका पान किया। क्षण-भर में उनकी मृत देह भूमि पर लोटने लगी। नारीत्व की शोभा नादिरा बेगम को जीवन के परित्याग करने में कुछ भी देर न लगी।

बन्दी दारा को सपरिवार दुर्ग में रखा गया था। अफगान-नरेश के पास वे इसलिए गये थे कि उनको अतीतकाल के उपकारों का पुरस्कार मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्य के प्रकोप से वह पुरस्कार अभिशाप के रूप में परिणत हो गया।

दारा के दिन धूण राज्य के कारावास में व्यतीत हो रहे थे। वे अपने नेत्रों से अपने परिवार को बन्दी देखते और दुर्भाग्य के

आँसुओं को मोचन करते हुए अनेक प्रकार की कल्पनायें करने लगते। दुर्भाग्य का यहीं से अन्त नहीं हुआ। औरंगजेब के आगमन की जनश्रुति असत्य न थी।

अचानक दुर्ग के बाहर सैनिकों की तलवारें चमकने लगीं। अस्त्रों की झनझनाहट के साथ, बन्दी दारा को सुनायी पड़ने लगा—"पकड़ो, शीघ्र बन्दी करो। दारा चौंक पड़े। वे बन्दी तो थे ही, अब और क्या बन्दी होंगे! परन्तु नहीं—अभी उनको बन्दी होना था। अफगान-राजा के यहाँ वे एक स्वतंत्र बन्दी थे। वे एक कारावासी बन्दी के रूप में थे। औरंगजेब के सैनिकों ने बन्दी करके उनके हाथों और पैरों को दृढ़तापूर्वक शृङ्खलाबद्ध किया। उनकी दो बेगमों और संतानों को भी अपराधी के रूप में रखा गया। जिस हाथी पर दारा ने आरोहण किया, वह गुप्त रूप में वहाँ से चला। बेगमों और लड़की-लड़के के साथ अनेक सैनिक और अनुचर भी बन्दी करके अफगान-राज्य से लौटाये गये। इन बन्दियों के साथ सशस्त्र प्रहरी थे। समस्त बन्दियों साथ लेकर औरंगजेब की सेना ने भक्खर-राज्य की ओर प्रस्थान किया।

भक्खर-राज्य के दुर्ग में सम्राट शाहजहाँ के कुछ सैनिक थे वे आज भी युवराज दारा को ही साम्राज्य की ओर से अधिकारी मानते थे और दारा के आदेश पर ही वे अपना मस्तक अवनत करना चाहते थे। भक्खर पहुँचते ही वहाँ के दुर्ग के सैनिकों ने औरंगजेब के सैनिकों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। यह युद्ध कई दिनों तक चलता रहा।

चालीस दिनों के पश्चात् बन्दियों को लेकर औरंगजेब की सेना दिल्ली में उपस्थित हुई। कितने ही अश्वारोही प्रहरी सैनिकों के संरक्षण में दारा का हाथी था। मुगल-साम्राज्य के

अधिकारी—बुलन्द इकबाल—दारा शिकोह को दिल्ली के सहस्रों और लाखों नर-नारियों ने एक बन्दी के समस्त आभूषणों से अलंकृत, हाथी के हौदे पर बैठे हुए देखा।

वे दिल्ली में हाथी के हौदे पर बैठ कर पहले भी अनेकों बार देखे जा चुके थे। परन्तु उनका आज का दृश्य ही कुछ और था। आज के पूर्व हाथी पर दारा का दिल्ली में आगमन होने पर सहस्रों और लाखों जन अपना स्वागत-अर्घ्य देने के लिए आकर अभिनन्दन करते थे! आज सपरिवार बन्दी दारा के आगमन पर दिल्ली के सहस्रों और लाखों नर-नारियों के नेत्रों से अश्रु पात हो रहे थे!!

एक जन फकीर दारा को बन्दी देखकर रो पड़ा। उसने वेदना के साथ कहा—"दारा जब तुम स्वतन्त्र थे, प्रातःकाल नित्य मुझे भिक्षा करते थे। मुझे देने के लिए आज तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है!"

फकीर की बात को सुनकर दारा ने एक बार आकाश की ओर देखा। उनके शरीर पर बहुमूल्य शाल थी! दारा ने उस शाल को अपने बदन से उतार कर फकीर को दे दी। परन्तु औरंगजेब ने दारा को ऐसा करने नहीं दिया। इसलिए कि एक बन्दी जन को दान करने का अधिकार नहीं होता।

न्यायाधीशों के सन्मुख दारा के अपराधों को विचारार्थ उपस्थित किया गया। निर्णायकों ने दारा पर मूर्त्ति-पूजा और इस्माल की शत्रुता का अपराध आरोपण किया। मस्तक तोड़ने का दण्ड दिया गया। दण्डित होने से पूर्व दारा ने ऊंचे स्वर में कहा—औरंगजेब के शासन में एक सच्चे धार्मिक को यही दण्ड मिलना चाहिए था कि!"

"मानुष जत, ईश्वर तत" हमारे जीवन का यह एक प्रमुख

रहस्य है। इस रहस्य में स्रष्टा का एक अज्ञेय नियम छिपा हुआ है। अधिकांश मनुष्यों का जो मार्ग होता है, ईश्वर का वही मार्ग होता है।' विश्व की इस सनातन प्रणाली का कोई आज तक उल्लंघन नहीं कर सका—भविष्य में भी कोई न कर सकेगा। स्रष्टा और सृष्टि के मध्य कोई दो रहस्य नहीं हैं। जो रहस्य है, उसकी दो परिभाषायें करना मनुष्य के जीवन की भीषण भूल है। स्रष्टा यदि नदी है तो सृष्टि उसका जल है। नदी और उसके जल दो परिभाषायें नहीं की जा सकतीं।

शिरच्छेद करके दारा को प्राणदण्ड दिया गया। उनकी दोनों बेगमों और सन्तानों को जीवित रखा गया। प्राणदण्ड दिये जाने के पश्चात् औरंगजेब ने स्वयं दारा के सिर की प्रतीक्षा की थी और फिर उस मस्तक को, औरंगजेब की आज्ञा से कारागार में सम्राट शाहजहाँ के पास भेजा गया था।

दारा की उदयपुरी बेगम, जर्जिया देश की क्रिश्चियन लड़की थी। औरंगजेब ने दारा की मृत्यु हो जाने पर, उदयपुरी बेगम को साक्षात्कार के लिए आमंत्रित किया। उदयपुरी बेगम ने उस आमंत्रण को स्वीकार किया और निर्धारित समय तथा स्थान पर उन्होंने औरंगजेब से साक्षात्कार किया। औरंगजेब ने उदयपुरी बेगम के साथ अपना विवाह कर लिया। दारा की दूसरी बेगम राणा दिल को भी औरंगजेब ने आमंत्रित किया था। उस आमंत्रण का उत्तर देते हुए उसने लिखा—

"जहाँपनाह, किस अभिप्राय से आपने मुझे आमन्त्रित किया है?"

राणा दिल के पत्र का उत्तर देते हुए औरंगजेब ने लिखा—"तुम्हारे साथ विवाह करने की अभिलाषा है।" राणा दिल ने

लिखा—"मेरे पास ऐसा क्या है, जिसके कारण सम्राट मेरे साथ विवाह करेंगे ?"

सम्राट औरंगजेब ने उत्तर देते हुए उसको लिखा—"तुम्हारे सघन और कृष्ण वर्णीय केशों ने मुझे मुग्ध कर दिया है।"

सम्राट का यह पत्र पाकर राणा दिल ने अपने लम्बे केशों का कुछ भाग काटकर सम्राट औरंगजेब के पास भेजते हुए लिखा—"सम्राट, जिन केशों ने आपको मुग्ध किया है, उन्हें मैं भेज रही हूँ।"

औरंगजेब ने फिर राणा दिल को लिखा—"मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ। तुम्हारे अपरूप सौन्दर्य ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया है। मैंने तुमको अपनी एक महारानी बनाने का निश्चय किया है। तुम मुझे शाहजादा के रूप में देखो।"

औरंगजेब के इस पत्र को पाकर राणा दिल ने एक तीव्र छूरी से अपने मुख में अनेक आघात किये। एक श्वेत वस्त्र के टुकड़े में अपने मुख का रक्त लेकर औरंगजेब के पास भेजते हुए उसने लिखा—

"सम्राट ने यदि मेरे सन्दौर्य की आकांक्षा की है, तो वह आकांक्षा मेरे सौन्दर्य की भर्त्सना है। जहाँपनाह यदि मेरे रक्त पर मोहित हैं तो वह रक्त वस्त्र-खण्ड में मिलेगा। मैं अपने शरीर का सम्पूर्ण रक्त निकार कर दे सकती हूँ। यदि सम्राट को प्रसन्न करने के लिए वह साधन हो सकता है।"

राणा दिल भी दृढ़ता के सम्मुख औरंगजेब ने अपनी पराजय स्वीकार की। फिर उन्होंने उसके पास कोई पत्र नहीं भेजा। युवराज दारा के साथ विवाह करने के समय राणादिल एक सुन्दर नर्तकी थी और दारा से प्रेम करती थी। सम्राट

औरङ्गजेब को पराजित और लज्जित करने के पश्चात् उसने आत्महत्या करके अपने और अपने स्वामी के सम्मान की रक्षा की। राणा दिल भारतवर्ष की एक हिन्दू कन्या थी। उसने हिन्दू संस्कारों में जन्म लिया था!

औरङ्गजेब ने दारा की कन्या रूपवती जान बेगम को मेरी बहन रोशनआरा के पास भेज दिया। दारा की मृत्यु के पश्चात् अपने विजयोल्लास में रोशनआरा ने एक विराट प्रीति-भोज की योजना की। पितृ-मातृहीना बालिका जान बेगम के साथ रोशनआरा का व्यवहार-नृशंसतापूर्ण रहा। लगातार उसकी बढ़ती हुई शीर्णता को देखकर औरङ्गजेब ने उसको मेरे पास आगरा के दुर्ग में भेज दिया। बन्धु दारा की प्रिय पुत्री जान बेगम को पाकर और देखकर मैंने बहुत दिनों के पश्चात् संतोष की एक दीर्घ साँस ली।

अंगूरी बाग के उच्छ्वासित झरना ने मेरे उस आनन्द और संतोष का समर्थन किया। बहुदिन विस्मृत पक्षियों ने अपना मधुर स्वर फिर से आरम्भ किया! परन्तु पूर्व की भाँति न तो झरने में संलग्नता थी और न पक्षियों के राग में वह माधुर्य था! औरङ्गजेब का शासन आरम्भ होते ही दो वर्षों के भीतर समस्त मुगल वंशधर बन्दी किये गये और ग्वालियर के दुर्ग में उनकी हत्या की गयी। ग्वालियर के उसी दुर्ग में औरङ्गजेब के पौत्र सुल्तान मोहम्मद को भी विष देकर इसलिए उसकी हत्या की गयी कि उसकी अन्तरात्मा में स्वाभिमान और अत्म-सम्मान की भावना थी।

कुरान का यह एक स्पष्ट निर्देश है कि बिना अपराध किसी मनुष्य को दण्ड नहीं दिया जा सकता। इसीलिए मुराद पर यह अभियोग लगाया गया कि उसने किसी समय एक

निर्दोष जन की हत्या की थी। उस हत्या के अपराध में मुराद को प्राण दण्ड दिया गया। मुराद के अपराध का अनुसंधान करना और उसे प्रमाणित करना औरङ्गजेब का कार्य था।

भूख और प्यास से पीड़ित कुछ दिनों तक सुलेमान शिकोह ने बनों, पर्वतों और निर्जन स्थलों में भ्रमण करके अपना समय व्यतीत किया। उसके पश्चात् विश्वासघातकों के द्वारा बन्दी करके औरङ्गजेब के दरबार में वह उपस्थित किया गया। सुगठित, तरुण सुलेमान जब पितृ-हन्ता औरङ्गजेब के सम्मुख लाया गया, उस समय राज दरबार में एक अस्पष्ट आलोचना का अस्पष्ट स्वर सुनायी पड़ा और राजप्रासाद के अन्तःपुर में मुखावृत वस्त्रों के भीतर अश्रुपात किये गये। सुलेमान और सम्राट के रक्त में कोई अन्तर न था! एक वीर आत्मा विष-पान करने की अपेक्षा, अस्त्रों के आघात से प्राणोत्सर्ग करना अधिक सम्मानपूर्ण समझता है। यही अवस्था सुलेमान की भी हुई। विष देकर प्राण लिये जाने का निर्णय सुन कर सुलेमान ने अपना अपमान अनुभव किया। उसने औरङ्गजेब से आवेदन करते हुए कहा—

"चाचा, मुझे प्राण दण्ड की सजा दी जाय, परन्तु विष देकर नहीं। मैं हंस कर मृत्यु का आलिङ्गन करूंगा। परन्तु एक कापुरुष की भाँति विष-पान करके मृत्यु नहीं चाहता।"

औरङ्गजेब ने कुरान को स्पर्श करके शपथपूर्वक उत्तर दिया—"तुम इस बात का 'विश्वास रखो कि तुमको विष नहीं दिया जायगा।"

दूसरे ही दिन सुलेमान को ग्वालियर के दुर्ग में कठोर प्रहरी जनों के संरक्षण में भेजा गया और पान में तीव्र विष देकर उसकी प्राणहत्या की गयी। अपनी शपथ और स्वीकृति का

कितना अधिक मूल्य औरङ्गज़ेब के नेत्रों में था, इस पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

पिता सम्राट शाहजहाँ ने जो अभिलाषा की थी, उसकी पूर्त्ति न हो सकी। दारा और मुराद को अपनी अधूरी अभिलाषाओं के साथ इस लोक को त्याग कर जाना पड़ा। सुलेमान को प्राण दण्ड दिया गया! परन्तु जिस प्रकार हत्या की गायी, वह एक वीरात्मा के लिए सर्वथा अपमानपूर्ण थी। काश्मीर-परिदर्शन की अभिलाषा मैंने कितनी बार की, परन्तु वह अधूरी ही रही। वहाँ पर देवदारू के वृक्ष, प्रहरी के रूप में पर्वत-शिखर पर दिखायी देते हैं। पीले और रक्तपर्ण के विपट-बीथि को देख कर एक बार मन मुग्ध हो जाता है। वहाँ पर प्रकृति की पूर्ण सुषमा परिलक्षित होती है। उन स्थानों में मनुष्य का रक्त कभी भी पददलित नहीं हुआ। वहाँ पर यदि मैं जाफरान और गुलाब-बीथियाँ अतिक्रम करके पल्लवाकीर्ण वृक्षों के बीच में परिभ्रमण कर सकती और सरोवर के पार्श्ववर्ती स्थानों के स्पर्श करती हुई पर्वत और उसके विस्तृत क्षेत्रों का सन्दर्शन करने को पाती तो मैं अपने जीवन में कितने परितोष का अनुभव करती! वहाँ के पर्वतीय दृश्य एक अद्भुत रहस्य का जैसे उद्घाटन कर रहे हैं। वहाँ की मधुर किन्तु मन्द और शीतल वायु मानव जीवन की चिन्तनाओं का आवरण उन्मुक्त करती रहती है! उन स्थानों का जीवन एक पीड़ित और उत्तापित मनुष्य को एक निरवच्छिन्न आनन्दपूर्ण देश की ओर ले जाता है! इसीलिए मैंने काश्मीर-परिदर्शन की अभिलाषा की थी!

अपनी निद्राहीन रजनी में मैंने अनेक बार फतेहपुर-सीकरी के परिभ्रमण का जाग्रत-स्वप्न देखा है। आज फतेहपुर सीकरी पूर्ण रूप से अनाहृत और पतित है! परन्तु उसका अतीत गौरव

आज भी चित्रित हो रहा है । मेरी निर्मल स्मृति में ! सम्राट अकबर की स्वप्नपुरी—कल्पनापुर—सीकरी, अब कभी भी तैमूर-वंशजों के अधिकार में उस जीवन का प्रतिबिम्ब प्रदर्शित न करेगी ! यह मेरा पूर्ण विश्वास है । शीघ्र ही वह दिन आवेगा, जब भारतमाता की सन्तान की शक्ता का इस देश में जागरण होगा और उससे संरक्षण एवम् मार्ग प्रदर्शन में सम्पूर्ण देश 'एक मेवाद्वितीयम्' की उपासना करेगा !!

---

[१२]

विदा—चिर विदा !

यदि मुझमें घृणा करने की शक्ति होती तो मैं औरंगजेब के प्राणान्त होने के समय तक उसका प्रयोग करती। ओफ, औरंगजेब ने कितने निरपराधों के प्राण लिए हैं ! बन्धु-बान्धव, अपने पराये, प्रिय-अप्रिय, मित्र-शत्रु, शुभचिन्तक, अशुभचिन्तक सभी के प्राण हरण किए गये ! इतनी भीषण नृशंसता !!

सम्राट जहाँगीर ने नासिरुद्दीन खिलजी की कब्र में पदाघात करके आदेश दिया था—"इस पितृहन्ता की कब्र को खोद डालो और एक शताब्दी के पश्चात् उसमें जो कुछ अवशिष्ट रहा हो, उसे नदी के जल में फेंक दो। हत्याकारी नासिरुद्दीन ने अपने पिता मुबारक खिलजी का वद्ध किया था।"

जिस मनुष्य के जीवन में प्रतिहिंसा की प्रेरणा उद्दीप्त होती है, वह स्वयं एक विष होता है। इसलिए अल्लाह, तुम क्षमा करने की शक्ति मुझमें उत्पन्न करो। प्रतिहिंसा की प्रेरणा स्वयं एक अपराध है। मेरी अन्तरात्मा से इस प्रेरणा को दूर करो ! अल्लाह, तुम मुझे निर्मल और पवित्र बनने दो ! मेरी रक्षा करो !!

दीपक बुझ चुका है। सब-कुछ मिट चुका है। जिस ओर देखती हूँ, सर्वत्र निःशेष दिखायी देता है। रोशनआरा के भोज का भी अन्त हो गया है। सभी चले गये हैं। मैं अकेली हूँ। जीवन में आज मेरा कोई साथी नहीं है। मेरी शेष जीवन-यात्रा में चतुर्दिक अन्धकार है ! जिस प्रकाश का आश्रय लिया था, वह बलिदान हो चुका है ! अब मेरा कोई भी नहीं है

भीतर शून्य है—बाहर भी शून्य है ! सम्पूर्ण जगत शून्य है !! शैशव काल में अपने सगे भाई बहनों के साथ खेला करती थी। उस समय प्रकाश और अन्धकार का ज्ञात न था। चतुर्दिक प्रकाश था। जिस ओर देखती थी, उज्वल प्रकाश ही दृष्टिगोचर होता था। जीवन का जो खेल आरम्भ हुआ था, उसी का आज अन्त हो रहा है। खेल दोनों ही थे। उस समय का खेल भी खेल था और आज का खेल भी, खेल है। परन्तु दोनों खेलों में एक विराट अन्तर है। इस अन्तर की—इस भीषण व्यवधान की कोई परिभाषा नहीं है !

उन दिनों के खेलों में मैं हंसती थी, आज के खेलों में मैं क्रन्दन करती हूँ। दोनों खेलों के मध्य इतना ही अन्तर है ! दोनों की यही एक परिभाषा है ! हास्य और क्रन्दन से ही इस जगत की रचना हुई है। प्रकृति के रचना-कार्य में इन्हीं दोनों का प्राधान्य है। हास्य में माधुर्य है—क्रन्दन में कठोरता है ! जीवन के रचना-कार्य में दोनों की उपयोगिता और आवश्यकता है ! दोनों ही एक दूसरे को महानता देते हैं ! यहीं इस जीवन का रहस्य है ! मेरा जीवन एक टूटे हुए मुकुट का अंश है। परन्तु उस मुकुट का प्रत्येक अंश, अपना अस्तित्व रखता है ! इसीलिए उसका मूल्य है ! हमारे जीवन में हास्य का जितना मूल्य है, क्रन्दन का उससे भी अधिक मूल्य है !

मेरे नेत्रों में कारागार दिखाई देता है। आज मेरे जीवन में प्रत्येक मसजिद कारागार है—प्रत्येक राजप्रासाद कारागार का रूप है। मसजिद, मन्दिर, कारागार और राजप्रसाद में कोई अन्तर नहीं है। इस लोक में सभी का समावेश है। मन की पवित्र भावना मसजिद और मन्दिर बन जाती है। अपराधी प्रेरणा राजप्रासाद को कारागार बना देती है। ईश्वर का पथ ही मसजिद और मदिन्र है। ईश्वर की आराधना ही जीवन की विजय है !

मेरा यह जीवन, वर्षा-वात्या विक्षुब्ध उस वृक्ष के समान है, जिसमें कुछ पत्ते अवशिष्ट रह गये हैं। इन पत्तों के मध्यभाग से आज भी स्वर्ग की आत्मा का कुछ आभास होता है। परन्तु सम्पूर्ण गगन तिमिराच्छन्न हो रहा है!

सम्राट आमलगीर के पाँच पुत्रों से भयभीत औरङ्गजेब की अवस्था बहुवर्णरञ्जित है। जो मनुष्य भीषण युद्ध के मध्य में अल्लाह की प्रार्थना कर सकता है और जो मृत्यु के सम्मुख होने पर भी हाथी की पीठ से नीचे नहीं उतर सकता; उसके नेत्रों में भयानक अपराधों की शास्ति का क्या भय हो सकता है!

मीराबाई के राग पर तानसेन का एक गीत सुनकर मेरी निन्द्रा भंग हो गयी। कोयल अंगूरी बाग से मेरे लिए गुलाब के कुछ फूल लेकर आयी थी। उस दिन मेरे हृदय में एक नवीन पीड़ा थी। राव छत्रसाल के अपराधों का दण्ड उनके पुत्र राव भाऊ को दिया गया था। किन्तु औरंगजेब ने राव भाऊ को औरंगाबाद का शासक नियुक्त किया है। मैं इस अपमान को कभी भूल न सकूंगी! मान देकर अपमान करना इसी को कहते हैं!

औरंगजेब के जीवन में जैनाबादी की घटना मेरे नेत्रों में मूल्य रखती है। औरंगजेब उसको प्यार करते थे। उसकी मृत्यु पर औरंगजेब ने किसी प्रकार अश्रुपात किया था, वह मुझसे छिपा नहीं है। जैनाबादी ने अपने रूप, सौन्दर्य और संगीत के द्वारा औरंगजेब को प्रभावित किया था। उसने कई अवसरों पर औरंगजेब के प्रेम की परीक्षा ली थी। ये घटनायें भी मुझसे अप्रकट नहीं है। उसके प्रेम में विह्वल होकर औरंगजेब कुछ समय के लिए इस जगत को भूल जाते थे। जैनाबादी प्रेम की प्रतिमा थी। उसके स्मरण से मुझे शान्ति और संतोष मिलता है।

पिता रोग से पीड़ित हैं। रोग एक दिन मृत्यु का कारण होता

है। यह जानकर भी मैं उनके स्वास्थ्य के लिए दान-पुण्य कुछ नहीं कर सकती। पिता के दीर्घ जीवन के लिए मैंने सदा हाथी दान में दिये हैं और दासता की शृङ्खला में आवद्ध दास-दासियों को मुक्ति दी है। इस प्रकार के उपचार रोग-निवारण में सहायक होते हैं।*

मैं पिता के रोगों की मुक्ति नहीं चाहती, मैं तो उनके जीवन की मुक्ति चाहती हूँ। इस मुक्ति की आराधना उस महाप्रभु से है, जिसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। मैं चाहती हूँ कि वर्तमान परिस्थिति में पिता के जीवन का परिवर्तन हो। उसी मुक्त के लिए मैं आराधना करती हूँ।

औरंगजेब के पत्र प्रायः पिता के निकट आया करते हैं। ऐसा करने में औरङ्गजेब का एक गुप्त अभिप्राय है। पिता के प्रति अपने व्यवहारों के लिए वे अब प्रजा की तीव्र आलोचना नहीं सुनना चाहते। वृद्ध पिता सब-कुछ कर सकते हैं। परन्तु औरंगजेब को क्षमा नहीं कर सकते। पिता को अभी उस दिन की विस्मृति नहीं हुई, जब उनके उनके पास, प्रिय पुत्र दारा का कटा हुआ सिर भेजा गया था! उसके पश्चात् वही सिर दुर्ग की प्रतिकूल दिशा में—ताजमहल में गाड़ा गया था। इन दुर्घटनाओं को पिता कभी भी भूल न सकेंगे। औरंगजेब के अनेक अनुरोधों पर भी, पिता ने मुकुट-मणि के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन नहीं किया।

फतेहपुर-सीकरी में जाकर तैमूर-वंशजों के उन पद-चिन्हों को देखने की आकाँक्षा होती है, जो रक्त पर रेखांकित किये गये हैं। वे रक्त-पद-चिन्ह और भी अधिक रक्ताक्त हो उठे होंगे।

---

* रोग का निवारण करने के लिए दान-पुण्य बलिदान और क्रीत-दासों की मुक्त, मुसलमानों के विश्वास के अनुसार आवश्यक होती है। इस प्रकार के उपचारों से रोगी स्वस्थ होता है।

यदि कभी मैं इस कारागार से मुक्त हो सकती और औरंगजेब मेरा उपदेश सुनना स्वीकार करते तो उनको पापों के प्रायश्चित करने की मैं शिक्षा देती। मैं उनको स्पष्ट बताती कि तुम्हारे शत्रुओं में से कितने ही मेरे अनुग्रह-पात्र हैं और उन्हीं में से किसी के साथ मेरी आत्मीयता थी। यह कहकर मैं औरंगजेब को सिखाती—

"राज्य के प्रलोभनों में रक्त पात न करो। हृदय में एक राक्षस-वृत्ति लेकर हिन्दू-मन्दिरों को विध्वंस न करो। इस्लाम वास्तव में ज्ञान का आलोक है। विध्वंस के भीषण दृश्यों के अपराध में इस्लाम को ले जाने का प्रयत्न न करो।"

अपने इस उपदेश के साथ, औरंगजेब को एक अपरूप पदार्थ समर्पण करती। उस स्वर्गीय पदार्थ क द्वारा उनके अन्तरात्मा में दिव्यालोक का उदय होता। मैं इस बात का पूर्ण विश्वास रखती हूँ, यदि औरंगजेब के शक्तियों का उपयोग दूसरे रूप में किया गया होता तो राजकुमार औरंगजेब की ख्याति इस पृथ्वी पर अमिट होकर रहती! मैं उनके अन्तरतर में एक महान राजनीतिज्ञ की स्पष्ट छाया को अनुभव करती हूँ! उसका दुरुपयोग हुआ। अन्यथा औरंगजेब की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में किसी अन्यतम परिभाषा में विस्तारित होती!

कारागार में मेरे पिता की मृत्यु हो गयी। पृथ्वी की एक आलोक शिखा का अन्त हुआ। अमर लोक में जाकर उसका आलोक विस्तारित होगा। इस लोक में उसका कार्य समाप्त हो चुका था, इसीलिए उसकी विदाई हुई।

पिता की मृतदेह को लेकर वहाँ पहुँचाया गया जहाँ श्वेत मरमर के प्रासाद में मेरी मा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी, अब वहाँ पर प्रतिदिन दो जनों के लिए सन्ध्या-बेला समाधि पर दीपक जलेंगे। दो जनों के लिए अब कुरान की आवृत्तियाँ होंगी!

दुर्ग के कारागार में मेरा एक सहारा था वह सहारा भी अब न रहा। मैं एकाकिनी थी, अब एकाकिनी होकर रही। पिता को रुग्नावस्था में मैं उनके स्वास्थ्य की—चिर-स्वास्थ्य की अल्लाह से आराधना किया करती थी! पिता जीवन परिवर्तन की अभिलाषा रखते थे। मैं भी उनका समर्थन करती थी! इसी-लिए मैं उनके शरीर की चिर-मुक्ति के लिए प्रार्थना और आरा-धना किया करती थी। अल्लाह ने मेरी उस प्रार्थना को सुन लिया। पिता आज मुझे छोड़कर इस लोक से चले गये!

मेरी आत्म-कथा के पृष्ठ समाप्त हो चुके हैं। उसे लिखकर मैं अपनी वेदना को परिपाक कर चुकी हूँ। किन्तु अपनी इस आत्म-कथा के पृष्टों को मैं नष्ट करने की आकाँक्षा रखती हूँ! किन्तु नहीं—नहीं, मैं ऐसा न करूंगी! मैं अपनी आत्म-कथा के पृष्ठों को नष्ट न करूंगी! मेरी आत्म-कथा मेरे कारागार की कहानी है। इसीलिए अब इसे मैं नष्ट न करूँगी! अपने वक्षस्थल के रक्त से मैंने इस आत्म-कथा को लिखा है। इसीलिये मैं अब इससे नष्ट करने की कल्पना न करूंगी! इस आत्म-कथा में प्रियतम दुलेरा की पीड़ाओं का समन्वय है, इसीलिए अब मैं इसको नष्ट न कर सकूंगी! इस आत्म-कथा में मेरे अन्तर के एक-एक शब्द की प्रतिध्वनि है, इसीलिए मैं इसे अब नष्ट न करना चाहूँगी!!

मैं आज सम्राट बाबर के शब्दों का स्मरण करती हूँ। उन्होंने कहा था—"अपनी आत्मा के समान अपना कोई विश्वास नहीं है। अपने अन्तरतर के अतिरिक्त; निर्भर योग्य कोई स्थान नहीं है!"

इस महान राजाप्रासाद की शिला के नीचे अपनी आत्म-कथा के पृष्ठों को सम्हाल कर रख जाऊँगी! भविष्य में कभी इस प्रासाद का विध्वंस होगा और जब जहानारा की स्मृतियाँ इस

जगह में निष्प्रभ होने लगेंगी, उस समय मेरी इस आत्म-कथा पर किसी की दृष्टि निक्षेप होगी। उसी समय इसको पढ़ कर लोग अनुभव करेंगे कि भारतवर्ष के सम्राट शाहजहाँ की लड़की जहानारा के समान इस लोक में दीन-दरिद्र और हत भाग्य दूसरा कोई नहीं हुआ !!

ताजमहल के मार्ग में अवस्थित एक मसजिद है; औरङ्गजेब उस मसजिद में अराधना किया करते हैं। उस मसजिद को मूल्यवाद् झालर देकर, मैंने उसके सौन्दर्य की वृद्धि की है। दुर्ग के भीतर औरङ्गजेब से साक्षातकार करने के लिए मैं प्रस्तुत होने लगी। मैं अपने साथ में उनके लिए मणिमुक्ताओं से परिपूर्ण स्वर्ण-पात्र ले जाऊंगी। उनकी यह बहुत दिनों की वाञ्छित सम्पत्ति है। मैं अपने साथ ले जाऊंगी, क्षमा ! जिस क्षमा के लिए औरङ्ग-जेब ने अनेक बार पिता से प्रार्थना की थी। परन्तु पिता ने वह क्षमा प्रदान न की थी ! मैं पिता की ओर से उनको क्षमा करूंगी। मैंने उनको एक पत्र लिखकर भेजा है। उसमें अपने स्वर्गीय पिता के पुत्र के प्रति शेष अभिलाषाओं को मैंने अपनी भाषा में लिखने का प्रयास किया है। मृत्यु के पूर्व पिता के अन्तर-तर में ममता, माया और स्नेह का एक अद्‌भुत स्रोत उमड़ा था, इस लोक से बिदा होने के पूर्व उन्होंने औरंगजेब को देखने की लालसा प्रकट की थी, उनके वंश में और कोई शेष न रहा था।

मृत्यु के उपरान्त शाहजहाँ के मृत शरीर को दुर्ग के पीछे से सुदृढ़ और ऊंची दीवार को तोड़कर और द्वार बनाकर बिना किसी समारोह के ले गये थे। औरंगजेब को भय था कि स्नेहमयी प्रजा में सम्राट की मृत्यु पर विद्रोह न हो जाय। औरंगजेब को यह आशंका बराबर रही परन्तु मैं उनको क्षमा करूंगी !

पुष्प-सार देकर मैं अपने बालों आर्द्र करूंगी और सम्पूर्ण

शरीर में सुगन्धित पुष्पों के स्नेह का लेप करूंगी उसके पश्चात् एक बहुमूल्य साड़ी पहनकर मैं अपने बन्धु औरंगजेब से साक्षात् करूंगी! उस दिन भाई और बहन के साक्षात् का पुण्य दिन होगा!

ग्वालियर के दुर्ग में पिता शाहजहाँ के वंशजों का सर्वनाश करने के लिए पानों के साथ विषाक्त पदार्थों का सम्मिश्रण किया गया था। मैं पान के साथ विष न देकर दूंगी; घृणा और शत्रुता को संस्कार और प्रतिशोध करने के लिए अमृतविन्दु! उसके पान करने से जो स्वर निसृत होगा वह होगा अपनी आजन्म भूलों के लिए आत्म—वेदना पूर्ण चीत्कार!!

बन्धु औरंगजेब से साक्षात् करने के लिए मैं दुर्ग में निर्भय पदार्पण करूँगी। विष देकर कोई मेरी हत्या न कर सकेगा! मैं स्वयं अकारण, आत्म-हत्या न करूँगी। मेरे चतुर्दिक जिस अटूट और अमिट जीवन की संस्थापना होगी, उससे स्फुरित होगी स्नेहपूर्ण-प्रेम रञ्जिनी सत्य प्रसूता शान्ति—क्षमा!!

शरद के आगमन पर भारतीय ललनायें अपने देवता को अर्घ्य देने के लिए नदी के जल-स्रोत में प्रदीप प्रवाहित करती हैं। मैं भी प्रवाहित करूँगी, स्मृतियों के दिव्य स्त्रोत में अपने प्राणों का स्नेहपूर्ण अलोक प्रदीप! वही होगी मेरे अमर-लोक की अमर-यात्रा!

—:: समाप्त ::—